Published by Gyatputra Mahavira Jain Sangh,
Pataudi (Punjab.)

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, Nirnaya Sagar Press,
26-28 Kolbhat Street, Bombay.

समर्पण

जिनकी कृपासे मेरे मनकी चंचलता नष्ट हुई है, जिनके सदुपदेशसे मेरे अन्तःकरणमें शान्तिका सञ्चार हुआ, जिनके अद्भुत चरित्रयोगसे मुझे सम्प्रदायवादके बन्धन तोडनेका निश्चय मिला, जिनके बोधवचनोंसे अखंड आत्मसुखका मार्ग प्राप्त हुआ तथा जिनकी आज्ञासे इस ग्रन्थके लिखनेका अवसर मिला, जिनके अपार अनुग्रह वात्सल्य एवं उत्साहदानद्वारा मेरी लेखन-कलाकी ओर प्रवृत्ति हुई है तथा जिनका आश्रय मेरे लिये कल्पवृक्षके समान अभीष्ट फलदायक होता रहा है उन अध्यात्म-शास्त्र प्रेमी, अप्रतिबद्ध विहारकव्रती, निष्काम परोपकारी, शांत-मुद्रा, महर्षिप्रवर, गुरुवर्य्य श्रीज्ञातपुत्र-महावीर जैन संघानुयायी श्री १०८ स्वर्गीय श्रीमज्जैनमुनि फकीरचंद्रजी महाराजाधिराजकी पवित्र स्मृतिमें अन्तःकरणकी विशुद्ध भक्तिपूर्वक वीरस्तुतिकी विवृति और हिन्दीभाषान्तर सादर समर्पित है। पुनश्च—

जिनके उदारहृदयमें अनन्य समता है, स्याद्वादसिद्धान्तका उज्वल पांडित्य है, जिनकी वाणी चन्दनसे भी अधिक शीतल है और वह मानव संसारके मनस्तापको एक दम मिटाती है, जिन्हें इष्ट और अनिष्ट पुद्गल समूहमें कभी मानसिक विचार नहीं हो पाता, जिन्हें बाह्याडम्बरसे सोलहों आने घृणा रहती है, जिनमें अहमहमिका क्रियाका नितान्त अभाव है, परहितसाधनमें जिनकी शुभप्रवृत्ति सतत जागृत है, धाडाबंदी-पक्षपात-सम्प्रदायवाद-टोलावाद-गच्छवादकी दिवारोंको तोडकर तथा स्व-परका भेदभाव मिटाकर जिन्होंने स्वतन्त्रताका अध्यात्म मार्ग पकडा है, जो देश समाज जाति और धर्म हित अपने प्राणोंकी बाजी लगा देते हैं, इसके अतिरिक्त जिनमें और भी गाम्भीर्य शौर्यधैर्यादि अनेक गुण हैं। ज्ञातपुत्र महावीर प्रभुके उन [illegible] साधु साध्वियोंके कर कमलोंमें वीरस्तुति प्रेम और भक्तिपूर्वक सादर समर्पित है

ज्ञातपुत्र महावीर जैन संघका लघुतम-

पुप्फ भिक्खु

प्रार्थना

ज्ञातनन्दन सिद्धार्थकुलकिरीट महावीर भगवान्‌के प्रतिपाद्य धर्मके ११ अंग इस समय भी विद्यमान हैं, उनमें सूत्रकृताङ्ग नाम सूत्र दूसरा अंग सूत्र है, जिसके दो श्रुतस्कन्ध हैं, और उसके पहले श्रुतस्कन्धका छठवाँ अध्याय इस ग्रन्थकी मौलिकवस्तु यह वीरस्तुति है।

और यह सूत्र कालिकसूत्र है, इसका स्वाध्याय ३२ *अस्वाध्याय त्याग कर दिन और रातके पहले और चौथे पहरमें स्वाध्याय होता है। इस अध्यायका मूल पाठतो अब तक कई पुस्तकोंमें छपकर प्रसिद्ध हो चुका है एवं मूल शब्दार्थ और भावार्थ सहित भी गत वर्षोंमें कई स्थानोंसे प्रकाशित हुआ है। परन्तु मैंने वीरस्तुतिकी टीका और भाषा टीका अनेक ग्रन्थोंका सन्दोहन

---

* बत्तीस अस्वाध्याय—चार संध्या [प्रातः काल १, मध्यान्हकाल २, संध्याकाल ३, मध्यरात्रि ४,] ओंके समय, चार महोत्सव, चार महा प्रतिपदायें, [चैत्र शुक्ला १५, वदी १, आषाढ शुक्ला १५, वदी १, आश्विन शुक्ला १५ वदी १, कार्तिक शुक्ला १५, वदी प्रतिपदा, १२,] औदारिक शरीर सम्बन्धी १० अस्वाध्याय [अस्थि-१३, मांस १४, रुधिर १५, पड़ी हुई अशुचि १६ समीप वर्ति प्रज्वलित श्मशान १७, चन्द्र ग्रहण १८, सूर्यग्रहण १९, ग्राम-शहर का राजा-सेनापति-देशनायक-नगरशेठका मरण २०, राज्य संग्राम २१, धर्मस्थानमें मनुष्य २२ और तिर्यंच पचेन्द्रियका कलेवर २३,] आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय [उल्कापात २४, दिशाओंके लाल होनेके समय २५, अकाल गर्जना २६, बिजली चमकते समय २७, निर्घात-मेघ के समान गर्जना जैसी व्यन्तरकृत ध्वनिविशेष २८, यूपक-शुक्लपक्षकी एकम-दोज और तीजके दिनका सान्ध्यसमय २९, यक्षादिप्त-अमुक अमुक दिशाओंमें आन्तर आन्तर पर बिजली जैसा प्रकाश होते समय ३०, धूमिका-धुवाँ बरसते समय ३१, महिका-गर्भमासमें पड़नेवाला धुन्ध-कोहरा ३२,] रजोवृष्टि-रज धूलकी वर्षा तथा शरीरमेंसे रुधिर और मल निकलते समय मुर्दोंके वाचनक प्रतिबन्धक कालमें अस्वाध्याय जानना योग्य है। इन नियमोंके भंग करने वालेके लिये दंड-प्रायश्चित-आदि शिक्षा निशीथसूत्रके उन्नीसवें अध्यायमें जानना चाहिये।

करके निर्माण की है। इस परिस्थिति में मेरे अन्तेवासी सुमित्त भिक्खु ने यथा संभव इस पुस्तकके प्रुफ देखकर सहायता की है अतः इनका नाम लिखते समय मुझे प्रसन्नता होती है

इस पुस्तकमें अज्ञताके कारण यदि कहीं भूल होगई है तथा जिनसिद्धा-न्तके विरुद्ध कुछ लिख गया हूं तो उसका त्रिकालिक हृदयसे "मिथ्या दुष्कृतम्"

वीरस्तुतिके अभ्यासियो! इसे भावशुद्धि पूर्वक पढ़िये, पठन और मननके द्वारा ज्ञातपुत्र महावीर प्रभुके समान बनिये, एवं अपने हृदयसे पुरानी रूढ़ियें एवं पक्षवाद-टोलावाद-सम्प्रदायवाद-गच्छवाद-पार्टीबाजी और मतभेदका कल्मष निकाल डालिये, और समदृष्टि बनकर भारतके दासत्वको दूर कीजिये जगतके भूलेभटकेको बचाइये, अपने धर्मगुरुओंको राग-द्वेष-ईर्ष्या एवं मत्सरताके कीचड़से निकालिये, समाजमें सर्वतन्त्रता और पारस्परिक सहानुभूति पैदा करनेका मार्ग प्रचार कीजिये, मेरी अन्तिम भावना यही है।

प्रस्तावना

काव्यं चैतदमूल्यमप्यनुपमं शब्दार्थरत्नाकरं, श्रीवीरस्तुतिनामतोऽधी-
ग्रथितं पुच्छिस्सुणस्याऽपि च। श्रीमत्सूत्रकृताङ्गसूत्रकरसाध्यायस्यसारात्मकं,
सन्नित्यं प्रपठन्ति श्रावकगणाः साधूत्तमाः सादरम् ॥ कण्ठेनैव सुमुक्षव पठं
कुर्व्वन्ति यस्यानिशं, एवं जैनसमाजकेऽपि निरता स्वाध्यायमस्य प्रियम्। पाठं
चास्य महत्प्रियात्प्रियतरं कुर्व्वन्ति प्रेमान्विता, जातं संस्करणं पवित्रजननं यस्या
प्यनेकं मुहुः ॥ यत्राऽनन्तदयाकरस्य निखिलं सामर्थ्यसंवर्णनं, तथाल्पसमनुष्य
जस्य नितरां शक्यश्च वाच्यं भवेत्। आचार्येण सुधर्मणा विरचितं यद्धै कृते योगिनां
योग्यं प्रोक्तमिदं विचार्य्य सुधियां मोदप्रमोदार्थिनाम् ॥ काव्येऽस्मिन्पुनरुक्तिरपि
मुनिभिर्नोद्भावनीया क्वचिद्दृष्ट्याऽप्येतद्गणस्यपाठकरणाच्छन्दार्थसङ्गौरवात्। श्रीम
देवगणस्य वाक्यतुलना तादात्म्यदृष्ट्यात्मकात्सत्यासत्यविचारचारुनयनात्मस्पर्शन
महत् ॥ सर्वाङ्गस्य रहस्यबोधजनने स्पष्टं भवेद्बोधनं, श्रीमद्धर्म्ममयस्य श्रीगण
धराचार्यस्य कथाशयः। प्रत्येकार्थगतं कियत्कतिविधं भिन्नं तथा प्रस्फुटं, स
काव्यगतं समस्तविषयो विज्ञानरूपात्मकम् ॥ आचार्येण सुधर्मणा रसयुते काव्येऽ
शिष्याय च, स्वान्त स्थाय च जम्बुदेवमुनये यद्दर्शितं प्रेमतः। ज्ञानं शासनन
यकत्वमखिलं तीर्थङ्करत्वं तथा, अन्त्यं श्रेष्ठतमत्वमेव जगतामुद्धारकत्वं पुनः
श्रीयोगीन्द्रशिरोमणेर्भगवतो वीरस्य ज्ञान तथा, चारित्रं खलु दर्शनं च मनु
स्वाध्यायज्ञानं मुहुः। सुस्पष्टं च निदर्शितं प्रवितत केन प्रकारेण च, तद्वन्नु
साम्यमेवमखिलब्रह्माण्डभाण्डोदरे ॥ स्वाध्यायं प्रतिप्रेमिणा च महता लभ्मा
कानां पुरः, श्रीमज्जैनगदेवनायकवराणां सुन्दरं चोत्तमम्। सन्नित्यं हितकारक
शययुतं तेनैव साकं तथा, अध्यात्म्याख्ययत्यान्वितागनमहाचार्यामराणामल्प
एवं कोविदकाव्यकौशलयुजा सम्भूय सर्वाशय, टीकाया सुसमन्वित प्रवि
कृत्वाऽत्र सन्दर्शितम्। जैनानां च नृणां तदन्यविदुषां स्थान प्रदत्त पु
शास्त्राणां निखिल समन्वयमतोऽभेदेन दाभन्कृतम् ॥ अय निर्विवाद स्वय सि
स्य, समस्तस्य काव्यस्य मूल श्लिष्यति। उग लिकमध्यामत ताम्भसा च,
प्रार्जनं गाथायासदन ॥ सदा सुधर्मास्य तेजोमयस्य, सुधर्माऽऽर्यदेवस्य चे
शिष्य। नगो जम्बने स्वस्य पाल्मारतत्व प्रभासस्य सुस्थापनार्थं प्रयासात् ॥ तथ
स्यात्सनत्वात्मम पद्मेव, सदा सत्प्रयत्न स्य ऽऽपामकथम्। सुना सम्य न चा

मालार्थकस्य, प्रबोधार्थमत्यन्तमावश्यकत्वम् । अतोऽस्य मूल्यतायं सम्प्रधार्य, बृहत्स्तुत्यमेततयाऽध्यात्मपूर्णम् । श्रमाऽध्यायजस्य यथा मुदिताद्यैः, समस्तं यथार्थानुभावं च ज्ञात्वा ॥ सुसंस्कारशब्देन वा भाषया च, समृद्धं कृतं तस्य मुख्योऽस्ति हेतुः । तथा मातृभाषानिबद्धं प्रसिद्धं, जनानामनेकार्थतत्वप्रदीपम् ॥ तथा ज्ञापनार्थं च भावस्य तस्य, कृतुर्वा मृदुर्वाऽस्य भाषानुवादः । तदाऽऽवश्यकत्वं च तस्यैव भावं, मृदुत्वं प्रगृह्य स्फुटं भासते च ॥ गुर्जरे चानुवादोऽस्य कालीय-कच्छानिवासेन क्षेमेन्दुनाऽस्य प्रकाशः । कृतः श्रावकेणाय तस्यैव तत्त्वं, तथा सुप्रसिद्धोऽनुवादः स्वतन्त्रः ॥ कदाचिज्जनानां त्रिपुटदलवृन्दे च जनता, प्रसत्तानामेवं यदि सदुपयोगश्च भवति । सदैतद्भावेन विबुधजनसेवानु निरतः, प्रकाशं सर्वेषाऽखिलविशदबोधाय कृतवान् ॥ पवित्रोऽयं पाठो बहुरुचिकरो मेऽस्ति मनसा, करोमि स्वाध्यायं मननपरिपूर्णेन सुरतः । महानन्दस्वादो भवति करणाद्यास्य सततं, सुलब्धं सौभाग्यं प्रतिदिनवितृष्णो विरमति ॥ मुमुक्षूणां चित्ते सुखरसनुशान्ति वितनुते, मुहुर्जिज्ञासा नो बहुविधमलं चास्य विवृतिः । तदा जाता भावाखिलनतिनुपूर्तिर्निगदिता, सदेवं ज्ञातव्यं यतिमुनिगणैर्मुक्तिनिलयैः ॥ यदाऽऽवश्यकत्वेन यस्याऽस्ति पूर्तिः, प्रजाता च संस्कारतोऽनेकवारम् । समर्थश्च सर्वांगतो लब्धमेतत्तदाऽस्योत्तरं पत्रमेतद्ददातु ॥ अथो पाठकानां जनानां च स्पर्शं, तथा वाचकोपर्य्यतो मुक्तमेतत् । ममाऽस्य प्रदेशेन वा ज्ञापनेन, न चाऽऽवश्यकत्वं न वा कारणत्वम् ॥ यदा पीयते चामृतं स्वादवद्भिस्तदा नोच्यतेऽमलता मेऽस्ति कीदृक् । सुमिष्टं च तिक्तं मदीयं कियद्वा, प्रसिद्धं हि लोके रसास्वादुकत्वम् ॥ मुदा वर्णनं नस्य जिह्वा करोति, स्वयं वर्णनस्यातिलेतुं विधत्ते । तथा न्यायमार्गानुरोधेन चैव, स्वकीयापरी लेखनी स्थापतेऽत्र ॥

भावार्थ—यह काव्य [illegible] अनुपम और [illegible] वस्तु है और **'वीरस्तुति'** या **'पुच्छिस्सुणं'** के नामसे अतिप्रख्यात है। बहुतसे [illegible] को यह मुखस्थ [illegible] है, अनेक जिज्ञासु [illegible] इसका [illegible] और जैन समाजमें यह पवित्र पाठ इतना [illegible] है कि इसके कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रभुके अनन्तसामर्थ्यका वर्णन करना तो [illegible] शक्तिके बाहर है, और इस विषयके वर्णन करनेमें [illegible] सुधर्मास्वामी जैसे महान् ज्योतिर्धर और परम योगीको ही योग्य अधिकारी समझा गया है।

अपलक दृष्टिसे स्वाध्यायकरनेपर पाठकोंको इस काव्यमें कई स्थलोंपर कुछ पुनरुक्तिएँ भी प्रतीत होंगी, परन्तु प्रत्येक शब्द और शब्द-स्वामी गणधरदेवके वाक्यका तुलनात्मकदृष्टिसे मनन करनेपर तत्वका सम्पूर्ण और सर्वाङ्ग रहस्य इस प्रकार सरलतासे समझमें आता है कि गणधरभगवान्‌का मुख्य आशय प्रत्येक शब्द और अर्थमें कितना भिन्न और स्पष्ट है।

इस काव्यमें भगवान् सुधर्माचार्य अपने अन्तेवासी शिष्य जम्बूको यह बताते हैं कि शासननायक-चरमतीर्थंकर-जगदुद्धारक-श्रीमहावीरयोगीन्द्रचूडामणिके ज्ञान-दर्शन और चरित्र आदि गुण किस प्रकारके थे, उन गुणोंकी तुलना जगद्‌भरकी सर्वोत्तम सारभूत वस्तुओंके साथ करके प्रभुका महत्त्व बताया गया है।

स्वाध्यायप्रेमी महानुभावोंके सन्मुख श्रीमद्गणधरोंके परमसुन्दर और हितरूप आशयके साथ मिलते जुलते भाव तथा अन्यान्य अध्यात्मरसिक आचार्य और कविकोविदोंके आशयोंका भी इस विवृतिमें समन्वय किया है और जिसमें जैन तथा जैनेतर ग्रन्थोंको स्थान देते समय किसी प्रकारका भेद नहीं रक्खा है।

यह निर्विवाद और अपने आप सिद्ध है कि इस काव्यका मूल और विवृत्ति दोनों ही अध्यात्मरसमें परिसिक्त हैं क्योंकि गणधरपदविराजित महाप्रभावशाली श्रीसुधर्माचार्य भगवान्‌की तो यह कृति है, और मनुष्यमात्रको अपने जीवनमें अपने आत्माके ऊपर अध्यात्मविषयक प्रभाव डालनेके लिये इस प्रकारके उत्तमोत्तम पाठोंको सदैव बोलते रहनेका अभ्यास रखनेकी तथा उसके तत्वमयभावार्थको समझनेकी भी अत्यन्त आवश्यकता है, अत इसी मूल आशयको लेकर इस महान् एवं अमूल्य अध्यायको यथामति यथाशक्ति एवं यथानुभव संस्कृतविवृति तथा भाषानुवादसे समृद्ध किया है। इसका एक मुख्यकारण यह भी है कि हमें भगवान महावीर प्रभुका देना है और उसे उनके तत्त्वको संसारके कोने कोने तक पहुंचाकर ही पूरा किया जा सकता है। और मातृभाषामें सर्वसाधारण जनताका [illegible] और उसका अन्तर्भाव समझानेकेलिये इसके सरलार्थबोधक भाषान्तरकी भी बड़ी आवश्यकता है। इन्हीं भावोंको लेकर इसका गुर्जर अनुवाद भी कलकत्ता निवासी श्री [illegible] ने करवाया है, और उन्होंने भी इसका [illegible] स्वतन्त्र अनुवाद किया है। यदि सहृदयोंके यह [illegible] जैनसमाज तथा [illegible] लिए कुछ उपयोगी हो

जके इस भावसे प्रेरित होकर इसका प्रकाशन किया है। मुझे तो इसके प्रति-समयके स्वाध्याय और पाठसे भरपूर शांतिसुधाधाराका अव्यवच्छिन्नरूपसे आस्वादन करनेका पूर्ण सौभाग्य मिल रहा है। अतः मुझे पूर्ण आशा है कि अन्यान्य मुमुक्षुमहानुभावोंको भी इसके निरन्तर पाठ तथा मननात्मक स्वाध्यायसे अवश्य शान्तरसकी प्राप्ति होगी। यद्यपि इसकी कई आवृत्तिएँ निकलकर प्रकाशित हो चुकी हैं परन्तु यह संस्करण जिस आवश्यकताकी पूर्तिमें सर्वाङ्ग सफल हुआ है इसका उत्तर पाठकगणोंके ऊपर ही छोड दिया जाता है; कहने सुनने और लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। कारण यह है कि जिस समय अमृतका पान किया जाता है उस समय वह जनताको यह नहीं कहता है कि मेरा स्वाद कैसा है? इसका वर्णनतो जिह्वा स्वयं करने लगती है तथा उसकी प्रशंसाके पुल बांध देती है। अतः इस न्यायको लक्ष्यमें रखकर इस स्नेहलेखनीको विराम देता हूं॥

लघुतम—

'पुप्फ भिक्खु.

सहायक

वीरस्तुतिकी विभूतिके अर्थ जिन जिन पुस्तकों का अवलोकन करके अपने अनुभवानुसार जिन जिनके प्रमाण अङ्कित किये है उनका नामोल्लेख इस प्रकार है।

व्याख्याप्रज्ञप्ति-आचाराङ्ग-विशेषावश्यकभाष्य-धन्यकुमारचरित्र समवायाङ्गसूत्र-निर्युक्ति-सूयगडांगसुत्त-शब्दार्थचिन्तामणि-अमरकोष-कुलार्णव मेदिनी-धनञ्जयनाममाला-धनञ्जयकोष-चन्द्रसोममहानिधि-वर्णनिर्णय-धर्मसारसमुच्चय-उत्तराध्ययनसूत्र दशवैकालिकसूत्र-मार्कण्डेयपुराण-सुभाषितरत्नसन्दोह-तत्त्वार्थाधिगम-मनुस्मृति-बृहद्द्रव्यसंग्रह-परमात्मप्रकाश-याज्ञवल्क्यस्मृति-स्थानाङ्गसूत्र-अमितगतिश्रावकाचार-समयसार-प्रवचनसार नियमसार-योगशास्त्र-पतञ्जलियोगदर्शन-महानिशीथ-सागारधर्मामृत-पद्ममयपार्श्वनाथचरित्र-अभिधानप्पदीपिका-महाभारत-ज्ञानार्णव-आवश्यकचूर्णि-जैनप्रश्नोत्तर[illegible]-परिशिष्ट पर्व-[illegible]-मज्झिमनिकाय-पुरुषार्थसिद्ध्युपाय-रत्नकरण्डश्रावकाचार-गोम्मटसिद्धान्त-मूलाचार-आवश्यकभाष्य-प्रज्ञापनासूत्र-प्रवचनसारोद्धार-भगवती आराधनासार स्तोत्रसमुच्चय-स्तोत्ररत्नाकर-काव्यमाला.

इन सब पुस्तकोंके सुलेखक एवं अनुवादकोंका एक साथीदारोंके नातेसे इनके साधको मैं कभी नहीं भूल सकता। तदुपरान्त प्रत्यक्ष या परोक्षमें जिन जिन महानुभावोंने प्रोत्साहनप्रेरित किया है उन सबका उल्लेख करना मन में क्योंकर विस्मृत करसकूं!

विभूतिकारः

इसी प्रकार महाकवि धनपालने भी महावीर स्तुति संस्कृतमें रची है। परन्तु उसमें विरोधाभासके अलंकारोंका ऐसा संमिश्रण किया है कि कोई भी रसिक आत्मा उनके रसास्वादनसे पुलकित हुये बिना न रह सकेगा।

आशय यह है कि स्तोत्रके या स्तवनके साहित्यमें कविगणके उपासना प्रकार और तत्त्वज्ञानके अमोघ विचारोंके गर्भित करनेका एक कालमें रिवाज था। और जो श्रीसूत्रकृतांगसूत्रके छठे अध्यायमें समाई हुई वीरस्तुतिको विचारपूर्वक पढ़ेगा, अवधारण करेगा उसे उसमेंसे उपासनाके रस-आनन्दके उपरांत प्रभु महावीरके यथार्थस्वरूपका भी विचार समझमें आ सकेगा।

प्रकृतिके इस प्राकृत सिद्धान्तात्मक नियमानुसार मुनिश्रीने भी यथासम्भव शुद्धतापूर्वक संस्कृतवाणीमें टीका रचकर इस स्तुतिके मूलके साथ प्रकट किया है, और जैनसाहित्यकी, जैनउपासकोंकी अत्यधिक सेवा की है।

जैनोंका अधिकांश भाग वीरस्तुतिको प्रेमसे कण्ठस्थ करता है तथा आनन्दके साथ भावुकता पूर्वक पढ़नेका गौरव प्राप्त करता है। अन्यान्य स्तोत्र-स्तवन और स्तुतिओंकी अपेक्षा इसमें एक प्रकारकी विशेषता है जिसके कारण यह स्तुति कण्ठस्थ रहकर इतनी स्वीकृति और आदरको प्राप्त है। यह इसमें एक विशेषता है, परन्तु वह विशेषता क्या है?

महावीरस्वामीके एक समर्थ गणधर श्रीसुधर्मस्वामी स्वयं अपने अन्तेवासी जम्बूके सन्मुख भक्तिपूर्वक गद्गद होकर वीरप्रभुका प्रताप, प्रभाव और माहात्म्यका वर्णन करते हैं। श्रीसुधर्मास्वामीने अपने जीवनकी धन्य घड़ियोंमें जो कुछ देखा सुना एवं अनुभव किया है उसीका वर्णन अपने शिष्यके सामने किया है। स्तुतिको पढ़ते या सुनते समय हमें भी यही प्रतीत होता है कि सुधर्म्मास्वामी महावीर परमात्माकी महिमाका वर्णन करते समय गुण दृष्टिसे मानो यही कह रहे हैं कि "अभी बहुत कुछ शेष है, अभी और बहुतसा अनिर्वचनीय है" वे प्रभुके स्वरूपका कुछ भान करानेकेलिये जगत्की उत्तमोत्तम सामग्रीओंके साथ उनकी तुलना करते हैं। मेरु पर्वत, नन्दनवन, चन्द्रमा, स्वयम्भूरमण समुद्र इनमेंसे सभी कुछ यानी किसी भी सुन्दर वस्तुको वे नहीं भूले हैं। तथापि अन्तमें नेति-नेति कहकर मानो विराम पा रहे हैं। प्रभुके गुण अपार होनेसे उनका अन्त ही न आयगा ऐसी सूचना करनेका आभास भी इसमेंसे मिल रहा है।

जिस वीरपरमात्माका शब्दचित्र इतना भव्य है तब उनके साक्षात् परिचयमें आनेवाले श्रीसुधर्मास्वामीके अन्तरमें इस स्तुतिकाव्यकी स्फुरणा हुई होगी तब उन्होंने कैसी रमणीय अन्तस्तलरचनाका अनुभव किया होगा। तीनलोककी उत्तमोत्तम रमणीयता भी भगवान्‌के सत् स्वरूपके सन्मुख उनको तुच्छ लगती होगी। इतनेपर भी भगवानकी पहिचान करानेके लिये वे प्रयत्न करते हैं और एक अमर स्तुतिकाव्य रचकर जगत्‌को सौंप देते हैं।

महावीरके भक्तोंके मनको महावीर भगवान्‌के यथार्थ स्वरूपकी सुन्दर और गहरी झांकी हो उसकी अपेक्षा मूल्यवान् उपादेय वस्तु और क्या हो सकती है। जनवर्ग इस स्तुतिके पठन पाठन और चिन्तनके प्रतापसे उनके सिद्धान्तोंका अनुसरण करनेके लिये भाग्यशाली हो! इतनी ही प्रार्थना करना बस है।

ज्ञातसेवक

॥ अभिप्रायाः ॥

ज्ञातृपुत्रमहावीरः, सर्वज्ञस्तु जगद्गुरुः ।
तस्य स्तुतेर्मनोरम्या, सा टीका कस्य न प्रिया ॥
निखिलागमविज्ञेन, सिन्धवङ्गविहारिणा ।
निर्मिता पुष्पचन्द्रेण, सा टीका कस्य न प्रिया ॥
गीर्वाणी हैन्दवीभाषा, गुर्जरीया तथैव च ।
त्रिभाषासङ्गमो यत्र, सा टीका कस्य न प्रिया ॥
भवबन्धापहर्त्री च, सूत्रबोधस्य दीपिका ।
शरण्या सर्वजीवानां, सा टीका कस्य न प्रिया ॥
वाच्यवाचकभावस्तु, स्फुटो यत्र विधीयते ।
लालित्यादिगुणैराढ्या, सा टीका कस्य न प्रिया ॥
विबुधेन्द्रमुनीन्द्राणां, चरतां शास्त्रवर्त्मसु ।
कंठाभूषणकं भाति, सा टीका कस्य न प्रिया ॥
विद्यापीठे तु संस्थाप्य, टीकां पाठ्यविधायका ।
धर्मोन्नतिश्च कर्तव्या, हि पुष्करमुनेर्मतम् ॥

व्याकरण-काव्य-न्यायतीर्थः
पुष्करो मुनिः—

संसारार्णवसेतुनामुपगता सिद्धान्तचिन्तापरा,
कल्याणायनदर्शिकाऽस्त्यविरत सत्प्राणिना सर्वत ।
हिन्दी-संस्कृत-गुर्जरी प्रभृतिभिर्भाषाभिराभूषिता,
श्रीपुष्पेन्दुमुनीश्वरेण विजयते वीरस्तुतेर्विवृति ॥ १ ॥

ता० १-९-३९
विद्यामन्दिर
कानपुर.

पाण्डेय देवेन्द्रनाथ शर्मा

पुस्तक दर्शनीय है, मूलगत भावोंको काफी सरलताके साथ समझानेकी चेष्टा की गई है। यथा प्रसंग अन्य ग्रन्थोंके उद्धरण सोनेमें सुगन्धिका काम करते हैं यह अतिशयोक्ति न होगी। यदि मैं कहूं कि वीरस्तुतिका इतना लोकप्रिय संस्करण अभी तक कहींसे भी प्रकाशित नहीं हुआ।.............. कुछ स्थान ऐसे भी हैं जहां लेखक स्वतन्त्र होकर चल पड़ा है, अस्तु तत्तत् स्थलोंपर लेखकसे हमारा 'मत' भेद है। परन्तु ये सब बातें **"एको हि दोषो गुणसंनिपाते, निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः"** की सदुक्तिके अनुसार अन्य श्रेष्टताओंमें छुप जाती हैं। स्थानकवासी (जैन) समाजकी ओरसे ऐसी सुन्दर कृति उपस्थित करने के उपलक्ष्यमें श्रीयुत पुप्फभिक्खु वास्तवमें बधाईके पात्र हैं।

जैनाचार्य-पूज्यश्री पृथ्वीचन्द्रजी महाराज

ता० २५ अगस्त, सन् १९३९

पुस्तक काफी सुन्दर लिखी गई है, बहुतसे स्थलोंपर तो व्याख्या काफी प्रभावोत्पादक हो गई है। संस्कृत हिन्दी और गुर्जर तीनों भाषाओंमें व्याख्या को ढालकर लेखकने क्या विद्वान् क्या सर्वसाधारण सभीके लिये अध्ययनका मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

श्रीयुत पुप्फभिक्खुने अन्य भी उपयोगी पुस्तकें लिखी हैं, परन्तु प्रभु महावीरके चरणोंमें उनकी यह श्रद्धाञ्जलि तो अतीव उत्कृष्ट श्रेणीपर पहुंच गई है। मैं आशा करूंगा कि समाज उक्त कृतिको अधिकसे अधिक अपनायेगा और प्रभु वीरके गुणगान द्वारा लेखकके श्रमको सफल करता हुआ अपने जीवनको भी सफल बनायेगा॥

व्याख्यान वाचस्पति पंडितश्री मदनलालजी म०,

ता० २५ अगस्त, सन् १९३९

ग्रन्थ परमोपयोगी है इसमें कुछ सन्देह नहीं कि मुनिजीने हर एक विषयको बड़ी सरलतासे और साथ ही सरस [illegible] है। आशा है कि इधर मुमुक्षु [illegible] मुनिजीका श्रम और [illegible] प्रतीत [illegible] है।

[illegible] —

'मुनि बालमित्र प्रेमेन्द्रः'

वीरस्तुति नामकी पुस्तक देखी, लेखक मुनिश्रीने अत्यन्त परिश्रमसे तैयार कर जैन समाजपर उपकार किया है। तीर्थंकरोंकी स्तुति करना आत्माको पवित्र बनाना है। तीर्थंकरोंकी स्तुतिकरते हुये उच्चकोटिकीभावना आजाय तो तीर्थंकर जैसी आत्मा बनजाती है। अतः जैन समाजको सम्मति देता हूं कि वीरप्रभुकी स्तुति हमेशा पढ़ा करें। जैनाचार्य पूज्यश्री खूबचन्दजी महाराजका सम्प्रदायानुयायी—आर्य जैन मुनि हीरालाल २९-८-३९, अंबाला शहर

साहित्याकाशभ्रमणभानु पुप्फभिक्खु रचित संस्कृत और हिन्दी भाषामें वीरस्तुतिका दर्शन किया। आपने इस उन्नतिके युगमें इस प्रकार लेखनी उठाकर जैन संसार पर ही नहीं बल्कि भव्यशास्त्ररसिकोंका कल्याण कार्य किया है। यह रचना रोचक और हृदयग्राह्य है, मानवके आन्तरिक विचार इसका स्वाध्याय करते करते भक्तिसागरमें लहरायमान होने लगते हैं।

वीरस्तुतिके विषयमें मेरा इतना ही कहना बस है कि इसका सम्पादन विज्ञानके युगमें वैज्ञानिक ढंगसे किया गया है, अतः स्थानकवासी जैनसमाजके लिये यह बड़े गौरवकी वस्तु है। जैन समाजके मुनि धार्मिक ग्रन्थ शास्त्र अथवा अन्यान्य ग्रन्थोंपर टीका रचना कुछ भूलसे गये थे। लोंकाशाहके अनन्तर स्वतन्त्र साहित्य विषयका सर्जन रुकसा गया था परन्तु पुप्फ भिक्खुने वीरस्तुतिके प्रभावसे उस कमीकी पूर्ति कर दी। हे पुप्फभिक्खु! साधुवाद!

शासन प्रेमी-धनचन्द्र भिक्खु ता० २८-८-३९, इंदौर (मध्यभारत)

अयि, अखीनरोगनुपिमुपितदोपाः! अर्जितविद्याकोपाः! धिमाधीताध्यातारोप- जैनमुनिप्रवराः! विदितमस्तु अत्र भवतां धीमतां, यन्मुनि पुङ्गवेन श्रीफूलचन्द्रेण रचितं मना कन्दनकं काव्यं मया सम्यक्तमवलोकि, दर्शाधिनं सत्सान्ते यदेतत्काव्यं शिक्षयति जैनमुनीन यदीदर्शन गुरुता भाव्यं नैपद्वेन च लिप्येन। ये हि मुनयः पूर्वतरगीर्वव शिष्यार्न्दीक्षयन्ति तेऽचिरादेव पक्व- प्रवान्ति। [illegible]
[illegible]

पण्डित-हंसराजशास्त्री, व्याकरणरत्न, साहित्याचार्यश्च.

प्राक्कथन

श्रीमत्सूत्रकृताङ्गसूत्रके पंचम अध्यायमें 'नरकविभक्ति' का अधिकार प्रतिपादन किया गया है और वह ज्ञातपुत्र महावीर भगवान्‌ने स्वयं कहा है। इसके अनन्तर उनका ही चरित्र इस गुणकीर्तनविभूतिरूप छठें अध्यायमें वर्णन किया है।

शास्त्रोपदेशकके महत्त्वसे शास्त्रका महत्त्व है इस सम्बन्धसे इस अध्यायके उपक्रमादि चार अनुयोग होते हैं। उसमें भी उपक्रमके अन्तर्गत जो अर्थाधिकार है वह महावीर प्रभुके गुणसमूहका उत्कीर्तनरूप है। अनुयोगका दूसरा भेद निक्षेप है, जिसके दो प्रकार हैं। ओघनिष्पन्न और नामनिष्पन्न। ओघनिष्पन्न निक्षेपके रूपमें यह अध्याय और नामनिष्पन्नके रूपमें महावीर स्तुति। उसमें 'महत्' 'वीर' और 'स्तव' के निक्षेप उल्लेखनीय हैं।

'जैसा उद्देश वैसा निर्देश' इस न्यायके अनुसार प्रथम 'महत्' शब्दका निर्णय किया जाता है। यह 'महत्' शब्द बहुरूप है। जैसे कि '*महाजन*' *बड़ा आदमी है।* '*महाघोष*' *अतिरूप है।* *महाभय-भयानक* रूप है। महापुरुष सबमें बड़ा पुरुष है। ये चार अर्थ 'महत्' शब्दके प्राधान्य अर्थमें मान्य हैं। यथा—

> पाहणे महासद्दो, दव्वे खेत्ते य काले भावेय।
> वीरस्स उ णिक्खेवो, चउक्कओ होइ णायव्वो ॥

महावीर स्तवमें 'महत्' शब्द प्राधान्य अर्थ में है, और वह नाम-स्थापना-द्रव्य क्षेत्र काल और भाव इन भेदोंमें छ प्रकारका है। इस प्राधान्यमें नाम और स्थापनाके भेद तो सुगम ही हैं। [illegible] प्राधान्य ज्ञ शरीर-भव्य शरीर और ज्ञ भव्य व्यतिरिक्त ये तीन भेद [illegible] व्यतिरिक्तके सचित्त-अचित्त और मिश्र ये तीन प्रकार हैं। [illegible] और [illegible] चतु-[illegible]-स्थ-भाव [illegible]।

[illegible] प्राधान्य है।

क्षेत्रमें सिद्धक्षेत्रका प्राधान्य है। धर्म-चारित्रके आश्रयसे विदेहक्षेत्र प्रधान है और उपभोगकी अपेक्षा देवकुरु आदि क्षेत्रका प्राधान्य है। काल प्राधान्य-एकान्त सुषम आदि आरक अथवा धर्मचरणके स्वीकार करने योग्य काल विशेष।

भाव प्राधान्य क्षायिकभावमें है।

अब 'वीर' शब्दके द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव ये चार भेद निक्षेप ज्ञ शरीर भव्य शरीरको छोडकर ज्ञ भव्य व्यतिरिक्तमें द्रव्यसे वीर द्रव्यकेलिये संग्रामादिमें अद्भुतकाम करनेसे शूर पुरुष अथवा जो कुछ वीर्यवत् हो।

क्षेत्र वीर-क्षेत्रमें अद्भुत काम करनेवाला वीर होता है। अथवा जहां उसके वीरत्वकी गाथायें गाई जाती हों वह। इसी प्रकार कालके आश्रयसे भी जानना चाहिये। भाव वीर वह है जिसका आत्मा क्रोध-मान-माया और लोभ परिषह आदिसे निर्जित न हो। यथा—

> पंचेंदियाणि कोहं, माणं मायं तहेव लोहं च।
> दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वमप्पे जिये जियं॥

भावार्थ-पांच इन्द्रियें-क्रोध-मान-माया और लोभको आत्माके लिये जीतना दुष्कर है। यदि एक आत्मा जीत लिया तो सब कुछ जीतलिया समझना चाहिये।

> जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे।
> एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ॥

भावार्थ-जो योद्धा लाखों सुभट युक्त दुर्जय संग्रामको जीत लेता है उससे अधिक आत्माको जीतनेवाला परम जयवान् होता है।

[illegible]

[illegible]

स्तवके सम्बन्धमें निक्षेपादि—

स्तव-स्तुति के नाम आदि चार निक्षेप हैं, जिसमें नाम और स्थापनाको पूर्ववत् जानना योग्य है। द्रव्य 'स्तव' ज्ञ शरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त जो पांच अभिगमकी मर्यादा करके तीर्थंकर भगवानका सत्कार करना है और भाव स्तवतो जहां गुण विद्यमान हों उनका उपयोग पूर्वक कीर्तन करना है।

अथ प्रथम सूत्रके संस्पर्श द्वारसे सम्पूर्ण अध्यायका संबन्ध प्रतिपादन करनेवाली गाथाका वर्णन करते हैं। यथा-

"पुच्छिस्सु जंबू णामो अज्जसुहम्मा तओ कहेसीय।
एव महप्पा वीरो जयमाह तहा जएज्जाहि॥"

भावार्थ-जम्बूस्वामीने आर्य सुधर्म्मास्वामीसे श्रीमान् महावीर प्रभुके गुणोंके सम्बन्धमें प्रश्न किया है। सुधर्म्मास्वामीने 'भगवान् ऐसे गुणोंसे युक्त थे' यह कहा और उस भगवानने इस प्रकार संसारको जीतनेके बोध दिये अतः आप भी भगवानकी तरह संसार जीतनेका प्रयत्न करें।

अधुना निक्षेपके पश्चात् सूत्रानुगममें अस्खलितादि गुणयुक्त सूत्र कहने योग्य है और वह यह है—

बंभचेरं, लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते ॥ २३ ॥ ठिईण सेट्ठा लवसत्तमा वा, सभा सुहम्मा व सभाण सेट्ठा। निव्वाण सेट्ठा जह सव्वधम्मा, ण णायपुत्ता परमत्थि णाणी ॥ २४ ॥ पुढोवमे धुणइ विगयगेही, न सण्णिहिं कुव्वइ आसुपन्ने। तरिउं समुद्दं व महाभवोघं, अभयंकरे वीर अणंतचक्खु ॥२५॥ कोहं च माणं च तहेव मायं, लोभं चउत्थं अज्झत्थदोसा, एआणि वंता अरहा महेसी, ण कुव्वइ पाव ण कारवेइ ॥ २६ ॥ किरियाकिरियं वेणइयाणुवायं, अण्णाणियाण पडियच्च ठाणं। से सव्व वाय इति वेयइत्ता, उवट्ठिए संजमदीहरायं ॥२७॥ से वारिया इत्थिसराइभत्तं, उवहाणवं दुक्खखयट्ठयाए। लोगं विदित्ता आरं परं च, सव्वं पभू वारिय सव्ववारं ॥२८॥ सोच्चा य धम्मं अरहंतभासियं, समाहियं अट्ठपदोवसुद्धं। तं सद्दहाणा य जणा अणाऊ, इंदा व देवाहिवा आगमिस्संति ॥ २९ ॥ त्ति बेमि ॥

सिरि वीरत्थुई समत्ता

अपने जैन मुनिओंसे प्रार्थना

सैकेडों वर्षोंसे अपने अपने असत्यंश गुरुओं और बड़े बूढ़ोंके नामसे पुजती आनेवाली प्रचलित ३२ सम्प्रदायोंसे जैनसमाजको अब तक कुछ भी लाभ न होकर प्रत्युत अधिकाधिक हानि ही उठानी पड़ी है। पूर्वकालमें भी जब इन गच्छ और पार्टियोंसे कुछ लाभ और उन्नति नहीं हुई तब इस अनावश्यक और घृणास्पद बाड़ाबंदी एवं सम्प्रदायवादके नामकी टिकापेटी इस क्रान्तिकारी वैज्ञानिक-नवयुगमें जरासी भी आवश्यकता नहीं है। आजका नवयुग मनुष्य समाजमें साम्यवाद एवं आपसी प्रेमको बढ़ाना अपना मुख्य कर्तव्य समझता है किन्तु इस बे ढंगे कुतर्क सिद्ध वैषम्य वादको बिल्कुल नहीं चाहता। इसलिये इन प्रचलित सब सम्प्रदायोंको जड़-मूलसे मिटाकर एक मात्र "ज्ञातपुत्र महावीर भगवान्" के किसी भी एक नामसे अपनी सम्प्रदायका परिचय देना चाहिये। जिससे जैनसमाजकी मुद्दतसे बिखरी हुई ज्ञानशक्ति-सम्पदशक्ति और प्रेमशक्तिका फिरसे पुष्ट संग्रह हो सके। अतः निवेदन है कि अपने बड़े बूढ़ोंके नामका झूठा मोह नाम मात्रको भी न रखकर महावीर भगवान्का नाम और उनका स्याद्वादसिद्धान्त ही यत्र तत्र सर्वत्र प्रकाशित करना चाहिये क्योंकि प्रत्येक जैनको भगवान् महावीरकी देन है और वह सम्प्रदायवाद-पक्षवाद-जड़वाद-गच्छवाद-टोलावाद-जातिवाद अधिकारवाद मत्तावादको जड़से मिटाकर एकता एवं सङ्गठन शक्तिसे जाति समाज और देशका दासत्व दूर करके प्राणीमात्रमें प्रेमभाव रखनेसे ही पूर्ण की जासकती है।

प्रार्थी—

ज्ञातपुत्र-महावीर जैन संघीय-

'पुप्फभिक्खु'

विषयानुक्रमणिका।

ॐ

नमोत्थुणं समणस्स भगवओ णायपुत्त महावीरस्स

वीरस्तुतिः ।

हिन्दी-गुर्जरभाषान्तरसमुल्लसितया
संस्कृतटीकया सनाथीकृता

मूल—

पुच्छिस्सु णं समणा माहणा य,
आगारिणो या परतित्थिआ य ।
से केइ णेगंतहियं धम्ममाहु,
अणेलिसं साहुसमिक्खयाए ॥ १ ॥

संस्कृतच्छाया—

अप्राक्षुः श्रमणा ब्राह्मणाश्च, अगारिणश्च परतीर्थिकाश्च ।
स क इत्येकान्तहितं धर्ममाह, अनीदृशं साधुसमीक्षया ॥ १ ॥

अथ ज्ञातपुत्रमहावीरजैनसंघीया-संस्कृतटीकायाः मंगलाचरणम् ।

ध्यायं ध्यायमशेषनाकप्रभुसन्मर्त्यार्चिताङ्घ्रिद्वयं,
मोक्षश्रीपरिणीतिसम्भवमहानन्दोल्लसन्मानसम् ।
श्रीवीरप्रभुमीश्वरं तदनु च ज्ञानप्रदं श्रीगुरुं,
नामं नाममशेषभव्यमहितं श्रीफूलचन्द्रो मुनिः १

श्रीमत्सूत्रकृताङ्गमध्यविलसत्सुश्लोकवीरस्तुते-
र्भव्यानां भवबन्धभेदमनसामानन्दसंवर्द्धिनीम् ।
कुर्वेऽहं विवृतिं तदर्थगतिकृद्भापान्तरोद्भासितां,
तेन श्रीत्रिशलात्मजाऽन्तिमजिनः प्रीयात्समाराधि

टीका—इहापारावारसंसाराटव्यां परिभ्रमणं कुर्वतां प्राणि
चुल्लकादिदशभिर्दृष्टान्तैरतिदुर्लभं मानुष्यं, तत्राप्यार्य्यदेश-कुलाऽऽयु-रा
ज्य-सममेन्द्रियानुकूलसामग्रीसंयोगो दुर्लभतरः, तत्राप्यतिदुर्लभत
श्रीजिनधर्म्मप्रवृत्तिः । तत्रेह जगतीदरः श्रीसर्वज्ञोक्तधर्मः परममङ्ग
समस्तशारीरमानसादिदुःखोच्छेदकश्चाप्यस्ति । धर्मश्चासौ चतुर्धा दा
शीलतपोभावभेदाः, तत्र चतुर्णां धर्मभेदानां मध्ये सर्वज्येष्ठो धर्मो दा
धर्मः, सर्वेष्वपि धर्मभेदेष्वन्तश्चारित्वात् । तथाहि—लौकिके लोको
च सर्वत्र दानप्रवृत्तिर्ज्येष्ठतरा, श्रीमन्तस्तीर्थंकरा अपि प्रथमं वर्षीयद
दत्वा पश्चाद्भिक्षुव्रतं गृह्णन्ति; पुनश्च शीलधर्म्मेऽपि दानधर्म्मोऽविच्छि
एव, यतो ब्रह्मचर्य्यव्रतग्रहणेऽसंख्यद्वीन्द्रियाणामसंख्यसम्मूर्च्छिमपं
न्द्रियाणां नवलक्षगर्भजपञ्चेन्द्रियाणां च कृते प्रतिदिनं ब्रह्मव्रतिना
भयदानं दत्तम्, सजीवस्याऽप्यभयदानमाप्तं तेन गर्भादिदुःखनाश
त्वात्मेति; व्यवच्छिन्नतया हि शीलेष्वपि दानस्य मुख्यता । तथैव त
धर्मेष्वपि दानमन्तर्भवति, यतो षड्जीवनिकायविराधनया च आहा
निष्पाद्यते, परन्तूपवासादितपसि कृते तु तेभ्योऽभयदानं प्रदत्तं तत
तपस्स्वपि दानमन्तर्भूतम् । भावधर्म्मे तु सुतरामेव, यतः 'परमक
णया जीवाजीवाऽहिंसनपरिणतिर्भावः' तत्राऽप्यभयप्रदानद्वारा दान
पर्य्यवस्यति, जैनमुनयोऽपि प्रतिदिनं देशनादानं ज्ञानशिक्षादानं
ददति; अतो दानस्य त्रिष्वप्यन्तर्भावान्मुख्यतया प्रथमं दानस्योपाद

कृतम् । परं तद्भावपूर्वकं हि सफलतामेति । दानादिरूपं हि धर्म्मरत्नं प्राप्य सुकुलोत्पत्तिसमस्तेन्द्रियसामग्र्याद्युपेतेनाऽनेकान्तवादरूपमार्हतदर्शनपरिज्ञाय चाशेषकर्म्मोच्छित्तयेऽवश्यं प्रयतितव्यं मन्ये नेति । परन्तु कर्म्मोच्छेदस्यापि सम्यग्विवेकसव्यपेक्षोऽसावपि ह्याप्तोपदेशमन्तरेण न सुलभः, आप्तश्चात्यन्तिकादोषक्षयात्, स चार्हन्नेव, स हि श्रीज्ञातृपुत्र-महावीरचरमतीर्थंकरस्तस्य स्तुतौ कृतयत्नोऽस्मीति, कोविदमुख्यैरिह जगति तस्य गुणवर्णनं बहुधा कृतं परन्त्वहमपि तद्गुणवर्णनोत्कटेच्छया तरलीकृतः सम्यग्दर्शनबलेन क्षयोपशमबलेन च किञ्चिद्विवरीतुं यतिष्ये । किमनन्तमाकाशे पक्षिराजगतं सम्यगवगम्य तेनैव पथा शलभो गन्तुं न वाञ्छति ? वाञ्छत्येवैवमनया रीत्याऽहमप्यल्पज्ञप्रायः परं किञ्चिद्धि श्रीसूत्रकृताङ्गसूत्रे यज्ज्ञातृपुत्रमहावीरस्तुतिनामाध्यायस्य व्याख्यां वितनोमि, तद्वीरकृपयैव, न ममाल्पज्ञस्य माहात्म्येनेति । अथ श्रीमन्महावीरस्य प्रभोर्गुणा निगद्यन्तेऽतोऽत्र जम्बूनामधेयोऽन्तेवासी सुधर्म्माणं धर्म्माचार्यं आ=मर्यादया तद्विषयविनयरूपया चर्य्यते सेव्यन्ते जिनशासनोक्तत्यर्थोपदेशकतया तदाकांक्षिभिरित्याचार्यास्तमाचार्य्यम्; उक्तंच—

सुत्तत्थविऊ लक्खणजुत्तो, गच्छस्स मेढिभूओ य,
गणतत्तिविप्पमुक्को अत्थं वाएइ आयरिया ॥ १ ॥

संस्कृतच्छाया—

सूत्रार्थविल्लक्षणयुक्तो, गच्छस्यालम्बनभूतश्च ।
गणततिविप्रमुक्तः सदर्थं वाचयन्त्याचार्या इति ॥

अथवा आचारो ज्ञानाचारादिः पंचधा, आ=मर्यादया वा चारो विहार आचारस्तत्र साधवः स्वयं करणात्प्रभाषणात्प्रदर्शनाच्चेत्याचार्याः ।

पंचविहं आयारं, आयरमाणा तहा पभासंता,
आयारं दंसंता, आयरिया तेण वुच्चंति ॥ १ ॥

संस्कृतच्छाया—

पंचविधमाचारमाचरमाणास्तथा प्रकाशयमानाः ।
आचारं दर्शयन्त आचार्यास्तेनोच्यन्त इति ॥

इति च निक्षेपावसरे—

अथवा आ=ईषत् अपरिपूर्णा इत्यर्थः, चारा हेरिका ये ते आचाराः, चारकल्पा इत्यर्थः, युक्तायुक्तविभागनिरूपणनिपुणा विनेया अतस्तेषु साधवो यथावच्छास्त्रार्थोपदेशकतया इत्याचार्याः । यथाशास्त्राचारोपदेशकतयोपचारित्वात्, तदाचार्यम् । "*द्वादशाङ्गनामाध्यापितारमित्यर्थः । "अधश्चास्याचार्यदाचार्य इत्यमरः" । मोक्षमार्गोपदेष्टरि, श्रीधर्मगुरौ, "इति शब्दार्थचिन्तामणिः" । अथवा—

---

* समवायांगसूत्रगतो द्वादशाङ्गस्य परिचयः संक्षिप्यात्र उद्धृतः स चेत्थम् ।

आचाराङ्गः—आयारेणं समणाणं निग्गंथाणं आयार-गोयर-विणय-वेणइअ-ठाण-गमण-चंकमण-पमाण-जोग-जुंजण-भासा-समिति-गुत्ति-सेज्जो-वहि-भत्त-पाण-उग्गम-उप्पाय-एसणा-विसोहि-सुद्धासुद्धग्गहण-वय-नियम-तवो-वहाणसुप्पसत्थमाहिज्जइ × × × × पढमे अंगे दो सुयक्खंधा, पणवीसं अज्झयणा, पंचासी उद्देसणकाला, पंचासी समुद्देसणकाला, अट्ठारसपयसहस्साइं ।

भावार्थः—समवायांगसूत्रगत द्वादशांगी वाणीका संक्षेपसे इस प्रकार परिचय उद्धृत किया जाता है ।

आचारांगः—आचारांग सूत्रमें इस प्रकार के विषयों का वर्णन किया गया है यथा—श्रमण निर्ग्रंथोंका सुप्रशस्त आचार, गोचर (भिक्षाविधि), विनय, वैनयिक, कायोत्सर्गादि सुन्दर और एकान्त स्थान, विहारभूम्यादि गमन, चंक्रमण अर्थात् टहलना, या शारीरिक श्रम दूर करने के लिए उपाश्रयमें बनते वस्ति में गमन, विश्राम, आहारादि खाद्य पेय पदार्थों का माप, स्वाध्यायादि

'स्वयमाचरते शिष्यानाचारे स्थापयत्यपि । आचिनोति हि शास्त्रार्थमाचार्यस्तेन कथ्यते' । इति कुलार्णवः । "आत्मायतत्त्वविज्ञानाचराचरसमानतः । यमादियोगसिद्धत्वादाचार्य इति कथ्यते" ॥ १ ॥ इति शांकरे ॥ अतोऽत्र जिनधर्म एव मध्यमत्वस्य व्याख्याकृत्, श्रीमान् सुधर्माचार्य इति भावः । तं सुधर्म्माचार्य प्रति श्रीमन्महावीरचरमतीर्थकृद्गुणान् पृष्टवान्, विनयेनेति शेषः "सन्मतिर्महतिर्वीरो, महावीरो-

नियम, नियोग, भाषा समिति, गुप्ति, शय्या, उपधि, भक्त, पान, उद्गमादि (उद्गम, उत्पाद, एषणा) दोषोंकी विशुद्धि, शुद्धाशुद्धग्रहण, व्रत, नियम, तप और उपधान।

प्रथम सूत्र आचारांग में दो श्रुतस्कन्ध, ८५ उद्देशनकाल, ८५ समुद्देशनकाल, तथा १८००० पद संख्या है।

सूत्रकृतः—सूअगडे णं ससमया सूइज्जंति, परसमया सूइज्जन्ति, स-परसमया सूइज्जंति, जीवा सूइज्जंति' अजीवा सूइज्जंति, जीवाजीवा सूइज्जंति, लोगे सूइज्जंति, अलोगे सूइज्जंति, लोगालोगे सूइज्जंति, सूअगडेणं जीवाजीवे पुण्णपावा सवसंवरनिज्जरणाबंधमुक्खावसाणा पयत्था सूइज्जंति । × × × × × असीइस्स किरियावाइयसयस्स, चउरासीए अकिरियवाईणं, सत्तट्ठीए अण्णाणियवाईणं, बत्तीसाए वेणइअवाईणं, तेवीसं उद्देसणकाला, तेवीसं समुद्देसणकाला, छत्तीसं पदसहस्साइं।

सूत्रकृतः—सूअगडांग (सूत्रकृतांग) में प्ररूपित विषय इस प्रकार हैं। स्वसिद्धान्त, परसिद्धान्त, स्व-परसिद्धान्त, जीव, अजीव, जीवाजीव, लोक, अलोक, लोकालोक, जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष तकके सब पदार्थ, इतर दर्शन मोहित नवीन संदिग्ध दीक्षितकी बुद्धिको शुद्ध करनेके लिए १८० क्रियावादी के मत ८४ अक्रिया वादीके मत, ३२ विनयवादीके मत, अज्ञानवादीके ६७ मत, सब मिलकर ३६३ अन्यदृष्टिके मतोंका परिक्षेप करके स्वसमय स्थापन,

सूत्रकृतांग सूत्रमें दो श्रुत-स्कंध हैं, २३ अध्याय हैं, ३३ उद्देशन काल हैं, ३३ समुद्देशन काल हैं। ३६००० पद सख्या है।

न्त्काश्यपः। नाथान्वयो वर्धमानो, यत्तीर्थमिह साम्प्रतम्।" इति धनंजयनाममाला। अथाऽसावपि भगवान् सुधर्मास्वाम्येवं गुणविशिष्टो 'ज्ञातृपुत्रो महावीर इति' कथितवांश्च मां प्रतीति शेषः। एवं चासौ वर्धमानोऽर्हन् "सर्वज्ञो वीतरागोऽर्हन्, केवली धर्मचक्रभृत्" इति धनञ्जयः'। विष्टपस्य संसारस्य सांसारिकविषयस्येत्यर्थः सकृचन्दनव-

---

स्थानांगः—ठाणेणं ससमया ठाविज्जंति, परसमया ठाविज्जंति, ससमयपरसमया ठाविज्जंति, जीवा ठाविज्जंति, अजीवा ठाविज्जंति, जीवाजीवा ठाविज्जंति, लोगा, अलोगा, लोगालोगा ठाविज्जंति, × × × × × तइए अंगे एगसुअक्खंधा दस अज्झयणा, एक्कवीसं उद्देसणकाला, एक्कवीसं समुद्देसणकाला, बावत्तरि पदसहस्साइं।

स्थानांगः—स्थानांग सूत्र में निरूपण किए हुए ये विषय हैं। स्वसमय, परसमय, स्व-परसमय, जीव, अजीव, जीवाजीव, लोक, अलोक, लोकालोक का स्थापन,

तीसरे (स्थानांग) अंग में पांच श्रुतस्कन्ध, दश अध्याय, २१ उद्देशकाल, २१ समुद्देशकाल, और ७२००० पद संख्या है।

समवायांगः—समवाएणं ससमया सूइज्जति परसमया सूइज्जंति, ससमयपरसमया सूइज्जंति, समवाएणं एकाइयाणं एगट्ठाण एगुत्तरियं, परिवुड्ढिए, दुवालसंगस्स य गणिपिडगस्स पल्लवग्गे समणुगाइज्जइ, × × × × × चउत्थे अंगे, एगे अज्झयणे, एगे सुयक्खंधे, एगे उद्देसणकाले, एगे समुद्देसणकाले एगे चउयाले पदसहस्से।

समवायाङ्गः—समवायांगमें स्वसिद्धान्त परसिद्धान्त, स्व-परसिद्धान्त, और एक संख्यामें लगा कर [illegible] पदार्थोंका [illegible] एकोत्तरिक, परिवृद्धिपूर्वक प्रतिपादन है [illegible] पदार्थोंका निरूपण [illegible] है। इस [illegible] प्रतिपादन करने के [illegible] प्रतिपादन किया गया है। चतुर्थ [illegible] श्रुत [illegible] काल, एक समुद्दे [illegible] पद संख्या है।

नितादेरिति यावज्जयं तिरस्क्रियां चकार। "विष्टपं भुवनं लोको जगदिति कोषः" । "परिभवः परानवाभितिरस्क्रियेति कोषः" । अतो

.. व्याख्याप्रज्ञप्तिः—(भगवती) वियाहेणं ससमया वियाहिज्जंति, परसमया वियाहिज्जंति, ससमय-परसमया वियाहिज्जंति, जीवा वियाहिज्जंति, अजीवा वियाहिज्जंति, जीवाजीवा वियाहिज्जंति, लोगे वियाहिज्जंति, अलोगे वियाहिज्जंति, लोगालोगे वियाहिज्जंति, वियाहे णं नानाविहसुरनरिंदरायरिसिविविहसंसइय पुच्छियाणं, जिणेणं वित्थरेण भासियाणं, दव्वगुण-खेत्त-काल-पज्जव-पदेस-परिणाम-जहत्थि भाव अणुगम-निक्खेव-णय-प्पमाण सुनिउणोवक्कम विविहप्पगारपगडपयासियाणं. लोगालोगपयासियाणं, संसारसमुद्दरुंदउत्तरणसमत्थाणं, सुरवइसंपूजियाणं, भवियजणपयहिययाभिनंदियाणं, तमरयविद्धंसणाणं, सुदिट्ठदीवभूयईहामतिबुद्धिवद्धणाणं छत्तीससहस्समणूणयाणं वागरणाणं दंसणाओ, सुयत्थबहुविहप्पगारा, सीसहियत्था × × × × × पंचमे अंगे एगे सुयक्खंधे, एगे साइरेगे अज्झयणसए, दस उद्देसगसहस्साइं, दस समुद्देसगसहस्साइं, छत्तीसं वागरणसहस्साइं, चउरासीइं पयसहस्साइं।

व्याख्याप्रज्ञप्तिः—(भगवती) सूत्र में स्वसमय, परसमय, जीव, अजीव, जीवाजीव, लोक, अलोक, लोकालोक, इत्यादि कथनके अतिरिक्त, भिन्नभिन्न प्रकारसे देव, राजा, राजर्षि, और अनेक प्रकारके सन्दिग्ध पुरुषोंके पूछे हुए प्रश्नोंका जिनेन्द्रदेवने विस्तारपूर्वक जो उत्तर दिए हैं। और वे उत्तर द्रव्य, गुण, क्षेत्र, काल, पर्याय, प्रदेश और परिणाम के अनुगम, निक्षेप, नय, प्रमाण और विविध तथा सुनिपुण उपक्रम पूर्वक यथास्थितभावके प्रतिपादक हैं। जिनसे लोक और अलोक दोनों प्रकाशित हैं। जो विशाल संसार समुद्रसे पार कर देनेमें समर्थ हैं। इन्द्रों द्वारा पूजित हैं, भव्य लोकोंके हृदयके अभिनन्दक हैं, अन्धकार रूप मैलके नाशक हैं। सुन्दर और दीपक हैं [illegible] की तरह वस्तुके [illegible] देने वाले हैं [illegible] और बुद्धिके बढ़ानेवाले हैं, जिनकी संख्या [illegible] हैं [illegible] बहुत प्रकारके [illegible] है [illegible] ([illegible] १०० अध्ययन हैं [illegible] १०००० [illegible] १०००० [illegible] और ८४००० पद संख्या हैं।

संयमी वर्णी, योगी साधुश्च तापसः । ऋषिर्यतिर्मुनिर्भिक्षुः संयतः श्रमणो व्रतीति" धनंजयः । "यतिभेदे, साधुभेदे वा, भिक्षाजीविनि, शरीरभेदे वेति शब्दस्तोममहानिधिः" । "तपस्विनि, श्रमणः परिव्राट् संन्यासीति पूज्यपादाः" । जैनभिक्षुके, निर्ग्रन्थे चापि, 'श्राम्यतीति

एगे सुभक्खंधे, दस अज्झयणा, सत्तवग्गा, दस उद्देसणकाला, दस समुद्देसण-काला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं,

अन्तकृद्दशांगः—अन्तगडदशांग सूत्रमें अन्तकृद् (तीर्थंकरादि) पुरुषोंके नगर, उद्यान, वनखंड, राजा, मातापिता, समवसरण, धर्म्माचार्य, धर्मकथा, ऐहिक और पारलौकिक ऋद्धि, भोगपरित्याग, प्रव्रज्याग्रहण, श्रुतपरिग्रह, तप, उपधान, बहुविधप्रतिज्ञाराधन, क्षमा, आर्जव, मार्दव, सत्य सहित शौच, सतरह प्रकारका संयम, उत्तम ब्रह्मचर्य, अकिंचनता, तप, क्रिया, समिति, गुप्ति, अप्रमादयोग, उत्तमस्वाध्याय, ध्यान और कायोत्सर्ग का स्वरूप, उत्तम संयम-प्राप्ति और परिषह जीतनेवाले पुरुषोंका चारप्रकारके घातिक कर्म क्षय होने से केवलज्ञानका प्राप्त करना, (अनन्त चतुष्टयकी प्राप्ति) मुनि पर्यायके पालन करनेकी अवधि, पादपोपगत पवित्र मुनिवर जितने भक्तों (भोजन समयों) को विताकर जहां अन्तकृत् हुए वह विवरण और भी मुनिराज कि जो मुक्तिके अचल सुखोंको प्राप्त हुए, इत्यादि सब वर्णन आठवें (अन्तगड) अगमें एक श्रुतस्कन्ध के ही अन्दर है, इसके दश अध्ययन हैं, सात वर्ग हैं, दश उद्देशन काल हैं, दश समुद्देशन काल हैं, और संख्यात लाख पद हैं, अर्थात् २३०४००० पद संख्या है।

अनुत्तरोपपातिकदशांगः—अणुत्तरोववाइअ दसासु णं अणुत्तरोव-वाइआणं नगराइं, उज्जाणाइं, वणसंडा रायाणो, अम्मापियरो, समोसरणाइं, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोग-परलोगिया इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चाया, पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहाओ, तवोवहाणाइं परियागो, पडिमाओ, संलेहणाओ, भत्तपाण पच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं अणुत्तरोववाइ ओ, सुकुल पच्चाया, पुणबोहिलाभा अंतकिरियाओ आघविज्जंति, + + + + + नवमे अंगे एगे सुयक्खंधे दस अज्झयणा, तिण्णि वग्गा दस उद्देसणकाला दस समुद्देसण-

[illegible]

श्रमणः ।' इति "शब्दार्थचिन्तामणिः" श्राम्यति परदुःखं जानातीत्यपि ।' च पुनर्ब्राह्मणाः ब्रह्मचर्याद्यनुष्ठाननिरताः । "द्विजात्यग्रजन्म, भूदेववाडवाः । विप्रश्च ब्राह्मण" इत्यमरः । ब्रह्म परमात्मानं

अनुत्तरोपपातिकः—इस सूत्रमें अनुत्तरोपपातिकोंके नगर, उद्यान, वनखंड, राजा, मातापिता, समवसरण, धर्म्माचार्य, धर्म्मकथा, इत्यादिकका वर्णन है, और ऐहिक तथा पारलौकिक ऋद्धिविशेष, भोगपरित्याग, प्रव्रज्याग्रहण, श्रुतपरिग्रह, तप, उपधान, पर्य्याय, प्रतिज्ञा, संलेखना, भक्तपानप्रत्याख्यान, पादपोपगमन, श्रेष्ठकुलमें पुनर्जन्म, बोधिलाभ, अन्तक्रिया, इत्यादि विषयोंका वर्णन है । × × नवम (अनुत्तरोपपातिक) अंगमें एक श्रुतस्कन्ध, दश-अध्याय, तीन वर्ग, दश उद्देशनकाल, दशसमुद्देशनकाल, संख्यातलाख पद-अर्थात् ४६०८००० पद हैं ।

प्रश्नव्याकरण—पण्हवागरणेसु अठ्ठुत्तरं अपसिणसयं, अठ्ठुत्तरं पसिणापसिणसयं, विज्जाइसया, नागसुवण्णे हिं सद्धिं दिव्वा संवाया आघविज्जंति, विम्हयकराणं अइसयमइ अकालदमसमतित्थकरत्तमस्स ठिइकरणकारणाणं, दुरहिगमदुरवगाहस्स, सव्वसव्वण्णुसम्मअस्स, अबुहजणबोहकरस्स, पच्चक्खपचयकराणं, पण्हाणं, विविहगुणमहत्था, जिणवरप्पणीआ आघविज्जंति, + + + + दसमे अंगे एगे सुअक्खंधे, पणयालीसं उद्देसणकाला, पणयालीसं समुद्देसणकाला, संक्खेज्जानि पयसहस्साणि ।

प्रश्नव्याकरण—इस सूत्रमें एकसौ आठ प्रश्न, १०८ अप्रश्न, १०८ प्रश्नाप्रश्न, विद्याओं का अतिशय, और नागकुमार तथा सुवर्णकुमारके साथ होने वाले दिव्य संवाद का वर्णन है । × × × दशम (प्रश्नव्याकरण) अंगमें, एक श्रुतस्कन्ध, ४५ उद्देशनकाल, ४५ समुद्देशनकाल, और संख्यात लाख पद अर्थात् ९२१६००० पद संख्या है ।

विपाकश्रुत—विवागसुए णं सुकड-दुक्कडा णं कम्माणं फलविवागे आघविज्जंति, से समासओ, दुविहे पन्नते तंजहा; दुहविवागे सुहविवागे चेव, तत्थणं दस दुहविवागाणि, दस सुहविवागानि से किं तं दुहविवागानि ? दुहविवागे सु णं दुहविवागाणं नगराइ उज्जाणाइं, वणसंडा, रायाणो, अम्मापियरो, समोसरणाइ, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, नगरगमणाइं, संसारपबंधे; दुहपरंप-

सिद्धं जानातीति ब्राह्मणः । परब्रह्मणो ब्राह्मण इति शब्दस्तोममहानिधिः । ब्राह्मणलक्षणानीत्थं ब्रुवन्ति वृद्धाः । यथा—

'क्षमा, तपो, दया, दानं, सत्यं, शौचं, श्रुतुनम् ।
विद्याविनयसम्पन्नं प्रथमं ब्रह्मलक्षणम् ॥ १ ॥
शान्तो दान्तः सुशीलश्च, सर्वभूतहिते रतः ।
क्रोधावेशं न जानाति, द्वितीयं ब्रह्मलक्षणम् ॥ २ ॥
निर्लोभो निरहंकारः पापत्यागं करोति यः ।
रागद्वेषविनिर्मुक्तस्तृतीयं ब्रह्मलक्षणम् ॥ ३ ॥
परद्रव्यं यथा दृष्ट्वा, पथि गेहेऽथवा वने ।
अदत्तं नैव गृह्णाति, चतुर्थं ब्रह्मलक्षणम् ॥ ४ ॥
मद्यमांसमधुत्यागी–त्यक्तोदुंबरपञ्चकः ।
भुनक्ति न निशाहारं, पञ्चमं ब्रह्मलक्षणम् ॥ ५ ॥

राओ, य आघविज्जति, से तं दुहविवागाणि, से किं तं सुहविवागाणि ? सुहविवागेसुणं सुहविवागाणं नगराइं, उज्जाणाइं, वणसंडा, रायाणो, अम्मापियरो, समोसरणाइं, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोअ–परलोअ इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चाआ, पव्वज्जाओ, सुअपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, परियागा, पडिमाओ, संलेहणाओ, भत्तपाणपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, देवलोगगमणाइं, सुकुल पच्चाया, पुणबोहिलाहो, अंतकिरियाओ, आघविज्जति, × × × × × एक्कारसमे अंगे वीसं अज्झयणा, वीसं उद्देसणकाला, वीस समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं ।

विपाकश्रुत—इसमें सुकृतकर्म्मोंका और दुष्कृत कर्म्मोंका फलविपाक-परिणाम बताया गया है । वह फलविपाक संक्षेपसे दो प्रकारका है । यथा दुःखविपाक और सुखविपाक । जिनके १०—१० भेद हैं । दुःखविपाकमें दुःखविपाकवालोंके नगर, उद्यान, वनखंड, राजा, मातापिता, समवसरण, धर्म्माचार्य्य, धर्म्मकथा, नगरगमन, संसार प्रबन्ध, दुःखपरम्पराका क्रमसे वार वर्णन है ।

संसारमें तेल मिश्रित वानस्पतिक वस्तुओंकी मांग दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। यही
ा है कि तेलहन मालकी मांग जोरोंसे बढ़ रही है और भारतसे तेलहनका निर्यात भी अधिक
ाणमें होने लगा है। पर भारतके सम्मुख एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उपस्थित है कि वह तेलहन माल
ा भेजे या स्वयं अपने स्वदेशी मिलोंमें तेलहन मालसे तेल और खली तैयार करके विदेशके
ारोंमें एकाधिपत्य जमानेकी ओर पूर्णरूपसे प्रयत्नशील हो ? इस प्रश्नका हितकर उत्तर तो उसकी
क बुद्धिपर ही निर्भर है। पर हम तो यही कहेंगे कि स्वदेशकी मिलोंका उपयोग कर भारत
सने कच्चे तेलहन मालको तेल और खलीके रूपमें लाकर विदेशके बाजारपर अपना पूरा प्रभाव
मा अपने प्रतियोगियोंको मुंह तोड़ उत्तर दे।

ाल और चमड़ा

खाल शब्दसे भेड़ और बकरीके चमड़ेका बोध होता है और चमड़ा शब्द गाय भैंस आदि
अन्य पशुओंकी खालका सूचक माना जाता है।

इस व्यापारके प्रधान स्वरूप दो हैं। एक तो देशके विभिन्न प्रान्तोंके बीच होनेवाला पार-
स्परिक व्यापार और दूसरा देशसे संसारके अन्य देशोंके साथ होनेवाला अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार है
भारतमें खाल और चमड़ेका प्रान्तीय व्यापार उतने ही महत्व का है जितना कि उसका यह विदेश
व्यापार माना जाता है। अतः भारतमें ही आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतिके अनुसार खाल और चमड़
कमानेका प्रयत्न होना चाहिये। इसके लिये खाल और चमड़ेकी उत्तमता पर सबसे अधिक ध्या
रखना चाहिये। यदि भारतमें उत्तम प्रकारकी खाल और चमड़ा कमाकर विदेश भेजा जाय
भारतको इस व्यवसायमें आशातीत सफलता मिल सकती है।

भारतसे विदेश जानेवाली खाल और चमड़ेका प्रधान खरीदार संयुक्त राज्य अमेरिका
अतः अमेरिकाके बाजारमें ही भारतके इस मालकी सबसे अधिक मांग रहती है। इसके बाद
जर्मनी और फ्रांसके बाजार हैं जिनमें इस मालकी मांग होती है। पर जर्मनीने भारतसे खाल और
चमड़ा कच्चे पदार्थके रूपमें मंगाना बंद कर दिया है क्योंकि भारत सरकारने इस पर संरक्षण कर बैठा
दिया है अतः महंगा माल जर्मनी खरीदनेके लिये तैयार नहीं है। यदि कमाया माल भेजा जाय तो
वह अच्छे दाम पा सकता है। अतः संयुक्त राज्य अमेरिकाके बाद ब्रिटेन और फ्रान्स ही भारतके
इस मालके खरीदार माने जाते हैं।

चावल

यद्यपि भारतके सभी प्रान्तोंमें चावल उत्पन्न होता है पर विशेष रूपसे आसाम, बंगाल
बिहार उड़ीसा तथा मद्रास प्रान्तमें ही यह पैदा होता है। भारतसे विदेश जानेवाला बंगाली चावल

नी पड़ती है। भारतके गेंहूंमें गर्द और कूड़ा अधिक रहता है अतः यहांके गेंहूंमें २ प्रतिशत कचरा द लिया जाता है।

भारतसे बाहर जानेवाले गेंहूका ८० प्रतिशत भाग केवल बृटेन ही अपने खर्चके लिये खरीद ता है। बृटेनको लगभग ६० लाख टन गेंहूकी प्रतिवर्ष आवश्यकता रहती है और भारतमें ६० लाख से ० लाख टन तक गेंहूंकी उपज होती है।

गेंहूंके बाजारोंमें बृटेन, बेलजियम, फ्रान्स इटली और जर्मनी हैं। खरीदके परिमाणके नुसार नाम क्रमसे ऊपर दिया गया है।

चाय

भारतकी चायने संसारके बाजारमें अपना एकाधिपत्य जमा रक्खा है। पर स्वयं भारतमें चायका सारा व्यापार अंग्रेजोंकी मुट्ठीमें है। उन्होंने भारत सरकारसे अपने इस व्यापारके लिये गादिसे अन्त तक सभी सुविधायें प्राप्त कर रक्खी हैं। अतः इस व्यापारको भारतीयोंका व्यापार कहना या मानना उचित नहीं है।

भारतकी चायके खरीदारोंमें बृटेन, रूस, कनाडा, और आस्ट्रेलिया प्रधान हैं। भारतकी चायको चीनकी चायसे प्रतियोगिता करनी पड़ती है।

काफी

काफीका व्यापार भी भारतमें विदेशियोंके हाथमें है और भारत सरकारसे इस उद्योग धन्धेको भी सब प्रकारकी सुविधा मिली हुई है। भारतसे बाहर जानेवाली काफीको ब्रेजिलकी काफीसे प्रतियोगिता करनी पड़ती है। इसके प्रधान खरीदार बृटेन और फ्रान्स हैं। इन्हीं खरीदारोंसे जर्मनी, हालेंड, बेलजियम और संयुक्त राज्य अमेरिका अपनी आवश्यकतानुसार काफी खरीदते हैं।

जूटका बना माल

यों तो जूटका नकली रेशम और कागज तक बनता है पर 'जूटके बने माल' के अन्तर्गत बोरे (गन्ने) और टाट (गनी हाथ) ही मुख्यतया माने जाते हैं।

(अ) बोरेका प्रधान बाजार आस्ट्रेलिया है। सभी प्रकारके बोरोंकी मांग वहां सबसे अधिक रहती है। इसके बाद बृटेन, मिश्र, केप उपनिवेश, मारिशस, नेटाल, संयुक्त राज्य अमेरिका, क्यूबा, चिली, चीन, इण्डोचायना, स्याम, स्ट्रेट सेटलमेन्ट, और न्यूजीलेंडको क्रमानुसार बोरेके खरीदार मानना चाहिये।

(ब) टाटकी सबसे अधिक मांग संयुक्त राज्य, अमेरिकामें है। इसके बाद अर्जेन्टाइना रिपब्लिक, बृटेन, कनाडा, और आस्ट्रेलियाको टाट खरीद करनी पड़ती है।

सूती माल

भारतकी मिलोंमें जितना सूतीमाल तैयार होता है उसमेंसे सूत, कोरा कपड़ा, छींट और रंगीन कपड़ा ही विदेश जाता है।

सूत – इसकी मांग स्वयं भारतमें ही रहती है। भारतसे सूत चीन भी जाया करता था पर वहां जापानका सूत अधिक आने लगा और भारतके लिये प्रतियोगितामें खड़े रहना बड़ा कठिन हो गया अतः इस सम्बन्धमें चीनके बाजारसे भारतके पैर उखड़ गये। अब पूर्वमें स्ट्रेट सेटलमेन्टका बाजार, और पश्चिममें फारसकी खाड़ीके पासका भूभाग, अदन तथा लेवान्तके बाजार ही ऐसे स्थान हैं जहां भारतका सूत जाता है और उसकी वहां मांग भी अच्छी है। भारतके सूतको विदेशोंमें बहुत कम सफलता मिल सकती है। क्योंकि सभी स्थानोंमें उसे भयंकर प्रतियोगिताका सामना करना पड़ता है। लेवान्त और कृष्ण सागरके पासवाले भूभागमें इटलीका सूत भी आता है अतः भारतीय सूतके लिये वहां उसके साथ प्रतियोगिताका प्रश्न उठ खड़ा होता है। मिश्रके बाजारमें उसे ब्रिटेनसे प्रतियोगिता करना पड़ता है। अब कुछ समयसे अमेरिका भी सूतके बाजारमें आया है और वह आगे बढ़ रहा है।

कोरा कपड़ा—भारतके हितकी दृष्टिसे यहांके कोरे कपड़ेके लिये सर्वश्रेष्ठ बाजार स्वयं भारत ही बाजार है। फिर भी बम्बईकी देखरेखमें फारस, फारसकी खाड़ीके बंदरों, अदन, पूर्वीय अफ्रीका के तटवर्ती भूभाग और मारिशसके बाजारोंमें संगठित उद्योग द्वारा भारतकी मिलोंका कोरा कपड़ा बेचा जा सकता है। इसी प्रकार ब्रिटिश अफ्रीका, फ्रेंच अफ्रीका और जर्मन अफ्रीकाके बाजारोंमें भी इसके बेचनेका प्रयत्न किया जा सकता है। इस दृष्टि विशेषके अनुसार अदन बंदरने अवश्य ही बम्बईके महत्वको घटा दिया है फिर भी बम्बईकी मिलों और उनके बन्दरगाहसे अवश्य ही लाभ उठाया जाता है। भारतके कोरे कपड़ेके लिये पूर्व अफ्रीका, मिश्र, मारिशस, अदन, फारस, फारसकी खाड़ीके बंदर तथा स्याम आदि स्थान आशाप्रद बाजार माने जाते हैं।

छींट और रंगीन कपड़ा—इस प्रकारका भारतीय मिलोंका बना माल प्रधानतया स्ट्रेट सेटलमेन्टमें अधिक बिकता है। क्योंकि इस बाजारमें इन मालकी अच्छी मांग रहती है। इस बाजारमें ऐसे मालका लगभग ९० प्रतिशत भाग भारतीय मिलोंका होता है। यह माल प्रायः [illegible] बंदरमें खपत होता है। इसके बाद सीलोनके बाजारमें भी भारतके रंगीन कपड़ेकी मांग रहती है। इसके अतिरिक्त फारस, स्याम, पूर्व अफ्रीका, अदन और फारसकी खाड़ीके बंदरोंमें भी भारतके इन मालकी अच्छी मांग रहती है।

मंगाना बंद कर दिया और फल यह हुआ कि भारतसे नीलका बाहर जाना बंदसा हो गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनीने नीलके व्यवसायकी ओर ध्यान दिया और सन् १७८० ई० और १८०२ ई० के बीच नीलका व्यापार पुनः चमक उठा और इसके साथ ही नीलकी खेती और उसके व्यवसायका केन्द्र बंगालके स्थानमें विहार बन गया। पर सन १८९७ ई० में जर्मन वैज्ञानिकोंने रासायनिक उपायोंसे नीलका प्रतिउपयोगी पदार्थ तैयार कर लिया और इस प्रकार भारतके नीलके व्यवसायको सदाके लिये प्राणघातक धक्का पहुंचा। भारत सरकारके सारे प्रयत्न विफल हो गये थे पर योरोपीय महासमरने इस व्यवसायमें पुनः नवीन जीवनका संचार कर दिया और इसी लिये यह आज भी जीवित है। इसके बाजार पहले ब्रूटेन, आस्ट्रिया हंगरी, फ्रान्स, रूस, मिस्र, संयुक्त राज्य अमेरिका, टर्की, फारस और जापान थे।

लाख और चपड़ा

लाखका व्यापार भी भारतके पुराने व्यापारमें से है। इस व्यापारमें भी भारतका एकाधिपत्य है। इसके प्रतिउपयोगी पदार्थको खोज निकालनेमें संसारके मस्तिष्कने कुछ उठा नहीं रक्खा पर प्रकृति प्रदत्त गुणोंका एक पदार्थमें सम्मिश्रण करना सम्भव नहीं हो सका। कलकत्ता और मिर्जापुरमें लाखके कितने ही कारखाने हैं जहां चपड़ा तैयार होता है। आसाम, बंगाल, और बर्माके जंगलोंमें इकट्ठी की गयी लाख कलकत्तेके कारखानोंमें गलाई जाती हैं और इससे चपड़ा बना कर कलकत्तेके ही बंदरसे विदेशको भेजते हैं। मध्य प्रदेश, विहार उड़ीसा और यू० पी० की लाख मिर्जापुर और कोटाके कारखानोंमें गलाई जाती है और वहीं उससे चपड़ा तैयार किया जाता है। संसारमें लाख और चपड़ेके प्रधान बाजार संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रूटेन, और जर्मनी माने जाते हैं। इन बाजारोंमें इसकी बड़ी मांग रहती है। इससे वहांके कारखाने फ्रेंच पालिशके समान श्रेष्ट वार्निश, ग्रामोफोन रेकार्ड, लीथोकी स्याही तथा बिजलीका सामान तैयार करते हैं। भारतको चाहिये कि वह अपने निर्यातपर पूरा ध्यान दे और अच्छेसे अच्छे ढंगसे उत्तम माल विदेशके उपयुक्त बाजारोंमें भेजे।

भारत और संसारके अन्य देशोंके साथ उसका व्यापारिक सम्बन्ध

यों तो संसारके सभी देशोंसे भारतका व्यापारिक सम्बन्ध जुड़ चुका है पर इनमें केवल ९ ही ऐसे देश हैं कि जिनसे भारतका गहरा व्यापारिक सम्बन्ध है। ये ही संसारके वे प्रधान बाजार हैं जिनमें भारतके कच्चे मालकी यथेष्ट परिमाणमें बिक्री होती है और साथ ही उस कच्चे मालके मूल्यके

उपरोक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि कपड़ा और सूतके लिये भारतका बाजार ही पर्याप्त प्रधान क्षेत्र है। पर यहां भी संसारके सबसे जबरदस्त पूंजीपति ग्रेटब्रिटेनसे प्रतियोगिता उसकी है।

अफीम

अफीमके सम्बन्धको लेकर राष्ट्र संघकी देखरेखमें एक उप-समिति संगठितकी गयी थी और औषधिके लिये जितनी अफीमकी आवश्यकता समझी जाये उसीके अनुसार अफीमकी खेती करानेकी व्यवस्थाकी जाय और अधिक खेती पर कड़ा नियंत्रण रखा जाय आदिउपायोंसे अफीमके व्यवहारको रोकनेकी आयोजना करनेका काम उसे सौंपा गया था। पर इस काममें कमेटीको यथेच्छ सफलता नहीं मिल सकी। कारण कि राष्ट्रोंका पारस्परिक अविश्वास कोई मानवहितकर काम करने नहीं देता।

भारतमें अफीमकी पैदावार मुख्यतया पटना, बनारस, इन्दौर, ग्वालियर, भूपाल तथा मेवाड़में होती है। पटना और बनारसकी ओरके मालको बंगाली अफीम कहते हैं और शेषको मालवेकी अफीमके नामसे पुकारते हैं। सन् १९११ ई० से पटनाके पास अफीमकी खेती बन्द कर दी गयी है। और अब बंगाली अफीम कहलाने वाला माल बनारसहीमें होता है। इस पर सरकारी नियंत्रण उसी प्रकार चला आ रहा है जैसा कि मुसलमान शासकोंने आरम्भ किया था। अफीम तैयार करनेकी सरकारी फैक्ट्री गाजीपुरमें है। जहां तैयार माल बक्सोंमें बंद कर कलकत्ता भेजा जाता है और वहांके बाजारमें सरकार उसे नीलाम करती है। कलकत्तेसे ही यह अफीम विदेश भेजी जाती है।

मालवा अफीम प्रायः देशी राज्योंकी उपज है। भारत सरकारका यह नियंत्रण राज्योंके अन्दर नहीं है पर ज्यों ही यहांकी अफीमके बक्स ब्रिटिश भारतमें प्रवेश करते हैं सरकार १४० रतल वजनी अफीमके बक्स पर ८० पौंडका कर वसूल करलेती है। यह अफीम बम्बई बंदरसे विदेश जाती है। भारतमें जितनी अफीमका खर्च है उससे कहीं अधिक अफीम भारतसे विदेश जाती है।

अफीमका प्रधान खरीदार चीन था पर सन् १९०६ में वहांकी सरकारने अफीमके विरुद्ध आवाज उठायी और १० वर्षके अन्दर उसे बिलकुल रोक देनेके लिये आयोजन तैयार किया। भारत सरकारने भी वहांकी सरकारके प्रति सहानुभूति दिखायी और फल यह हुआ कि सन् १९१३ ई० से चीनके साथ अफीमका व्यापार पूर्ण रूपसे बंद कर दिया गया जिससे मालवाकी अफीमके व्यापारका एक प्रकारसे अन्त हो गया। अब भारतकी अफीमका बाजार स्ट्रेट सेटलमेन्ट है यहींसे पूर्वीय देशोंको अफीम जाती है।

नील

भारतका नीलका व्यापार बहुत पुराना है पर १७ वीं शताब्दीमें योरोप वालोंने भारतसे नील

रोजगार बंद कर दिया और फल यह हुआ कि भारतसे नीलका व्यापार प्राय: बंद हो गया। ईस्ट इंडिया कम्पनीने नीलके व्यवसायकी ओर ध्यान दिया और सन् १७८० ई० और १८०२ ई० के बीच नीलका व्यापार पुनः चमक उठा और इसके साथ ही नीलकी खेती और इसके व्यवसायका केन्द्र बंगालके स्थानमें बिहार बन गया। पर सन् १८९७ ई० में जर्मन वैज्ञानिकोंने रासायनिक उपायोंसे नीलका प्रतिद्वन्द्वी पदार्थ तैयार कर लिया और इस प्रकार भारतके नीलके व्यवसायको सदाके लिये प्राणघातक धक्का पहुंचा। भारत सरकारके सारे प्रयत्न निष्फल हो गये थे पर योरोपीय महासमरने इस व्यवसायमें पुनः नवीन जीवनका संचार कर दिया और इसी लिये यह आज भी जीवित है। इसके बाजार पहले ब्रिटेन, आस्ट्रिया हंगरी, फ्रान्स, रूस, मिश्र, संयुक्त राज्य अमेरिका, टर्की, फारस और जापान थे।

लाख और चपड़ा

लाखका व्यापार भी भारतके पुराने व्यापारोंमें से है। इस व्यापारमें भी भारतका एकाधिपत्य है। इसके प्रतिद्वन्द्वी पदार्थकी खोज निकालनेमें संसारके वैज्ञानिकोंने कुछ उठा नहीं रक्खा पर लाखके प्रत्येक गुणोंका एक पदार्थमें सम्मिश्रण करना सम्भव नहीं हो सका। कलकत्ता और मिर्जापुरमें लाखके कितने ही कारखाने हैं जहां चपड़ा तैयार होता है। आसाम, बंगाल, और बर्माके जंगलोंमें इकट्ठी की गयी लाख कलकत्तेके कारखानोंमें गलाई जाती है और इससे चपड़ा बना कर कलकत्तेके ही बंदरसे विदेशको भेजते हैं। मध्य प्रदेश, बिहार उड़ीसा और यू० पी० की लाख मिर्जापुर और कोटाके कारखानोंमें गलाई जाती है और वहीं उससे चपड़ा तैयार किया जाता है। संसारमें लाख और चपड़ेके प्रधान बाजार संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, और जर्मनी माने जाते हैं। इन बाजारोंमें इसकी बड़ी मांग रहती है। इससे वहांके कारखाने फ्रेंच पालिशके समान श्रेष्ठ वार्निश, ग्रामोफोन रेकर्ड, लेबोंकी स्याही तथा बिजलीका सामान तैयार करते हैं। भारतको चाहिये कि वह अपने निर्यातपर पूरा ध्यान दे और अच्छेसे अच्छे ढंगसे उत्तम माल विदेशके उपयुक्त बाजारोंमें भेजे।

भारत और संसारके अन्य देशोंके साथ उसका व्यापारिक सम्बन्ध

यों तो संसारके सभी देशोंसे भारतका व्यापारिक सम्बन्ध जुड़ चुका है पर इनमें केवल ८ ही ऐसे देश हैं कि जिनसे भारतका गहरा व्यापारिक सम्बन्ध है। ये ही संसारके वे प्रधान बाजार हैं जिनमें भारतके कच्चे मालकी यथेष्ट परिमाणमें बिक्री होती है और साथ ही इस कच्चे मालके मूल्यके

विनिमयमें उन देशोंके औद्योगिक केन्द्रोंमें तैयार किया गया माल भी वैसे ही पर्याप्त परिमाणमें यहां आता है। इनके नाम क्रमशः बृटेन, जर्मनी, जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस, चीन, बेलजियम, इटली और अस्ट्रिया हंगरी अर्थात् वर्तमान जुगोस्लाविया आदि हैं। अतः इन्हीं ६ प्रधान देशोंके सम्बन्धकी हम यहां चर्चा करेंगे।

भारत और बृटेन

व्यापार वाणिज्यकी दृष्टिसे संसार भरमें केवल भारत ही एक ऐसा अनोखा बाजार है जिसमें एक महाजन समस्त बाजारपर अपना एकाधिपत्य जमाये बैठा है। यह पूंजीपति स्वयं बृटेन है जिस की हथेलीमें भारतके समस्त आयात व्यापारको 'बदर समान' ही मानना चाहिये। बृटेनके प्रभावशाली औद्योगिक केन्द्रोंके तैयार मालका भारत सबसे बड़ा बाजार है जहां वहांके कारखानोंका तैयार माल आकर बिकता है। भारत आज सर्वरूपेण परतंत्र है अतः बृटेन राजनैतिक अनुकूलताके कारण भारतके बाजारमें अन्य देशोंके मालकी अपेक्षा अधिक सुविधाके साथ अपने मालको बेचता है। यही एक सबसे अधिक दृढ़ कारण है कि बृटेन आज संसारमें इतना ऊंचा स्थान प्राप्त कर सका है। भारत कच्चे मालका घर है अतः यहांका कच्चामाल सरलतासे कौड़ीके मोल बृटेनके कारखानोंमें पहुंचाया जाता है और जहांसे तैयार मालके रूपमें पुनः भारतके बाजारमें वही माल रुपयेके मोल बिकनेके लिये आता है। इस प्रकार राजनैतिक वर्चस्वके कारण भारतके कच्चे मालसे कौड़ीका रुपया बनाया जाता है।

राजनैतिक बागडोर हाथमें लिये हुए बृटेन भारतके बाजारमें सब प्रकारकी औद्योगिक एवं व्यापारिक सुविधायें काममें ला रहा है।

व्यापारिक सुविधाओंमें प्रथम श्रेणीकी मानी जानेवाली रेल सम्बन्धी सुविधापर उसका पूरा अधिकार है। भारतकी रेलवे कम्पनियोंका संचालन बृटिश मंत्रणाके अनुसार बृटिश पूंजीपति कर रहे हैं। ये कम्पनियां बृटेनके हित साधनमें निमग्न हो भारतमें काम कर रही हैं। भारत कृषि प्रधान देश है अतः यहांसे बहुत बड़े परिमाणमें कच्चा माल बाहर भेजा जाता है। बृटेन जलयान संचालन उद्योगमें सबसे आगे माना जाता है अतः भारतका समस्त कच्चामाल इसीके जहाजोंपर दूसरे देशोंको भेजा जाता है। इस प्रकार रेलवे कम्पनियोंकी भांति ही बृटिश जहाजी कम्पनियां भी भारतकी जेबपर पल रही हैं। इतना ही नहीं भारतकी सभी प्रधान बैंकों और ज्वाइण्ट स्टाक कम्पनियोंमें बहुत बड़ी बृटिश पूंजी लगी हुई है इसका परिणाम यह हुआ है कि भारतके आयात और निर्यात व्यापारपर बृटिश पूंजीका एकाधिपत्य जम गया है। बृटेनके बड़े बड़े पूंजीपतियोंने भारतमें बड़ी बड़ी पूंजी लगाकर व्यवसायकी फर्में खोल रक्खी हैं। और यहांका सारा व्यापार अपनी मुट्ठीमें कर रक्खा है।

न्द है। इसका कारण प्रथम तो यह है कि भारतमें चमड़ा कमानेके अच्छे कारखाने खुल गये हैं अतः चमड़ा यहीं कमाया जाता है और दूसरा कारण यह है कि कच्चे चमड़ेपर एक प्रकारका निर्यात कर भारत सरकारने लगा रखा है। बृटिश साम्राज्यसे बाहर होनेके कारण जर्मनी कर लगे हुए चमड़ेको खरीदनेमें आगे नहीं आना चाहता है। जर्मनीसे भारत आनेवाले मालमेंसे कितना ही ऐसा माल है जो भारतके बाजारमें अपने प्रतियोगियोंको आश्चर्य चकित कर देता है। इनमेंसे कुछ इस प्रकार हैं। कुल्हाड़ी, तेज कैंची उस्तरे चाकू, कांचका सामान, मिट्टीके बर्तन, वैज्ञानिक तथा डाक्टरी औजार, रासायनिक पदार्थ, रंग आदि।

जर्मनीके मालकी विशेषताओंमें उसका सुडौलपन, दीर्घकालीन टिकाऊपन और उसपर भी [illegible] सस्तापन आदि प्रधान हैं। इन्हीं गुण विशेषके कारण जर्मनीका माल भारतमें लोकप्रिय हो गया है। यह तो हुआ भारत और जर्मनीका व्यापारिक सम्बन्ध पर इसी प्रसंगमें हम जर्मनीकी अन्य [illegible] भी दे देते हैं क्योंकि उनका सम्बन्ध भारतके व्यापारसे बहुत निकटतम है।

जर्मनीकी उपज

गेहूं, ओट, राई और जौ प्रायः सभी भागोंमें उत्पन्न होते हैं। जर्मनीके पूर्वीय भागमें आलू बहुत अधिक उत्पन्न होता है। यह खानेके उपयोगमें तो आता ही है पर उससे कितनी ही अन्य वस्तुयें भी [illegible] तैयार करते हैं और साथ ही यह शराब चुआनेके काममें भी आता है। राइनकी [illegible] प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त जर्मनीमें हेम्प नामक सनकी जातिका एक पौधा होता है। तम्बाकू [illegible] भी यहां खूब होती है। जर्मनीके खनिज पदार्थोंमें कोयला, लोहा, जस्ता, तांबा, [illegible], आदि प्रधान हैं। फिर भी यहां चांदी, सीसा और जस्ता योरोपके अन्य देशोंकी अपेक्षा अधिक परिमाणमें निकाला जाता है। सीसा और जस्ता जर्मनीके साइलेशिया प्रान्तमें, तांबा मान्सफेल्ड [illegible] निकलते हैं। जर्मनीमें बहुत बड़े जंगल हैं जिनमें उत्तम प्रकारकी लकड़ी निकलती है। [illegible] सरकार इनकी यत्नपूर्वक रक्षा करती है।

जर्मनीके उद्योग धन्धे

जर्मनीका [illegible] प्रशंसनीय है। यहां सूती, ऊनी और रेशमी कपड़ा तैयार होता है। [illegible] बहुत बनाया जाता है। कांच और चीनी मिट्टीके बर्तन तथा दूसरे सामान बहुत बनाये जाते हैं। [illegible] और कागज भी बहुत बड़े परिमाणमें तैयार की जाती है। लोहा और [illegible] पूर्वी वेस्टफेलिया, और मुख्यतया एसेन (Essen) नगरमें बनता है। कपड़ेके बड़े बड़े [illegible] बार्मेन और एल्बरफेल्ड (Barmen & Elberfeld) में हैं। पर मुख्यतया रेशमी और [illegible] बार्मेन (Barmen) में हैं। रेशम और मखमल क्रेफल्ड (Krefeld)

नामक स्थानका बहुत प्रसिद्ध है। जर्मनीमें इंग्लैंडसे सबसे बड़ा और प्रसिद्ध बाजार ब्रेमेन (Bremen) माना जाता है। यहांपर आज भी हाथके करघों पर कपड़ा बहुत अधिक बुना जाता है। जर्मनीके अंदर ड्रैसडेन नामक स्थानमें पड़ोसी मेइसेन (Meissen) में चीनीके बर्तन और शीशेमें चित्रकारी बाले बहुत उत्तम बनते हैं।

जर्मनीके प्रधान बंदर हैम्बर्ग और ब्रेमेन (Bremen) हैं। इन बंदरोंसे जर्मनीके कारखानोंका तैयार माल विदेश जाता है और अन्य देशोंका माल इन्हीं बंदरोंपर आकर उतरता है। जर्मनीका व्यापारिक सम्बन्ध भारतके अतिरिक्त ग्रेट ब्रिटेन अमेरिका, अफ्रीका, पूर्वीय एशिया तथा आस्ट्रेलिया महासागर स्थित द्वीप समूहसे भी है।

जर्मनीकी व्यापारिक नीति

जर्मनीके औद्योगिक उत्कर्षको यहांके खनिज वैभव, रेलों, नहरों, जहाजों और बीमा कम्पनियों तथा बैंकों आदि राष्ट्रीय संस्थाओंसे तो सहायता मिली ही है पर सबसे अधिक प्रोत्साहन यहांकी राष्ट्रीय सरकारने अपनी अनुकरणीय नीतिसे दिया है। जर्मनीमें औद्योगिक शिक्षाका प्रबन्ध यथेष्ट है जिसके कारण वास्तविक सिद्धान्तोंका औद्योगिक क्षेत्रमें व्यवहारिक प्रयोग किया जा सकता है। फलतः जर्मनीकी व्यापारिक नीति प्रोत्साहन और संरक्षणकी प्रतिमूर्तिसी बन गयी है जिसे यहांकी सरकार वात्सल्य अतिशय स्नेह भावसे पाल रही है। ऐसी दशामें भारत यदि जर्मनीसे संयमित व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित न कर सका और वास्तविक लाभका उपभोग न कर सका तो वास्तवमें यह भारतकी बहुत बड़ी भूल मानी जावेगी ।

जर्मनीके प्रधान औद्योगिक नगर

बर्लिन—यहां कपड़ोंका काम बहुत अच्छा होता है। इसके सिवा यहां इंजिन, रेलवेका सभी प्रकारका सामान, बिजलीके सामानें, पीतलके बर्तन और रासायनिक द्रव्य भी बनते हैं।

हैम्बर्ग—यह जर्मनीका सबसे प्रसिद्ध बंदर है। इसी बंदरपर यूरोपसे लोहा, कोयला, ब्राजिलसे कहवा, चिलीसे कच्चे खनिज रासायनिक पदार्थः पेरुसे अनाज और संयुक्त राज्य अमेरिकासे पेट्रोल आदि सामान उतारे जाते हैं जो यहींसे जर्मनीके सभी स्थानोंको भेजे जाते हैं। इसी बंदरसे जर्मनीके कलकारखानोंमें तैयार होनेवाला सभी प्रकारका सामान विदेश भेजा जाता है। यहां धातुके बर्तन और चमड़ेका सामान तैयार करनेके बड़े २ कारखाने हैं।

म्यूनिच—यह भी जर्मनीका प्रसिद्ध औद्योगिक केन्द्र है। यहां सभी प्रकारकी रंगसाजी और फुलकारीका कामपर बहुत अच्छा काम होता है। छपाईका काम, लकड़ीकी खुदाई और नक्काशीका काम भी यहां उत्तम बनता है। बवेरियाकी प्रसिद्ध शराबका यही प्रधान केन्द्र है।

जापान अपने देशमें और चीनके अधिकांश भूभागमें कल-कारखाने बढ़ाता जा रहा है। परिणाम यह हुआ है कि चीनकी वर्तमान मिलोंमें ई मिलें जापानकी हो गयी हैं। जापान अपने औद्योगिक विकासको ही अपना एकमात्र लक्ष्य माने हुए है अतः वह उद्योग धन्धोंके उत्कर्ष की ओर पूरी शक्तिसे काम कर रहा है। वहांकी बड़ी बड़ी फर्मे भारत और चीनमें कच्चे मालकी पारस्परिक खरीद बिक्रीमें लगी हुई हैं।

जापानका दूसरे देशोंसे व्यापार

जापानका प्रधानतया व्यापार संयुक्तराज्य अमेरिका, चीन, ग्रेट ब्रिटेन, भारत और फ्रांससे है। वह उपरोक्त देशोंको रेशम, रेशमी माल, सूती कपड़ा, तांबा, चाय, चटाई, कपूर, चीनी मिट्टीके बर्तन आदि भेजता है और दूसरे देशोंसे रुई, कपड़ा, लोहा, फौलाद, चावल, लकड़ी, ऊन, ऊनी कपड़े शक्कर, पेट्रोलियम आदि मंगाता है। अमेरिका सबसे अधिक माल जापानसे ही खरीदता है और साथ ही अपने यहांका सबसे अधिक माल भी जापानको ही बेंचता है। ब्रिटेन जापानसे रेशमी माल मंगाता है और उसके विनिमयमें मशीनरी वहां भेजता है। भारतसे रुई जापान बहुत अधिक जाती है पर उसका कपड़ा तैयार होकर बहुत कम परिमाणमें भारत आता है। पर सूत कातकर जापान चीनके बाजारमें भारतके सूतसे प्रतियोगिता करता है।

भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका

संयुक्तराज्य अमेरिकाने जर्मनी या जापानकी भांति भारतसे व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करनेका प्रयत्न योरोपीय महासमरके पूर्व कभी नहीं किया था। उसका उद्देश्य कभी भी भारतमें व्यापारिक अड्डा जमानेका नहीं था। अतः भारत और अमेरिकाके बीच व्यापारिक सम्बन्ध स्थापनमें व्यापारिक प्रतियोगिताको लक्ष्यमें लाकर उसने अपना हाथ कभी नहीं डाला। फिर भी उसका व्यापारिक सम्बन्ध भारतसे अधिक गहरा होता जारहा है और यदि वर्तमान प्रगति अधिक समय तक स्थायी रही तो सम्भव है कि आगे चल कर अमेरिकाकी व्यापारिक प्रतियोगिता दूसरे देशोंको आंखका कांटा बन जाय और संसारमें नवीन समरकी भेरी बज उठे। भारतीय बाजार संसारके सभी औद्योगिक राष्ट्रोंको लालायित कर रहा है अतः अपने अपने स्वार्थ साधनमें सभी रत देखे जाते हैं।

योरोपीय महासमरके पूर्व संयुक्त राज्य अमेरिकाका व्यापारिक सम्बन्ध सीधा भारतसे न था अतः भारतके आयात निर्यात सम्बन्धी सभी प्रकारके व्यापारका प्रधान क्षेत्र उसके लिये लन्दनका बाजार ही था। लन्दनके बाजारमे ही अमेरिका अपना व्यापार भारतसे करता था। पर योरोपीय महासमरके अनुभवने अमेरिकाकी नीतिमें भारी परिवर्तन कर दिया और युद्धके बाद ही अमेरिकाने अपना रुख फेर लिया फलतः भारतके साथ सीधा व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करनेके लिये उसने आव-

एक व्यापार संगठन बनाना आरम्भ कर दिया तो भी उसका एक मात्र उद्देश्य अमेरिकन कारखानोंके मालकी खपतके सम्बन्धमें भारतीय बाजारका अध्ययन करना था। अमेरिकन कारखानोंके बने मालकी खपत भारतमें कैसे हो साथ यह बात भी भारतके लिये बड़ महत्वशील है पर भारतके कच्चे मालको अमेरिकन कारखानोंके लिये खरीदनेका उसने कभी भी विचार नहीं किया ।

संयुक्त राज्य अमेरिकाकी उपज

यहांकी प्रधान उपज रुई है तथा दूसरा स्थान मक्काका है और इसके बाद तम्बाकू और आलूका नम्बर आता है। यहांके पालतू जानवरोंमें भेड़ और सुअर प्रधान हैं। इनके ऊन और मांसका व्यापार अमेरिका करता है। यहांके खनिज पदार्थोंमें लोहा, तांबा, सोना, चांदी और मिट्टीका तेल प्रधान हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिकाके उद्योग धन्धे।

यहांके औद्योगिक विकासमें व्यवहारिक विज्ञानने बहुत अधिक सहायता दी है। मशीनों और बिजलीके सामानमें यह देश बहुत आगे बढ़ा हुआ है। मोटरके कारखानेमें भी यह देश बहुत आगे बढ़ा हुआ है और अपना विशेष स्थान रखता है। यहांके प्रधान औद्योगिक केन्द्र न्यूयार्क, ओहियो, पेन्सिलवेनिया और न्यू जर्सी आदिक स्थान हैं। यहां बिजलीके बड़े बड़े कारखाने, कपड़ेकी मिलें, रेशम और ऊनकी फैक्टरियां हैं। यहांके कारखाने माल, चमड़ा, चर्बी, रबर और रबरका सामान, तम्बाकू और सिगरेट, मोटर, आदि भी तैयार करते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिकाका आयात और निर्यात।

संयुक्त राज्य अमेरिका अपने यहांके कारखानोंका तैयार माल जैसे बिजलीका सामान, मशीनें, चमड़ेका सामान, रबरका सामान, तम्बाकूकी सिगरेट, रूई, रेशमी तथा ऊनी कपड़ा, मोटरें आदि विदेश भेजता है। यहांसे उसका अधिकांश भाग जैसे रूई, अनाज, लोहा, मिट्टीका तेल, तांबा आदि भी बाहर भेजा जाता है। और दूसरे देशोंसे कच्चा चमड़ा, कच्चा माल, कोयले, कहवा, चाय, गल्ला, रबर, तेलहन माल, आदि मंगाये जाते हैं।

भारतसे जूट और कच्ची खाल तथा कच्चा चमड़ा अमेरिका जाता है। इनमें भी सबसे अधिक अर्थात् हैसियन ही अधिक जाता है और जूट और बोरे कम परिमाणमें अमेरिका जाते हैं। चमड़ा, मैंगनीज और सिलिका यहांसे अमेरिका जाते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिकाके प्रधान औद्योगिक नगर।

न्यूयार्क—यहां कपड़ेकी मिलें हैं। छपाई और पेड़ कूटनेका काम अच्छा होता है। यहां सिगरेटके भी अच्छे कारखाने हैं।

शिकागो—यहां बिजलीका सामान, मशीनरी, धातुका ढला हुआ सामान आदि तैयार होते हैं।

फिलाडेलफिया—यहां कपड़े की बड़ी बड़ी मिलें हैं। बिजलीका सामान और मशीनरी भी तैयार होती है।

सेन्ट लुइस—यहां मोटरें, जूता और चमड़े का सामान तैयार करनेके बड़े २ कारखाने हैं।

बाल्टीमोर—यहां तांबेकी ढलाईका काम, मिट्टीके तेलके साफ करनेका काम तथा टीनका माल तैयार होता है।

बोस्टन—जूते, कटलरी, धारदार हथियार, मशीनरी आदि तैयार करनेके कारखाने हैं।

पिट्सबर्ग—लोहा, फौलादऔर मशीनरी तैयार करनेके कारखाने हैं।

सान फ्रान्सिस्को—यह बहुत बड़ा बन्दर है एशियाके विभिन्न देशोंका माल यहीं आकर उतरता है और रेलके मार्गसे अमेरिकाके विभिन्न औद्योगिक केन्द्रोंको जाता है। इसी प्रकार अमेरिकाके कारखानोंका बना माल इसी बन्दरसे एशियाके अन्य केन्द्रोंको भेजा जाता है।

संयुक्त राज्य अमेरिकाके प्रधान बन्दर न्यूयार्क और सानफ्रान्सिस्को हैं।

भारत और फ्रांस

भारतका व्यापारिक सम्बन्ध फ्रांसके साथ उतना ही पुराना है जितना कि उसका बृटेनसे है। पर जहां बृटेनका व्यापारिक सम्बन्ध उसके साथ आरम्भसे आजतक शृङ्खलाबद्ध रूपसे चला आ रहा है वहां फ्रांसका व्यापारिक सम्बन्ध टीपू सुल्तानके अन्तके साथ ही सन् १७९९ ई० में एकाएक टूट गया। हां उसका थोड़ासा व्यापारिक सम्बन्ध फिर भी भारतके साथ बना रहा पर यह भी बृटेनके मारफत ही रहा। लन्दनके बाजारमें ही फ्रांस भारतका माल खरीदता और भारतके हाथ अपना माल भी बेचता रहा। इस प्रकारकी व्यवस्था योरोपीय महासमरके पूर्वतक विशेष रूपसे रही पर इसके बाद बृटेनसे मैत्री हो जानेके कारण फ्रांसने भारतके साथ अपना गहरा व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किया जो आज भी उन्नति कर रहा है। भारतसे मुख्यतया तेलहन माल, जूट, रुई और [illegible] अधिक परिमाणमें फ्रांस जाती है। तेलहन मालमें अधिकांश भाग मूंगफली और [illegible] रहता है और अल्पांश भागमें तिल, सरसों, डाही और बिनौला होते हैं। गेहूं और [illegible] भी भारतसे कुछ थोड़ेसे परिमाणमें फ्रान्स जाते हैं।

फ्रान्सकी उपज

यहां [illegible] सबसे अधिक पैदा होती है और इसके बाद अंगूरोंकी खेतीका नम्बर आता है। [illegible] और [illegible] भी पैदा होते हैं। [illegible] और [illegible] के अच्छे बगीचोंकी भी फ्रान्समें कमी नहीं है।

फ्रांसके उद्योग धन्धे

फ्रांसमें रेशमके कीड़े पालनेका बहुत बड़ा काम होता है। रेशमके कपड़ेकी यहां बहुत बड़ी
बड़ी मिलें हैं। शराब तैयार करनेके भी अच्छे कारखाने हैं। सभी प्रकारकी आमोद प्रमोदकी वस्तुएं
बनानेका उद्योग धन्धा यहां ऊंची श्रेणीका है।

फ्रान्सके प्रधान औद्योगिक नगर

पेरिस—यहां जेवर, सोने चांदी अर्थात् गंगा जमुनी काम ऊंचे दर्जेका तैयार होता है।
सभी प्रकारका ललित कला सम्बन्धी काम यहां बनता है। इस नगरका संसार प्रसिद्ध शेयर बाजार
Stock Exchange महत्वपूर्ण व्यापारिक स्थान माना जाता है।

लियान्स—यह नगर संसार भरमें सर्वश्रेष्ठ रेशमी माल तैयार करनेका केन्द्र माना जात
है। यहांका साटन, मखमल तथा रिबन (फीता) संसारमें अद्वितीय माने जाते हैं। यहांके कारखानों
लिये इटली और चीनसे रेशम खरीदकर मंगाया जाता है।

मार्सेलीज—यह संसारका महत्वपूर्ण प्रभावशाली बंदर है। भूमध्यसागरमें इस बंदर
स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। यहां लोहा गलाने, साबुन बनाने, शक्कर तैयार करनेके बड़े बड़े का
खाने हैं। यहांके कितने ही कारखाने इंजिन और मशीनरी तैयार करते हैं।

बोर्डो—यहांकी शराब संसार सुप्रसिद्ध है। यहां ऊनी और सूती कपड़ेके
कारखाने हैं।

लिले—यहां उच्च कोटिके कपड़े, फीता किनारी, दस्ताने, मोजे, बनियान, तैयार क
कारखाने हैं।

फ्रांसमें कौनसा माल कहां तैयार होता है

ऊनी माल—लिले, रूब, राडवाई, तथा सेडन
सूती माल—रूब, लिले, राडवाई, तथा सेन्ट क्विन्टिन
रेशमी माल—लियान्स

भारत और लोकतंत्र चीन

ये दोनों ही देश संसारकी अत्यन्त प्राचीन सभ्यताके थाती हैं। इन दोनों देशोंक
स्परिक व्यापार सम्बन्ध भी बहुत पुराना है। जिसे सभी इतिहास मर्मज्ञ भली प्रकार जानते है
शताब्दीमें भारत और चीनका सम्बन्ध अफीमके व्यापारके सम्बन्धमें अधिक गहरा हो गया
जबसे अफीमका व्यापार बंद हो गया तबसे इन देशोंके पारस्परिक व्यापारमें शिथिलता स
है। यहांसे चीन जानेवाले मालमें प्रधान रूपसे सूत और बोरे होते हैं।

चीनकी उपज

यहांकी प्रधान उपज चाय और चावल है जो मुख्यतया दक्षिण और दक्षिण पूर्वीय चीनमें अधिक उत्पन्न होते हैं। गन्ना, कपास और नीलकी खेती चीनके दक्षिणी भूभागमें होती है। अफीमकी खेती भी इसी दक्षिणी भूखण्डमें होती है। चीनमें बांसके जंगल भी अधिक हैं।

चीनके उद्योग धन्धे

चीनवाले स्वभावतया बड़े कलाकौशल प्रवीण होते हैं। इनके यहां बहुत पुराने समयसे कलाकौशल सम्बन्धी उन्नति होती आ रही है। यहां रेशमके कीड़े बहुतायतसे पाले जाते हैं अतः रेशम सुलझाने और रेशमी कपड़ा बुननेका बहुत बड़ा काम होता है। चायकी खेतीके कारण यहां चाय तैयार करनेके कितने ही कारखाने भी हैं। यहां बांसका कागज अधिक बनाया जाता है। कपूरके वृक्षोंसे कपूर तैयार करनेका काम भी होता है। चीनी मिट्टीका सुन्दर और मनमोहक सामान भी यहां तैयार होता है। लकड़ी और हाथी दांतकी खुदाईका काम भी उत्तम होता है। यहां जरीका उच्चकोटिका काम तैयार किया जाता है। यहांके उद्योग धन्धेको यहांकी नदियों और नहरोंसे बहुत अधिक सुविधा मिली है। यही कारण है कि यहांका सारा व्यापार नावों द्वारा ही होता है। यहांकी बस्ती नदियोंके किनारे किनारे ही है। यहां १००० वर्ष पूर्व शाही नहर खोदी गयी थी जो ७०० मील लम्बी है यहांसे टीनसीनतकका सभी व्यापार इसी जलमार्गसे होता है। चीनका अधिकांश व्यापार जापानके साथ होता है वृटेन तथा वृटिश साम्राज्य और संयुक्त राज्य अमेरिकासे कम परिमाणमें होता है। चीनसे रेशम, रेशमी कपड़ा, चाय, चीनी, रुई और खाल विदेश जाती है और इसके बदलेमें ज्यादा तर सूती माल, अफीम, धातु और पेट्रोलियम बाहरसे आते हैं।

चीनकी राजनैतिक परिस्थितिके कारण यहांका सभी व्यापार वृटिश पूंजीपतियोंके हाथमें था पर जबसे चीन प्रजातंत्रने जोर पकड़ा है तबसे वृटेनके हाथसे बहुत कुछ व्यापारिक सुविधायें निकल गयी हैं। नवीन जागृतिके पश्चात् इसने चुंगी आदि सभी आवश्यक विभागोंको अपने हाथमें ले लिया है। पर अब भी जापान, अमेरिकाके समान कितने ही राष्ट्र यहां अपना अपना व्यापार फैलानेके लिये होड़ लगा रहे हैं।

चीनके प्रधान व्यापारिक नगर

पेकिन — यह चीनका अत्यन्त प्राचीन नगर है और व्यापारकी दृष्टिसे संसारके महत्वपूर्ण नगरोंमें गिना जाता है। शाही नहरके एक सिरे पर होनेके कारण नावोंसे माल यहां आता है। यह चीनका बड़ा केन्द्रस्थान है अतः शाही नहर द्वारा आने जानेवाला माल इसी बंदर पर रुकता है। यहां से रेलवे लाइन भी निकली है। यहांसे योरोप और रूसके लिये माल ले जानेवाले

कावों रवाना होते हैं। यह भी एक 'फ्री पोर्ट' है अतः विदेशी व्यापारका बहुत बड़ा केन्द्र है।

कैन्टन—यह नगर दक्षिणी चीनका प्रसिद्ध बंदर है। इसके समीपी भूभागकी उपज इसी बंदरसे होकर विदेश जाती है तथा इस भूभागके लिये आनेवाला माल भी यहीं उतारा जाता है। इस बंदरसे रेशमी माल, चाय, और चीनी बाहर जाती तथा रुई और अफीम बाहरसे आती है। यहां रेशम और कपड़ेकी कई मिलें हैं।

शंघाई—यह चीनका एक बहुत बड़ा 'फ्री पोर्ट' है जो उत्तरी समुद्रतट पर यांगटिसिक्यांग नदीके मुहाने पर बसा हुआ है। यह विदेशी व्यापारका प्रधान केन्द्र है।

हांग कांग—यह संसारके प्रसिद्ध बंदरोंमें है। यह ब्रिटिश अधिकारमें है।

भारत और बेलजियम

बेलजियमका आकार प्रकार जितना छोटा है उतना ही उसका औद्योगिक व्यापार बढ़ा चढ़ा हुआ है। भारतके साथ इसका व्यापारिक सम्बन्ध कुछ कम महत्वका नहीं है। इसके बड़े बड़े कारखानोंकी आवश्यकता पूर्ति भारत अपने कच्चे मालसे करता है। यही कारण है कि भारतके कच्चे मालका बेलजियम सदासे एक विशेष खरीदार रहा है और वहांके कारखानोंका बना हुआ माल भारत भी खरीदता रहा है। इस प्रकार इन दोनों देशोंके बीच पारस्परिक व्यापार आज भी पूर्ववत् चला आ रहा है। भारतसे रुई, तेलहन आदि बेलजियम जाते हैं। यहांसे गेहूं और कच्चा मैंगनीज भी जाता है। और बेलजियमसे रेल, शीशा, ऊनी कपड़ा, अंगीठी, सीमेन्ट, हार्डवेयर, कांचका सामान आदि भारत आते हैं।

बेलजियमकी उपज

यहां ओट, राई, गेहूं, आलू, जौ और चुकन्दरकी खेती होती है। खानोंसे यहां कोयला, लोहा, जस्ता, सीसा, और तांबा निकलता है। पर खेतीकी उपज पर्याप्त नहीं होती अतः गेहूं आदि खाद्य पदार्थ बाहरसे आते हैं।

बेलजियमके उद्योग धन्धे

यहांका प्रधान उद्योग धन्धा कृषिकी उपज और जंगलकी पैदावारसे अधिक सम्बन्ध रखता है। खान खोदने, पत्थर निकालने और कारखानोंके कामनें यहांके अधिकांश आदमी लगे रहते हैं। यहां कपड़ेके कारखाने, कपड़ा बुननेकी मिलें, तथा शीशा तैयार करनेके मिलें भी चल रहे हैं। यहां शक्कर और रबर तैयार करनेके कारखाने भी हैं।

बेलजियमके औद्योगिक केन्द्र

ब्रुसेल्स—यहां कांचकी मिलें, कागज, मिट्टीके बर्तन, आदि अनेक कारखाने हैं। लोहा, फौलाद, मशीन आदि यहां तैयार होते हैं।

एक विचित्र प्रकारका विचार-प्रवाह छोड़ा दिया है जिससे जनसाधारणकी विचार-पद्धतिमें ही आश्चर्यकारी परिवर्तन हो गया है और वे लोग इस मालको सर्वश्रेष्ठ स्थान देनेपर तुले बैठे हैं। अतः [illegible]

[illegible]

सरकारोंसे राष्ट्रोचित सहायता प्राप्तकर पारस्परिक व्यापार प्रतियोगिताकी अणुमात्र चिन्ता न कर नवीन बाजारोंकी खोज लगा अपना अपना व्यापार सुदृढ़ करनेमें लगे रहे हैं। ऐसी परिस्थितिमें बेचारे पराधीन दीन भारतका क्या सामर्थ्य जो वह पारस्परिक व्यापार प्रतियोगिताके प्रबल संहारक संघर्षके सम्मुख खड़े होनेका स्वप्नमें भी साहसकर सके। फिर भी आत्मरक्षाका प्रश्न एक ऐसा प्रश्न है कि जिसके सम्बन्धमें सभी एक मतसे स्वीकार करते हैं कि लोग ऐसी स्थितिमें सब कुछ करनेपर उतारू हो जाते हैं। अतः भारतके सम्बन्धको लेकर नवीन बाजारोंके सम्बन्धमें चर्चा करना कुछ अनुचित और अस्वाभाविक न होगा।

भारतके लिये यदि कोई नवीन बाजार खोज निकाले जा सकते हैं तो स्याम, पूर्व अफ्रिका, फारस, पेलेस्टाइन, और ईराक ही ऐसे स्थान हैं जहां संगठित रीतिसे चलाये जानेवाले भारतीय व्यापार को सरलतासे सफलता मिल सकती है। अतः भारतका हित इसीमें है कि भारतीय व्यापारी सभी राष्ट्रोचित उपायोंसे उपरोक्त बाजारोंमें अपना व्यापार संगठितरूपसे जमावें और उसके प्रसारके लिये प्रयत्न करें।

इस स्थलपर हम उपरोक्त बाजारोंके सम्बन्धको लेकर विस्तृत विवेचन करेंगे और साथ ही वहां भारतका कौन कौनसा माल चल सकेगा और भारतको वहांसे कौन कौनसा माल मंगानेमें लाभ होगा आदि आवश्यक बातोंपर भी यथासाध्य प्रकाश डालनेकी चेष्टा करेंगे।

पूर्व अफ्रीका—अफ्रीका महाद्वीपके इस भूभागके अन्तर्गत कीनिया, युगेण्डा, टङ्गानिका, झंझीबार और पेम्बा माने जाते हैं। इनके सुविस्तृत स्वरूपका सांख्यिक परिचय यह है:—

१—कीनियाका क्षेत्रफल २,४०,००० वर्ग मील है।
२ युगेण्डा „ १,६६,१६६ „
३—टङ्गानिका „ ३,८५,००० „
४—पेम्बा „ ३६६ „
५—झंझीबार „ ६२५ „

क्षेत्रफलके बाद इस भूभागकी जनसंख्याका विश्लेषण भी कर देना आवश्यक है। यहांकी जनसंख्यामें संख्याके अनुसार विभिन्न जातियोंका कौनसा स्थान है यह स्पष्ट रीतिसे जान लेनेसे

मालका अनुमान किया जाता है कि कौनसा माल किस प्रकारके रहन सहनके आदमी कितना व्यवहार कर सकते हैं। क्योंकि जाति विशेषके रहन सहन और सामाजिक जीवनक्रमसे तत्कालीन आवश्यकताओंका सहज अनुमान लगाया जा सकता है

पूर्व अफ्रीकाके देश	वहांकी जनसंख्या				
	यूरोपियन	एशियाटिक	अरब	अफ्रीकन	कुल जोड़
१—केनिया	९,६५२	२५,८८०	१०,१०२	२३,९९७००	२५,४५,३३४
२—युगाण्डा	१,७३६	५,६०४	×	३६,५४,७२१	३०,७१,३०८
३—टांगानिका	२,४४७	१०,२०६	४७८२	४१,०७०००	४१,२४,४३८
४—जंजीबार और पेम्बा	२७०	×	×	१६७०००	१६,७२,७०

इस प्रकार उपरोक्त संख्यासे स्पष्ट है कि पूर्व अफ्रीकामें कुल ९८,३८,३५० व्यक्ति निवास करते हैं। क्षेत्रफल और जनसंख्याके बाद यदि कोई और प्रधान विषय है तो उन बस्तीका व्यापार है। अतः इसके आयातके कुछ उपलब्ध अङ्कोंको जहां हम नीचे उद्धृत करते हैं वहां भारतसे आने और भारत जानेवाले मालके अङ्क भी साथ ही दे रहे हैं। इससे जहां वहांके व्यापार वाणिज्यका स्वरूप स्पष्ट होगा वहां उसके साथ भारतके व्यापारका कैसा सम्बन्ध है यह भी सुबोध रीतिसे समझमें आ जायगा।

व्यापारका स्वरूप	केनिया	टांगानिका	जंजीबार और पेम्बा
१. कुल आयात्	६९१७,००० पौण्ड	१४,३१,००० पौण्ड	२१,५०,००० पौण्ड
भारतसे आनेवाला माल	१७,७०,००० "	७,९२,००० "	५,००,००० "
२. कुल निर्यात्	५०,३१,०००	१०,९०,०००	२१,५०,०००
भारत जानेवाला माल	१७,३८,०००	१,०६,०००	४,२०,०००
३. कुल व्यापार (आयात निर्यात)	१,१९,७३,०००	२५,२१,०००	४३,००,०००
भारतसे कुल व्यापार	२५,०८,०००	३,९८,०००	११,२०,०००

उपरोक्त अङ्क पौण्डमें दिये गये हैं। और केनियाके अङ्कोंमें युगाण्डाके अंक भी सम्मि किये गये है। इस भूभागमें जितना भी माल भारतसे आता है उसमेंसे प्रधान रूपसे कपड़ा ही अ है। अतः भारतसे कितनेका कपड़ा इस देशमें आता है यह नीचेके अङ्कोंसे स्पष्ट है।

कपड़ा आता है	केनिया युगाण्डा	टांगानिका	जंजीबार पेम्बा
भारतसे	३,३३,५०० पौंडका	७,००००० पौंडका	१३६,००० पौंड
अन्य देशोंसे	१३,५३,५०० "	५,८८,००० "	५,५०,००० "

इस भूभागसे भारतका व्यापारिक सम्बन्ध किस स्थितिमें है यह बात भी उपरोक्त दिये गये उपलब्ध अंकोसे स्पष्ट होजाता है अब हम इस सम्बन्धकी आवश्यक बातोंकी चर्चा करेंगे।

इस देशमें भारतसे प्रायः कपड़ा, चावल, गेहूं और आटा, जूटके बोरे, चाय, घी, ऊनी माल, इमारती लकड़ी, चमड़ा और चमड़ेका सामान, लोहा और फौलाद, लोहेका सामान और हार्डवेयर, जूते, सीमेन्ट और कितनी ही अन्य आवश्यक वस्तुएं आती हैं और इस देशसे भारतको रुई, [illegible] वस्तुएं जाती हैं। इन सभी [illegible]

भारतसे आनेवाला माल

कपड़ा

भारतसे जितना भी माल यहां आता है उसमेंसे सबसे अधिक कपड़ा होता है। उस कपड़े में भी रंगीन बानेकी अधिक मांग रहती है। कीनिया और युगेण्डामें जितना भी भारतसे कपड़ा आता है उसमें रंगीन बाना ७५ प्रतिशत खपता है इसी प्रकार टेंगेनिका ८० प्रतिशत तथा झन्जी-बार और पेम्बामें ७० प्रतिशत इसकी खपत होती है।

रंगीन कपड़ेके बाद महत्वपूर्ण मांग सूती कम्मलकी रहती है। इस देशके बाजारमें भारतके सूती कम्मलको हालेण्डसे आनेवाले ऐसे ही कम्मलोंसे प्रतियोगिता करनी पड़ेगी। क्योंकि हालैण्डका यह माल अधिक आने लगा है।

भारत जूटके रेशोंको भी सस्ते कम्मल बनानेके काममें ले सकता है। कम्मल सस्ते और सुन्दर होने चाहिये।

चावल, गेहूं और आटा।

भारतसे आनेवाले मालमें महत्वकी दृष्टिसे इनका स्थान दूसरा है। इस प्रकारके उपरोक्त तीनों ही आनेवाले खाद्य पदार्थोंके कुल परिमाणका मूल्य अनुमानतया ३८८,००० पौण्ड था जिसमेंसे २८०,००० पौण्डके चावल, तथा १,८४,८०० पौण्डका गेहूं और आटा इस देशमें आया। पर इस प्रकारके मालपर यहांकी सरकारने अधिक चुंगी लगा रक्खी है अतः भारतको सम्भवतः इस व्यापारसे लाभ बहुत ही कम होगा।

जूटके बोरे

इस देशमें बाहरसे आनेवाले बोरोंका मूल्य साधारणतया १,८९,००० पौण्ड होता है जिसमेंसे १,६१,००० पौण्ड मूल्यके बोरे सीधे भारतसे ही यहां आते हैं। बोरेके व्यापारमें सबसे अधिक ध्यान देनेकी बात तो यह है कि बीचमें बहुतसे लोग खाने वाले भी रहते हैं इसलिये माल तेज पड़

जाता है। सस्ता माल बेचनेके लिये भारतको चाहिये कि वह अफ्रीकामें अपने एजेन्ट रक्खे और उन्हींके द्वारा वहांके आर्डर सीधे ले ले। अफ्रीकासे जो लौंग विदेश जाती है वह चटाइयोंमें लपेट कर भेजी जाती है पर अब वहां उत्पन्न होने वाले सिसल नामक रेशेसे लौंग भेजनेके लिए बोरे बनानेकी चेष्टा हो रही है यदि सफलता मिल गयी तो बोरेकी खपतका एक मात्र आधार उनका सस्तापन ही रहेगा। अतः भारतीयोंको इस ओर भी ध्यान देना चाहिये और सस्ते मूल्यपर बोरे बेचनेका प्रयत्न करना चाहिये। क्योंकि अफ्रीका ज्यों ज्यों उन्नति करता जायगा त्यों त्यों वहांकी उपज भी वृद्धि करती जायगी और इस प्रकार बोरोंकी बराबर मांग जारी रहेगी।

चाय

भारतसे लगभग ३६००० पौण्ड मूल्यकी चाय सीधे तौरपर अफ्रीकाके इस भूभागमें जाती है।

घी

बाहरसे लगभग ६२००० पौण्डका घी यहां आता है। जिसमें २८७०० पौण्डका घी तो भारतसे ही आता है। इसलिये भारतके घीके लिये यहां पर्याप्त क्षेत्र है। भारतसे आने वाला घी प्रथम टेङ्गनिकामें उतरता है और फिर यहांसे पूर्व अफ्रीकाके अन्य भागोंको जाता है। कीनियांके पहाड़ी प्रदेशमें कुछ योरोपियन घी तैयार करने लगे हैं। इनका घी शुद्ध अधिक होता है अतः इन्हें सफलता की बहुत बड़ी आशा हो चली है।

अफ्रीकाके इस भूभागसे घी भारत भी जाता है। जो अनुमानतया १६००० पौण्ड मूल्यका होता है।

ऊनी माल

यहां आनेवाले ऊनी मालमें ऊनी कम्बल और कालीन भी सम्मिलित मानना चाहिये। सभी देशोंसे कुल ऊनी माल ६४१०० पौण्डका यहां आता है। जिसमेंसे २२६०० पौण्डका माल भारतसे यहां आता है। अतः भारतको इस ओर अच्छी सफलता मिल सकती है पर यहांकी सरकारने इस मालपर बड़ी जबर्दस्त चुंगी लगा रक्खी है, ऐसी दशामें जूटके रेशोंका नकली ऊन तैयार कराकर सस्ता माल अवश्य ही मुनाफेसे यहां भेजा जा सकता है।

इमारती लकड़ी

यहां लगभग ५२००० पौण्डकी इमारती लकड़ी विदेशसे आती है जिसमेंसे १६००० पौण्डकी यह लकड़ी भारतसे आती है। इसीसे स्पष्ट है कि भारतकी लकड़ीको यहां अच्छा अवसर है। पर कीनियां और यूगेण्डाकी सरकारने बाहरसे आनेवाली इस प्रकारकी लकड़ीपर ५० प्रतिशतकी चुंगी लगा रक्खी है।

चमड़ा और चमड़ेका सामान

इस प्रकारका कुल सामान ५७८०० पौ० का यहां आता है जिसमेंसे १७६०० पौण्डका माल भारतसे आता है। ज्यों ज्यों यहांके लोग सभ्य होते जाते हैं त्यों त्यों जूते पहिननेका अभ्यास भी लोगोंको अधिक होता जाता है। इस प्रकारके कम कीमत और मजबूत मालके लिये यहां पर्याप्त क्षेत्र है। भारत इस व्यापारमें अच्छा लाभ उठा सकता है।

लोहा और फौलाद

इस प्रकारके मालकी यहां बहुत अधिक मांग है पर भारतसे बहुत ही कम ऐसा माल आता है। इस प्रकारका कुल माल यहां १,८८,००० पौण्डका आता है। जिसमें भारतसे केवल ६३०० पौण्डका ही यह माल यहां आता है। यदि भारतीय व्यापारी मुनाफेसे यह माल यहां भेज सकें और मिडिल एवं इन्टिरियर भागोंके अन्दर भेज सकें तो अवश्य ही लाभ हो सकता है और भारतीय व्यापारकी बहुत अधिक वृद्धि हो सकती है।

लोहेका सामान और हार्डवेर

यहां यह माल प्रायः १,३०,००० पौण्डका आता है। जिसमेंसे भारतसे ५००० पौण्डका ही माल आता है। यदि यहांवालोंकी मांगके अनुसार और सस्ते भावपर माल भारतीय व्यापारी भेज सकें तो अच्छे लाभकी आशा है।

सीमेन्ट

यहां सीमेन्टकी खपत दिन प्रति दिन बढ़ रही है। विदेशसे लगभग ८५०० पौण्डकी सीमेन्ट यहां आती है जिसमेंसे भारतसे केवल ११०० पौण्डकी ही आती है। भारतकी सीमेन्ट बोरियोंमें भरकर यहां आती है जिससे यहां वालोंको हानि उठानी पड़ती है। यदि बोरोंके स्थानमें सीमेन्ट पीपोंमें भरकर भारतसे यहां भेजी जाय तो सीमेन्टके व्यापारमें भारतको अवश्य ही अधिक लाभ हो।

अन्य वस्तुएं

उपरोक्त मालके अतिरिक्त यहां कितनी ही अन्य प्रकारकी वस्तुओंकी अधिक मांग रहती है। यदि भारतीय अपने कारखानोंमें यह माल तैयार कराकर यहां भेज सकें तो भारतीय कारखानोंको अच्छा सुअवसर मिल जाय। इन वस्तुओंमें कुछ खास चीजोंका परिचय इस प्रकार है :—

(१) लोहेके माल और कांटेदार तार (२) इंजिन आदि खेती सम्बन्धी यंत्र। (३) तिजोरी ताले। (४) तम्बाकू सिगरेट और सिगार। इसी प्रकार रोलके समान साबुन, मोजे बनियान, कागज, स्टेशनरी, कांच लेम्पके कांच, अल्युमिनियमके बर्तन तथा सुगन्धित द्रव्य आदि।

भारतीय मालके लिये उपयुक्त नवीन व्यापारिक क्षेत्र

अफ्रीका वालोंमें आधुनिक सभ्यताका ज्यों ज्यों प्रसार होगा त्यों त्यों उनकी आवश्यकताएं बढ़ेंगी, और परिणाम स्वरूप यहांके बाजार भी अच्छी उन्नत अवस्थाको पहुंचेंगे। यहांकी सरकार इन लोगोंको कच्चा माल उत्पन्न करनेके लिये प्रोत्साहित कर रही है। ऐसी परिस्थितिमें भारतीय कल-कारखानोंके लिये उन्नति करनेका स्वर्ण सुअवसर है। इससे भारतके औद्योगिक विकासमें अधिक सहायता मिलेगी।

भारत जानेवाला माल

इस निबन्धके आरम्भमें दिये अंकोंसे ज्ञात हो जायगा कि यहांके निर्यातका २५ प्रतिशत माल भारत जाता है। यों तो यहांसे चमड़े, शक्कर, सिज़ल, नारियलकी गरी तथा गल्ला आदि भारत जाते ही हैं पर इनमेंसे कुछ मुख्य वस्तुएं नीचे दी जाती हैं।

रुई

यहां कपास बहुत उत्पन्न होती है। जो प्रायः प्रतिवर्ष ३३,३७,००० पौण्डकी विदेश जाती है। जिसमेंसे ११४२,००० पौण्डकी भारत जाती है। जापानवाले यहां पहुंच चुके हैं और उन्होंने अपनी जीनिङ्ग तथा प्रेसिङ्ग फैक्टरियाँ भी खोल दी हैं। ये लोग युगेण्डामें कपासको खरीद करते हैं और अपनी जीनिङ्ग फैक्टरियोंमें उससे बिनौला निकाल कर अपनी ही प्रेसिङ्ग फैक्टरियोंमें गांठ बांधते हैं। तथा अपनी बीमा कम्पनियोंमें बीमा कराकर अपनी ही जहाजी कम्पनियों द्वारा गांठोंको जापान भेज देते हैं। भारतको चाहिये कि वह भी जापानका अनुकरण कर लाभ उठावें।

लौंग

यहांसे कुल लौंग प्रायः ७३५,००० पौण्ड मूल्यकी विदेश भेजी जाती है। जिसमेंसे ३,९६,००० पौण्डकी तो भारत जाती है। पर जहाजी कम्पनियां विदेशी हैं अतः भाड़ा अधिक लग जाता है।

हाथी दांत

यहांसे कुल हाथी दांत १,३४,००० पौण्डका विदेश जाता है। जिसमेंसे १,०२,००० पौण्ड का भारत भेजा जाता है। इन वस्तुओंके अतिरिक्त पेन्सिल बनानेके योग्य लकड़ी, गुड़, सुअरका मांस, [illegible], सूखा मांस और खाद आदि भी भारत भेजे जाते हैं। यह सभी जानते हैं कि व्यापार व्यापारसे ही बढ़ता है अतः यहांके कच्चे मालको खरीदने और उसके विनिमयमें भारतके कारखानोंके बने मालको यहां भेजनेमें भारतीय राष्ट्रको औद्योगिककी पूर्ण आशा है। फलतः हमें यहांकी सरकारसे घरेलू उद्योग धन्धेको प्रोत्साहन देनेके लिये बाहरसे आनेवाले उसी प्रकारके मालपर जो स्वयं

वहां पैदा होता है संरक्षणकर बैठा दिया है। बाहरसे आनेवाली लकड़ी पर जो १५ प्रतिशत कर था। वह बढ़ाकर ५० प्रतिशत करदिया गया है और चावल, गेहूं तथा आटे पर कर बढ़ाकर १५ से ३० प्रतिशत कर दिया गया है। यदि कहींपर कर अनुचित परिमाणमें बैठा दिया जाय तो तुरन्त ही भारत सरकारको सूचित कर देना चाहिये। तथा यहांकी व्यापार सम्बन्धी जानकारीके लिये इण्डियन ट्रेड कमीशन इन ईस्टको मुम्बासाके पतेपर लिखकर पूंछना चाहिये।

भारतकी औद्योगिक अवस्था

भारतकी आर्थिक स्थितिका पूरा भार कृषिपर है। उसके जनसमाजका ७० प्रतिशत भाग केवल किसान ही हैं। संसारके अन्य देशोंकी खेतीके साथ भारतकी खेतीकी तुलना करते ही स्पष्ट हो जाता है कि भारतकी अवस्था वास्तविक रीतिसे अत्यन्त शोचनीय हो गयी है। अभी कुछ दिन पूर्व यहांकी इण्डियन शुगर कमेटीने संसारके अन्य गन्नेके केन्द्रोंके साथ भारतकी तुलना करते हुए लिखा था कि भारतमें प्रति एकड़ गन्नेसे जितनी शक्कर निकलती है वह परिमाणमें क्यूबामें उत्पन्न होनेवाले प्रति एकड़ गन्नेसे निकलनेवाली शक्करकी अपेक्षा परिमाणमें ; कम होती है। और जावाकी उपजसे ; कम तथा हवाई द्वीपकी उपजसे ; कम होती हैं। इसी प्रकार चावल, गेहूं, कपास, आदिकी उपज भी कम होती जारही है। यदि आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतिके अनुसार भारतमें खेतीका कार्य आरम्भ कर उसे व्यवसायिक रूप न दिया गया तो अवश्य ही महान अनर्थका सूत्रपात हो जायगा। इसके लिये जनसाधारणमें व्यवहारिक वैज्ञानिक शिक्षाका प्रसार देशी भाषाओं द्वारा किया जाना चाहिये। इसका फल यह होगा कि जनताकी अभिरुचि उस ओर जायगी और भारतमें खेतीकी अवस्थाका सुधार होगा।

इसी प्रकारकी अवस्था भारतके उद्योग धन्धोंकी है। यदि इस ओर कुछ उन्नति हुई है तो वह भी अन्य देशोंके उद्योग धन्धोंकी तुलनामें नहींके समान ही है। भारतका विस्तृत आकार प्रकार, और उसका प्रचुर प्राकृतिक अक्षय रत्नभण्डार, होते हुए भी अगणित भारतीय जनताका रोटी कपड़ेके लिये बिलखना उसके उद्योग धन्धेकी कारुणिक अवस्थाका वास्तविक चित्र आंखोंके सम्मुख बतलाता है।

भारतके प्रधान उद्योग धन्धोंमें रुई और जूटका काम सर्वप्रथम माना जाता है। इसके बाद रेल्वेके कारखाने, इञ्जिनियरिङ्ग वर्क शाप, चमड़ेके कारखाने, लोहा गलानेकी भट्टियां और लोहा ढालनेके कारखाने, तेलकी मिलें, आदि कुछ कारखाने ऐसे हैं जो भारतकी औद्योगिक उन्नतिका उदाहरण देनेके काम आते हैं इसी प्रकार लोहा, कोयला, अभ्रक आदि कई प्रकारकी खानें और हीरे भरे

चायके बगीचे भी गिने जाते हैं। पर ये सभी विदेश की पूंजीसे चल रहे हैं और व्यर्थ ही इनको बीचमें डालकर भारतकी नकली समृद्धिका जोरसे डिमडिमा पीटा जा रहा है। वास्तविक बात तो यह है कि देशका जन समाज केवल श्रमजीवी है जो एड़ी चोटीका पसीना एक कर रहा है और विदेशी पूंजीपति स्वयं भारतके उद्योग धन्धेपर अपनी पूंजीके बल चैनकी वंशी बजा रहे हैं।

भारतके उद्योग धन्धेमें थोड़ीसी पूंजी भारतीयोंकी भी है अतः भारतीय व्यापारियोंको इस ओर विशेष ध्यान रखनेकी आवश्यकता है। आज जो भारतीय व्यापारी, विदेशी पूंजी-पतियोंके कल कारखानोंके तैयार मालको भारतमें खपानेके लिये एजेन्ट, बेनियन और ब्रोकर बन उन्हें पैसा पैदा करा रहे हैं उन्हें चाहिये कि वे स्वयं सम्मिलित शक्तिसे भारतके उद्योगधन्धेको उन्नत अवस्था-पर पहुंचानेमें प्रयत्नशील हो जायं और भारतीय कल कारखानोंमें तैयार होनेवाले माल को विदेशके बाजारमें खपानेके लिये विदेशवालोंको अपना एजेन्ट, बेनियन और ब्रोकर बनावें। पर यह कार्य तभी सम्भव है जब भारतीय व्यापारी व्यापारिक संघ बना कर सामुहिक शक्तिसे व्यापारिक क्षेत्रमें उतर पड़ें। जब तक यथेष्ट पूंजी लेकर भारतीय उद्योग धन्धोंको न अपनाया जायगा तब तक पूंजीके बलपर इत-राने वाले विदेशी व्यापारियोंसे प्रतियोगिता करनेमें हमें सफलता न मिल सकेगी। पूंजी संग्रह करनेका एक ही मार्ग है। और वह यह है कि भारतके बड़े बड़े भारतीय व्यापारी संघरूपमें मिल कर बड़े बड़े व्यापार सम्बन्धी सेन्डीकेट अथवा व्यापारिक संघ खोलें और फिर प्रतियोगिताके मैदानमें आवें। स्मरण रहे आजके युगमें ऐसे व्यापारिक संघोंका बहुत बड़ा महत्व है। अमेरिकामें बड़े बड़े व्यापारियोंने मिलकर सेन्डीकेट खोले हैं। जर्मनीके अन्दर भी ऐसे ही संघोंका स्थापन जोरोंसे किया जा रहा है। फ्रान्स और बृटेनकी बड़ी बड़ी फर्मोंने मिलकर एक बहुत बड़ा व्यापारिक संघ स्थापित किया है। अमेरिकन, बृटिश, तथा फ्रेंच कम्पनियोंने मिलकर ईराकमें तेलकी कम्पनीके नामसे एक बहुत बड़ा व्यापारिक संघ खोला है। यही कारण है कि हम इस उपायको काममें लानेका परामर्श भारतीय व्यापारियोंको दे रहे हैं। यदि वे लोग ऐसे व्यापारिक संघोंकी स्थापना कर भारतके उद्योग धन्धेकी उन्नतिमें लग जायगे तो निश्चयही वे भारत राष्ट्रका बहुत बड़ा हित करनेका श्रेय प्राप्त करेंगे। क्योंकि अपनी अपनी वैयक्तिक सामर्थ्यसे काम लेनेका अब युग नहीं रहा।

भारतीय व्यापारियोंको चाहिये कि वे इस प्रकारके व्यापारिक संघ बना कर भारतके औद्योगिक क्षेत्रमें अपनी पूरी शक्ति लगा दें। वर्तमान विद्युतशक्ति सम्बन्धकारी सुविधाओंको अधिक शक्तिशाली बनाकर अधिकसे अधिक शक्ति उत्पन्न करानेकी ओर उन्हें ध्यान देना चाहिये। कोयलेके सहारे तथा पेट्रल जलनेवाले इन अगणित कल कारखानोंमें उत्पन्न की जा सकनेवाली विद्युत शक्तिके

सम्बन्धमें हाइड्रो एलेक्ट्रिक (Hydro electrio) आयोजनको काममें लानेका प्रयत्न भी यहां किया जाना चाहिये। इतना ही नहीं उन्हें देशके श्रमजीवी वर्गको प्रबुद्ध करनेकी चेष्टामें भी संलग्न होना चाहिये। उचित पारिश्रमिक, और रहन सहनकी सुविधाओंका प्रबन्ध कर उनके लिये 'टेकनिकल स्कूल' स्थान स्थानपर खोल कर देशी भाषाओं द्वारा व्यावहारिक शिक्षा देनेका सुप्रबन्ध भी करना चाहिये। देशके औद्योगिक केन्द्रोंका आधुनिक पद्धतिके अनुसार संगठन किया जाना चाहिये। यांत्रिक सहायतासे कलकारखाने चलानेकी सुविधाओंपर ध्यान देना आवश्यक है और साथ ही स्थान स्थानपर बैंकोंकी व्यवस्था भी करना चाहिये। यदि इस प्रकारसे सुसंगठित हो कार्य किया जाय, जो अव्यवहारिक या असम्भव कदापि नहीं है तो अवश्य ही मनचेती सफलता मिल सकती है।

ऐसा करनेसे भारतको रत्नगर्भा भूमिके कच्चे मालसे अच्छेसे अच्छे ढंगपर देशकी पूंजीसे देशके कारखानोंमें देशी भाइयोंकी सहायतासे सस्ता, सुन्दर और टिकाऊ पक्कामाल बनाया जा सकेगा। भारतीय व्यापारिक वर्गके सामुहिक रूपसे काम करनेसे भारतके किसानोंके कच्चे मालकी मांग बढ़ेगी अतः उन्हें आर्थिक लाभ होगा और उसके बल वे अपना जीवन क्रम सुधारनेमें सफल होंगे। इसी प्रकार कल कारखानोंकी उन्नतिके साथ ही किसानोंके समान ही श्रमजीवी भी पेट भर भोजन करेंगे और शरीरपर सुन्दर कपड़े पहन सकेंगे। अपना और अपनी सन्ततिका भविष्य सुधारनेमें सफल मनोरथ होंगे। देशकी आवश्यकता स्वयं देश पूरी करनेमें समर्थ होगा और क्रमानुसार भारत राष्ट्र एक शक्तिशाली राष्ट्र बनकर अपना प्राचीन गौरव प्राप्त करनेमें अवश्य ही यशस्वी होगा।

अब हम इसी सिलसिलेमें भारतके कतिपय महत्वपूर्ण उद्योग धन्धोंके सम्बन्धमें यहां कुछ लिख रहे हैं जिन्हें हाथमें लेकर हमारे भारतीय व्यपारी अच्छा लाभ उठा सकते हैं।

शक्कर—भारत गन्नेकी खेतीका घर है। गन्नेकी खेती यहांसे अधिक संसारके अन्य किसी भी भूभागमें नहीं होती। पर उपजकी दृष्टिसे मानना पड़ेगा कि भारतके गन्नेसे बहुत ही कम परिमाणमें शक्कर निकलती है। भारत सरकारकी कृषि सम्बन्धी रहस्यमय नीतिको भारतके किसान समझनेमें सर्वथा असमर्थ हैं। न मालुम सरकारका कृषि विभाग यहांके किसानोंको भारतीय भाषाओं द्वारा कृषि सम्बन्धी ज्ञान-दान कब देगा और कब यहांके किसान खेतीकी ओर ध्यान देनेकी अभिरुचि दिखावेंगे। लगभग १० लाख टन शक्कर प्रति वर्ष जावा और मारिशससे भारत आती है। भारतसे बहुत बड़े परिमाणमें प्रतिवर्ष गुड़ विदेश भेजा जाता है। गुड़ खरीदने वाले देशोंमें फेंजो ग्रेपुंज, स्ट्रेट सेटलमेन्ट,और सीलोन ही प्रधान हैं। भारतसे गुड़ प्रायः विजगापट्टम, कोकोनाडा, तुतीकोरिन, और बम्बईके बन्दरोंसे बाहर भेजा जाता है। गुड़का व्यापार भी महत्वका माना जाता

है। इन सबकी सभी प्रकारकी जानकारीके लिये इण्डियन शुगर प्रोड्यूसर्स ऐसोसियेशन कानपुरसे पत्रव्यवहार किया जा सकता है।

मोम बत्तियाँ—बाजारमें बिकनेवाली मोमबत्तियाँ स्टीयरिन(Stearine) या पैराफीन वैक्स नामक पदार्थसे बनती हैं। भारतमें मोमबत्ती बनानेका सबसे बड़ा काम होता है। यहाँ मोमबत्ती तैयार करनेका प्रधान केन्द्र सिरियाम (Syriam) माना जाता है। यह नगर रंगूनके पास है। यहीं साफ किये हुए पैराफीन वैक्ससे सब तरहकी मोमबत्तियाँ बनाई जाती हैं। स्वचालन शक्तिकी मशीन प्रति १५ मिनटमें ३६० मोमबत्तियाँ तैयार करती हैं। इस स्थानके अतिरिक्त कलकत्ता, मद्रास, मैसूर और बड़ौदामें मोमबत्तीके कारखाने हैं। भारतसे विदेश जाने वाली मोमबत्तीका ९० प्रतिशत भाग रंगूनके बंदरसे बाहर जाता है और शेष भाग बम्बईके बंदरसे रवाना किया जाता है। भारतकी मोमबत्तियाँ चीन, सीलोन, न्यूजीलैण्ड, यूनान, स्ट्रेट सेटलमेन्ट्स, स्याम और फारस जाती हैं।

तम्बाकू—भारतमें सबसे अच्छी तम्बाकू रंगपुरमें पैदा होती है। यहाँसे तम्बाकूकी पत्ती अदन, हांगकांग, फ्रान्स, स्ट्रेट सेटलमेन्ट्स, हालैण्ड, जर्मनी बहुत बड़े परिमाणमें भेजी जाती है। फ्रान्स सबसे अधिक भारतकी ही तम्बाकू खरीदता है और इसके बाद अदन तथा स्ट्रेट सेटलमेन्ट्सका स्थान खरीदारोंमें महत्वका माना जाता है। भारतसे तम्बाकूकी पत्ती रंगपुर, बम्बई, कलकत्ता और नागापट्टनमसे विदेश भेजी जाती है। सिगरेट और सिगारके रूपमें तम्बाकू बहुत बड़े परिमाणमें विदेशसे भारत आती है। चीनी सिगार सबसे अधिक मद्रास त्रिचिनापल्लीमें तैयार होती है पर फिलिपाइन और हवानासे बहुत बड़े परिमाणमें सिगरेट भारत आते हैं। भारतमें भी बीड़ी, सिगरेट आदिके कारखाने खुल रहे हैं। मुंगेरमें सबसे बड़ा कारखाना खोला गया है जो अच्छी उन्नति कर रहा है। दक्षिण भारतमें तैया हांगकांग तथा बम्बई बंदरसे मैसोपोटामिया और पूर्व अफ्रीका भेजा जाता है क्योंकि उसकी ब अधिक माँग है।

खादके कारखाने—चाय और कहवेके बगीचोंमें खादकी सदैव बहुत बड़ी माँग करती है। देशकी खादके अतिरिक्त प्रति वर्ष लगभग १० हजार टन खाद विदेशसे भारत आती भारतके किसानोंके पास न तो वैसी उपजाऊ और मूल्यवान भूमि ही है और न महँगी खाद खरी लिये उनके पास पैसे ही हैं अतः वे बेचारे किसी प्रकार ताजी खादसे काम चलाते हैं। न और हड्डीकी खाद प्रायः २० हजार टन प्रति वर्ष भारतसे सीलोन और स्ट्रेट सेटलमेन्ट्स जा फॉस्फेट वाले हड्डीके चूरेसे कारखाने खाद बनाते हैं इसलिये वहाँ इसकी अच्छी माँग रहती है। भारत बड़े नगरोंके कसाईखानोंसे ब्लड मील (Blood meal) के नामसे सूखा खून भी विदेश है। इसी प्रकार अस्थि, अण्डी, मूँगफली आदि तेलहन नाजकी खली भी खादके रूपमें विदे

३४ अतिशय–

(१) केश तथा दाढी मूछ के बाल बढते नहीं, या असुन्दर रीति से नहीं बढते। (२) शरीर नीरोग रहता है। (३) उनके शरीरका रुधिर तथा मांस दुग्धकी तरह सुन्दर और स्वच्छ होता है, आदेय होता है, घिनौना नहीं लगता। (४) मुखमें कमलकी सी सुगंधि रहती है, अगल्य अथवा दुर्गंध नहीं होती। (५) आहार और नीहारको चर्मचक्षुवाले नहीं देखते, क्योंकि ये क्रियाएँ गुप्त की जाती हैं। (६) आकाश गत छत्र रहता है, अर्थात् सिद्धों का स्मरण अभेद रूपसे करते रहते हैं। (७) आकाश गत चमर युग्म शुद्ध, चरित्र का धर्म ऊंचा रहता है। (८) आकाश गत स्फटिकमय सिंहासन, उनका १३ वाँ गुणस्थान शोभित है। (९) पादपीठिका सहित ध्वजरूप तीर्थंकर नाम कर्मकी कीर्ति आकाशमें गूजती रहती है। (१०) प्रभु अशोकमय छायामें रहते हैं, कहीं जानेसे औरोंका शोक निवारण करते हैं। (११) मार्गमें चलते समय कांटेकी तरह तीक्ष्ण और पैने हठवादी विनीत हो जाते हैं। (१२) ऋतु अर्थात् समय अनुकूल तथा धर्मकाल हो जाता है। (१३) १२ योजन तक शान्तिमय वायु चलता है। (१४) ज्ञान धारा प्रवाहित होनेसे कर्म रजका अभाव हो जाता है। (१५) भगवान के समवसरणमें समभावका साम्राज्य छा जाता है। (१६) शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्शमें अनुकूलता और प्रतिकूलता रूप प्रकृति विरीति भाव आता रहता है। (१७) निश्चय और व्यवहार नय रूपी चमर ढुलते रहते हैं। (१८) प्रभा या अनन्तज्ञानप्रतिभारूप भामंडल पीठ पीछे या आत्माकी शोभा युक्त है। (१९) उनकी मधुर भाषा एक योजन तक सुनाई पड़ती है। (२०) स्त्री, पुरुष, पशु, पक्षी उनकी सांकेतिक अर्ध मागधी भाषाको अपनी भाषामें समझते हैं। (२१) गर्व लेकर आनेवाले लोग प्रभुकी वाणीसे न्याय लेकर निरहंकार हो जाते हैं। (२२) प्रभु जहां विचरते हैं वहांसे १०९ योजन तक और पास ईतियाँमेंसे कोई भी ईति (भय) नहीं होती। (२३) मनुष्य और तिर्यंच [illegible] [illegible] विरोध [illegible] देते हैं [illegible] नहीं [illegible] मारी [illegible] नहीं [illegible] [illegible] [illegible] प्रभुके [illegible] [illegible] [illegible] आवश्य

खेदज्ञ–

संसारके प्राणियों द्वारा अर्जन किए हुए मार्मिक दुःखविपाकको जानते हैं। कर्म विपाकसे उत्पन्न शारीरिक मानसिक क्लेशोंको प्रभु सदय होकर जानते तथा देखते हैं। उनको दुःखोंका ज्ञान करानेके अनन्तर प्राण, भूत, जीव और सत्वकी अशान्ति दूर करनेके लिए अहिंसा, सत्य, निस्पृह आदिका उपदेश करके संसारमें शान्तिकी स्थिति-स्थापना करते हैं। अतः खेदज्ञ हैं।

क्षेत्रज्ञ–

आकाशके अनन्त प्रदेशोंमें धर्म, अधर्म, जीव, काल और पुद्गलके अनन्त समूहको जाननेके कारण प्रभु क्षेत्रज्ञ भी हैं। क्योंकि लोक और अलोकके गुप्त और प्रगट सब भावों और विषयोंके ज्ञाता हैं। यथातथ्य स्व-स्वरूप और परस्वरूप जाननेसे आत्मज्ञ हैं। तथा इस प्रकार शरीर क्षेत्र में आत्मा या धर्म रूप सार जाननेसे, तथा स्त्रीके विषय दोष और उसके रमण और अनुरूप रहनेमें जो दोष हैं उसे जाननेके कारण क्षेत्रज्ञ हैं।

कुशल–

सत् और असत्को अलग करके बता देते हैं, आठ प्रकारके कर्मरूपी तीक्ष्ण कुशको काटनेमें कुशल हैं। निर्जराका पथ बतानेमें समर्थ हैं, धर्मोपदेश देनेमें मंगलप्रद हैं अत: कुशल भी हैं।

आशुप्रज्ञ–

आपका उपयोग अनन्त होनेसे आशुप्रज्ञ हैं, परन्तु वह उपयोग छद्मस्थों जैसा नहीं है। [वहतो कुछ देर सोच विचार करनेके पश्चात् जानता है, कार्माण वर्गणाओंद्वारा आत्म-स्वरूप पर पर्दा पड़ जाने के कारण उस कर्म सहित संसारी आत्मा की छद्मस्थ संज्ञा है। परन्तु भगवान् तो 'वियट्ट छउमाणं' इस दोषसे निवृत्त हैं]

महर्षिः–

अत्यन्त उग्र तपरूपी अनुष्ठान करनेसे, अनुकूल प्रतिकूल परीषह और उपसर्ग सहन करनेसे, नाना तितिक्षाओं को सहनेसे, तत्व वस्तुका वास्तविक रूपमें प्रकाश करनेसे सत्य वाणीका उच्चारण करनेसे महर्षि थे।

अतीत, अनागत वर्तमानका अनन्त स्वरूप जाननेकी दृष्टिसे अनन्तज्ञानी; तथा सामान्य अथवा विशेष ग्रहण करनेसे अनन्तदर्शी थे।

उनके असाध और अतुल बल का गायन मनुज-असुर और देव सब मिल कर करते थे। संसारकी दो आंखों द्वारा प्रत्यक्षतया सूक्ष्म और बादर पदार्थोंका ज्ञान भलीभांति करा देनेसे उनके प्रतिपादित धर्मको तथा उनकी धीरताको देख!

धर्म—

संसारके प्राणिओंका दुःखोंसे उद्धार करना उनका स्वभाव है अतः वह धर्म है तथा ज्ञान और क्रियाके भेदसे धर्म दो तरहका है।

"क्षमता, दया, सन्तोष, सरलता, उत्तम क्षमा, आदिक निहित पुरुषार्थको ही धर्म कहा है।"

"मनुने धैर्य रखना, शान्ति करना, अकिंचनवृत्ति रखना, इन्द्रिय दमन करना, अन्याके बुरे विचारोंसे हटा कर पवित्र करना, आत्मदोषका निग्रह करना, बुद्धि द्वारा मन, अन्य दुष्ट अनुसार निर्णय करना, निन्दा तथा निग्रह सत्य बोलना, आए हुए क्रोधको निष्फल करना, यह १० प्रकारका धर्म बताया है।"

धर्मके मार्गको पालनके पुरुषोंने देश काल, अवस्था, बुद्धि, शक्ति, आदि के अनुसार धर्मोपदेशको ही बोधप्रद कहा है।

इसके अतिरिक्त उनकी चरित्रमें निश्चलता धीरता देख! क्योंकि वे अपनी प्रतिज्ञामें सदैव दृढ रहते थे। संयम के अतिरिक्त वे किसीमें अनुरक्त न थे॥ ३॥

गुजराती अनुवाद—ज्ञातनन्दन ज्ञातपति महावीर प्रभु ३४ अतिशय तथा ३५ प्रकारना वाणी गुणे करी अलंकृत हता।

३४ अतिशय—(१) मस्तकना केश-दाढीमूछ तथा शरीरना वस्त्र अने नख वर्धित होय। (२) रोगोथी अने मेल, रज आदिथी निर्लेप शरीर होय। (३) मांस अने लोही स्वच्छ दूध जेवा उज्ज्वल अने मीठां होय। (४) श्वासोच्छ्वास कमल जेवा सुगन्धित होय। (५) प्रभुना आहार अने निहार चर्मचक्षुओथी अदृश्य होय, कारणके ते क्रियाओ गुप्त करवानां आवे छे। (६) आकाशमां धर्म चक्र चाले। (७) आकाशमां छत्र रहे। (८) आकाशमां श्वेतवर चामरो विंझाय। (९) आकाशना जेवा स्वच्छ स्फटिक सिंहासन पादपीठ सहित थई जवे। (१०) आकाशमां मनुष्यलोकोमां पहोंचे इन्द्र

ध्वज प्रभुनी आगल चाले। (११) अशोकवृक्ष थई आवे, त्यां जनाथी बीजाओना शोकनुं निवारण थाय। (१२) जरा पाछलना भागमां मस्तक प्रदेशे तेजोमंडल थई आवे, ते दशे दिशाओना अंधकारने दूर करे। (१३) पृथ्वी बहु सपाट अने रमणीय बनी जाय। (१४) कांटा ऊंधा थई जाय, तेनी माफक बहु हठवादी विनीत थई जाय, (१५) विपरीत ऋतु सुखस्पर्शी थई जाय, समय अनुकूल तथा धर्म माटे योग्य थई जाय। (१६) शीतल-सुखकर-सुगन्धयुक्तवायु एक योजन क्षेत्रमां वहे। अने सर्व प्रकारनी अशुचि दूर करे। (१७) सुगन्धि वृष्टि थाय तेथी आकाशनी रज अने भूमि ऊपरनी रेणु दबाई जाय, ज्ञानधारा वरसवाथी कर्म रज दूर थई जाय। (१८) रमणीय पंचवर्णं फूल प्रगटे। (१९) अमनोज्ञ (अशुभ) शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्ध उपशमे अर्थात् नाश पामे। (२०) मनोज्ञ शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध उत्पन्न थाय। (२१) चारे बाजुए बेठेली परिषद भगवान्‌नो योजनातिकनी स्वर बराबर श्रवण करी शके अने ते शब्दो श्रोताओने प्रिय लागे। (२२) प्रभु अर्धमागधी भाषामां धर्मदेशना आपे। (२३) आर्य अनार्य देशना मनुष्यो-पशुओ-पक्षीओ विगेरेने आ भाषा पोतानी भाषामां परिणमे, ते हितकर-सुखकर-आनन्दकर अने मोक्षदायी लागे। (२४) जन्मवेर, जातिवेर, शान्त थाय। (२५) भगवान्‌ने देखतां अन्य दर्शन-मताभिमानी हठ छोडी नम्र बने छे। (२६) प्रतिवादी निरुत्तर बने। (२७) प्रभु विचरे छे त्यांथी २५ योजन चारे दिशामां दुष्काल-उंदर-तीड विगेरेनो उपद्रव रहे नहि। (२८) महामारी मरकी प्लेग न होय। (२९) स्वचक्रनो भय नहीं थाय। (३०) पर लश्करनो भय न होय। (३१) अति वृष्टि न थाय। (३२) अनावृष्टि न थाय। (३३) दुकाल न पडे। (३४) उत्पातो अने व्याधिओ तुरत शमी जाय।

सत्यवाणीना ३५ गुण–

(१) भगवान्‌नी वाणी संस्कार—लक्षण युक्त होय। (२) बुलंद आवाज वाली वाणी। (३) सादी। (४) गंभीर। (५) पडछंदा युक्त। (६) सरल। (७) उपनीत रागत्व-श्रोताओ धारे के भगवान् मने उद्देशीनेज उपदेश आपे छे। (८) महार्थ—सूत्र थोडो अर्थ घणो। (९) पूर्वापर वाक्यनी अविरोधी। (१०) शिष्ट। (११) असंदिग्ध, (१२) वाणीमां–अर्थमां दूषण रहित। (१३) हृदयग्राही, (१४) देश कालने अनुकूल। (१५) तत्वनी

यथार्थ स्वरूप दर्शक। (१६) जे सम्बन्ध चाल्तो होय तेनी सिद्धि पुरतुंज कहेवुं ते। (१७) पद वाक्यनुं परस्पर सापेक्ष पणुं। (१८) इष्ट रीतिए नम्रनुं कहेवुं। (१९) अत्यन्त मधुर–सुस्वर। (२०) परना रहस्य विगेरेने प्रगट नहि करनारी। (२१) वस्तुना अर्थ तथा धर्म सहित। (२२) अर्थनो गलगट उठे एवां पदो सहित। (२३) पर निन्दा अने आत्मप्रशंसा रहित। (२४) कहेला गुणोना योगथी प्रशंसा करवा लायक। (२५) व्याकरणना दोष रहित। (२६) श्रोताओने पोताना विषयनो जवाब मळवाथी आश्चर्य अने वैराग्य उत्पन्न करनारी। (२७) अद्भुत। (२८) अत्यन्त विलम्ब रहित। (२९) मननी भ्रान्ति तथा वाक्य बोलवानी अशक्ति विगेरे दोष रहित। (३०) सर्व सुर–असुर–नर–अने तिर्यंच पोतानी भाषामां समजे तेवी। (३१) बीजा पुरुषोनी अपेक्षाए शिष्योने विषे विशेष बुद्धिने पेदा करनारी। (३२) पदो, वाक्यो स्पष्ट रीते समजाय तेवी चोक्खी। (३३) पराक्रमवाळी अनायासे वाणी प्रगटे जाय। (३५) कहेवा धारेला अर्थोनी सारी रीते सिद्धि थाय त्यां सुधी अविच्छिन्न वाग्धाराए बोल्या जवाय तेवी।

रौद्रम–

संसारना प्राणिओए संचय करेला नार्किक कर्मना दुःखविपाकने तेओ जाणे छे। कर्मना परिणामे उत्पन्न शारीरिक तथा मानसिक क्लेशोने प्रभु दयार्द्र बनीने जाणे छे तेमज देखे छे। तेमनां दुःखोनुं ज्ञान करावनारे तथा प्राण–भूत–जीव–सत्वनी अशान्ति दूर करवाने तेओ अहिंसा–सत्य–निस्पृह विगेरेनो उपदेश करीने संसारमां शान्तिनी स्थापना करे छे। तेथी भगवान् रौद्र छे।

हेमन्त–

आकाशना अनन्त प्रदेशोमां धर्म–अधर्म–जीव–काल अने पुद्गल अनन्त स्वरूपे तेओ जाणे छे। तेथी हेमन्त पण छे। अथवा लोक–अलोकना गुण अने प्रगट सर्व भाव अने [illegible] ज्ञान छे। [illegible] स्वरूप तथा परमात्मा [illegible] होवाथी [illegible] छे। आ नश्वर शरीर [illegible] तेमना [illegible] अथवा [illegible] होवाथी, तेमज [illegible] भिन्न दोष अने तेनां [illegible] थवाथी जे दोषो उत्पन्न थाय छे, तेना पण [illegible] होवाथी तेओ हेमन्त छे।

[illegible]–

[illegible] निज निज वर्णने वरे छे। [illegible] प्रकाश [illegible] थी [illegible]

कुशले करवामां कुशल छे । निर्वाणनो मार्ग बताववामां समर्थ छे, धर्मोपदेश देवामां मंगलप्रद छे ।

आशुप्रज्ञ–

तेओनो उपयोग अनन्त होवाथी आशुप्रज्ञ छे । परन्तु ते उपयोग छद्मस्थोना जेवो होतो नथी । [छद्मस्थ तो थोडो समय विचारणा कर्या बाद जाणे छे। कार्मण वर्गणाओ द्वारा आत्म स्वरूप पर पडदो पडतां कर्म सहित संसारी आत्माने छद्मस्थ कहे छे । परन्तु भगवान् तो "वियट्ट छउमाणं" ए दोष थी मुक्त छे ।

महर्षि–

अत्यन्त उग्र तपश्चर्या करवाथी अनुकूल प्रतिकूल परिषह तथा उपसर्ग सहन करवाथी नाना प्रकारना दुःखो सहवाथी सत्यस्वरूपनुं वास्तविक रूप प्रगट करवाथी, महावाणी बोलता होवाथी, तेओ महर्षि हता ।

भूत-भविष्य अने वर्तमानना अनन्त लक्षण आगमनी अपेक्षाए तेओ अनन्तज्ञानी तथा सामान्य अर्थनुं निरूपण करवाथी अनन्तदर्शी हता ।

तेमना अक्षय अने अतुल यशनुं गान मनुष्य-सुर-असुर विगेरे सौ कोई करता हता ।

ओवा अनुत्तर एवा श्रीमहावीरदेवना कहेला धर्मने तथा तेमनी धीरताने जाण अने देख ।

धर्म–

संसारना प्राणिओने दुःखमांथी उद्धार करवानो तेनो स्वभाव छे । धर्म अने क्रिया ए बे प्रकारनो धर्म छे । [illegible]-उत्तम क्षमा विगेरे पण धर्म कहेवाय छे । [illegible] वस्तु-अहिंसा [illegible] द्रव्य [illegible] [illegible] [illegible] छे ।

[illegible] अनुसार धर्मोपदेश [illegible] छे ।

[illegible]

त्वेन शरीरनामकर्म्मोदयजनितोपसंहारविस्ताराधीनत्वात् घटादिभाजनस्थप्रदीपवत् स्वदेहपरिमाणाः । "भोक्तारः" यद्यपि शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन रागादिविकल्पोपाधिरहितस्वात्मोत्थसुखामृतभोक्तारस्तथाऽप्यशुद्धनयेन तथाविधसुखामृताभावाच्छुभाशुभकर्मजनितसुखदुःखभोक्तृत्वाद्भोक्तारः । "संसारस्थाः" यद्यपि शुद्धनिश्चयनयेन निस्संसारनित्यानन्दैकस्वभावास्तथाप्यशुद्धनयेन द्रव्यक्षेत्रकालभावभवपञ्चप्रकारसंसारे तिष्ठन्तीति संसारस्थाः । "सिद्धाः" व्यवहारेण स्वात्मोपलब्धिलक्षणसिद्धत्वप्रतिपक्षभूतकर्मोदयेन यद्यप्यसिद्धास्तथापि निश्चयनयेनानन्तज्ञानानन्तगुणस्वभावत्वात् सिद्धाः । त एवंगुणविशिष्टा जीवाः । "विस्रसोर्द्ध्वगतिकाः ।" यद्यपि व्यवहारेण चतुर्गतिजनककर्म्मोदयवशेनोर्द्ध्वाधस्तिर्यग्गतिस्वभावास्तथापि निश्चयेन केवलज्ञानाद्यनन्तगुणावाप्तिलक्षणमोक्षगमनकाले विस्रसा स्वभावेनोर्द्ध्वगतिकाश्चेति । अत्र शुद्धाशुद्धनयद्वयविभागेन नयार्थो अप्युक्तः । आगमार्थः पुनः "अस्त्यात्माऽनादिबद्धः" इत्यादिप्रसिद्ध एव शुद्धनयाश्रितं जीवस्वरूपमुपादेयं शेषं च हेयम् । एवंविधा जीवास्त्रसन्त्युद्वेगं भयं प्राप्नुवन्ति यद्वा चरन्ति चेतस्ततो गच्छन्तीति त्रसाः । "चरिष्णु जंगमचरं त्रसमिंगं चराचरमित्यमरः ।" ते त्रसास्तु द्वित्रिचतु-पञ्चेन्द्रियभेदाच्चतुर्धा । तथा ये च स्थावरा पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिभेदात्पंचधा । तिष्ठन्तीति स्थावरा भूता सत्वाश्चापि, यथा च—

"प्राणा द्वित्रिचतु प्रोक्ता भूतास्तु तरव स्मृता ।
जीवा. पचेन्द्रिया. प्रोक्ता शेषा सत्वा उदीरिता ॥"

"स्थावरो जगमेतर इत्यमर ।" एते प्राणाना धारकत्वात्प्राणिनो भवन्ति । प्राणास्तु दशधा यथा—"पचेन्द्रियाणि त्रिविध बलं

एवं वृक्ष-वायु-पृथ्वी आदिमें जीव है यह सिद्ध किया है, और जैनदर्शनके प्राणभूत स्याद्वाद-सिद्धान्तका सम्यक् दिग्दर्शन कर दिखाया है ॥ ४ ॥

श्रीसुधर्मांचार्य वीर प्रभुके गुणों को प्रकट करते हैं !

भाषा-टीका—सर्वज्ञ-वीर भगवान्ने ऊर्ध्वलोक, मानवलोक, अधोलोक के सब जीवोंका स्वरूप इस भान्ति वर्णन करके बताया है कि-"जीव" यद्यपि जीवसमूह शुद्ध निश्चयनयसे आदि, मध्य और अन्त से रहित, अपने और परके गुणोंका प्रकाशक, उपाधिरहित और शुद्ध चैतन्य (ज्ञान) रूप निश्चय प्राणसे ही जीवित है, तथापि अशुद्ध- निश्चयनयसे अनादि कर्मबन्ध के वशमें जो अशुद्ध द्रव्यप्राण और भाव प्राण हैं उनमें जीवित रहने के कारण यह जीव है।

उपयोगमय-

यद्यपि शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे परिपूर्ण तथा निर्मल ज्ञान और दर्शन ही उपयोग हैं इसी से जीवसंज्ञा है, तो भी अशुद्ध-नयसे क्षायोपशमिकज्ञान और दर्शनसे बना हुआ है, इस लिए ज्ञानदर्शनोपयोगमय है।

अमूर्त-

यद्यपि व्यवहारनयसे यह जीव मूर्त कर्मों के अधीन होने से स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवाली मूर्तिके द्वारा रचित रहनेके कारण मूर्त है तथापि निश्चय नयसे अमूर्त, इन्द्रियोंसे अगोचर, शुद्धरूप स्वभावका धारक होने से अमूर्त है।

कर्ता-

यद्यपि जीव निश्चयनयकी दृष्टिसे क्रिया रहित, उपाधिरहित जाननेके स्वभावका धारक है। तथापि व्यवहारनयसे मन, वचन तथा कायके व्यापारको उत्पन्न करनेवाले कर्मोंसे युक्त होनेके कारण शुभ और अशुभ कर्मोंका करनेवाला है, अतः कर्ता है।

सदेह परिमाण-

यद्यपि जीव निश्चयनयसे [illegible] प्रमाण [illegible] असंख्य प्रदेशवाला है तथापि शरीर नाम कर्मके उदयसे [illegible] संकोच तथा विस्तारके अधीन होने से यह अपने [illegible] हुए शरीरकी बराबर अपने देहके परिमाण जितना है।

भावार्थ—"आठ प्रकारके कर्मरूपईन्धनको शुक्लध्यानकी आगसे जिसने जला दिया हो वह सिद्ध होता है, अथवा गत्यर्थक 'षिधु' धातुसे सिद्ध अर्थात् अपुनरावृत्ति की अपेक्षा जो निर्वृत्तिपुरीमें पहुंच गए हैं वह सिद्ध हैं, अथवा निष्पत्यर्थक 'षिधु' धातु द्वारा 'सिद्ध' यानी जिसने अपने अर्थको निष्पन्न किया है, और जो कृतकृत्य होगया हो, वह सिद्ध है; अथवा शास्त्रार्थक और मांगल्यार्थक 'षिधूञ्' धातुसे 'सिद्ध' यानी जो शासनकर्ता हो, अथवा जो मंगलत्वके स्वरूपका अनुभव कर्ता हो, या जो स्वयं मंगलरूप हो वह 'सिद्ध' है; अथवा नित्य धारण जिनकी स्थिति अविनाशी है, अथवा भव्य जीवोंको जिनके गुणसमूह उपलब्ध होने से प्रसिद्धि प्राप्त है, या जिन्होंने बांधा हुआ पुराना कर्म जला दिया है, जो निर्वृतिरूप महलके शिखरके ऊपर जा पहुंचा है, जो प्रसिद्ध है, अनुशासन करनेवाला है, कृतार्थ है, वह सिद्ध प्रभु हमारे लिए कृत मंगल है नमस्कार करने योग्य है, इसीलिए कि–वे अविनाशी-ज्ञान, दर्शन, सुख, शक्ति, आदिसे युक्त हैं और स्वविषय आनन्दोत्कर्ष के उत्पादक होनेसे भव्य जीवोंके ऊपर अप्रतिम उपकार करने से वे नमन करने योग्य हैं,।" यद्यपि जीव व्यवहार नयके कारण अपनी आत्माकी प्राप्ति रूप उपरोक्त सिद्धत्व युक्त है, और उसके प्रतिपक्षी कर्मोंके उदयसे असिद्ध है, तथापि निश्चय नयसे अनन्तज्ञान और अनन्तसुख स्वभावका धारक होनेसे सिद्ध है;

ऊर्ध्वगामी–

इन कहे हुए गुणोंका धारक जीव स्वभावसे ऊर्ध्वगमनकरनेवाला है, यानी व्यवहारसे चार गतियोंको पैदा करनेवाले कर्मोंके उदयसे ऊंचा, नीचा, तथा तिर्छा गमन करनेवाला है, तथापि निश्चयनयसे केवलज्ञान आदि अनन्त गुणोंकी प्राप्ति स्वरूप मोक्षमें जाना [illegible] स्वभावसे ऊर्ध्वगमन करने वाला है [illegible] नयकी [illegible] गमनमय [illegible] समाजमें हठ [illegible] अर्थात [illegible] है

[illegible]

प्रश्न–

[illegible]

सर्वज्ञ प्रभु श्रीवीरभगवाने ऊर्ध्वलोक अधोलोक अने तिर्छालोकना समस्त जीवोनुं स्वरूप आ रीते वर्णवेलुं छे।

जीव–

जो के जीव समूह शुद्ध निश्चय नयथी आदि-मध्य अने अन्त रहित, स्व तथा पर गुण प्रकाशक, उपाधि रहित, अने शुद्ध चैतन्य (ज्ञान) रूप निश्चय प्राणथी जीवित छे। तो पण अशुद्ध निश्चय नये अनादि कर्म बंधना कारणे जे अशुद्ध द्रव्य प्राण अने भाव प्राण छे तेनाथी जीवित रहेवाने कारणे जीव छे।

उपयोगमय–

जो के शुद्ध द्रव्यार्थिक नये जीव परिपूर्ण तथा निर्मल ज्ञान दर्शन मय छे, तो पण अशुद्ध नये क्षायोपशमिक ज्ञान दर्शन युक्त छे, तेथी जीव ज्ञानदर्शनोपयोगमयी छे।

अमूर्त–

व्यवहारनयथी आ जीव मूर्त कर्मोने वश होवा थी स्पर्श-रस-गंध-वर्ण वाळी मूर्तिथी रचित होवाना कारणे मूर्त छे। पण निश्चय नये अमूर्त, इन्द्रियोथी अगोचर शुद्धरूप स्वभावनो धारक होवाथी अमूर्त छे।

कर्ता–

जीव निश्चयनये क्रिया रहित, उपाधिरहित, जाणवानो स्वभावनो धारक छे, पण व्यवहार नये मन–वचन–कायना व्यापारने उत्पन्न करवावाळा कर्मोथी सहित होवाना कारणे शुभाशुभ कर्मनो कर्ता छे।

स्वदेह परिमाण—जीव निश्चय पूर्वक स्वभावथी उत्पन्न शुद्ध लोकाकाश समान छे, तेमज असंख्य प्रदेशोनो धारक छे, पण शरीर नामकर्मना उदये घडा विगेरे पात्रमां रहेला दीवानी माफक संकोच विकोचमय होवाना कारणे देहप्रमाण रहे छे।

भोक्ता—शुद्ध द्रव्यार्थिक नये जीव रागादि विकल्परूप उपाधिथी रहित छे तेमज निजात्मथी उत्पन्न अमृतनो भोक्ता छे पण अशुद्धनये ते सुखरूप अमृत पदार्थना अभावे शुभकर्मथी उत्पन्न सुख अने अशुभ कर्मथी उत्पन्न दुःखनो भोक्ता छे।

त्रस–कोई थी भय, त्रास, उद्वेग पामीने अथवा सतामणी पामता पोताना बचाव अर्थे जे अहीं तहीं हरी फरी के भागी शके छे, ते त्रस छे, तेना बेंद्रिय, तेंद्रिय, चौरिंद्रिय अने पंचेंद्रिय एवा चार भेद छे;

स्थावर–पृथ्वी-पाणी-अग्नि-वायु अने वनस्पति ए पांच स्थावरना भेद छे। तेओ पोताना पर आवी पडेलां संकटोमांथी बचवानो प्रयत्न करवामां सर्वथा अशक्त छे, घणीज ओछी समजवाळा छे, जन्म-मरण घणा करे छे; पृथ्वी-पाणी-अग्नि अने वायुना जीवो ४८ मिनिटमां १२८२४ वार जन्मे छे ने मरे छे, वनस्पतिमां निगोदना जीवो ६५५३६ वार जन्मे मरे छे, एक श्वासोश्वासमां ते एटला भव करे छे, आथी आ बधा स्थावर कहेवाय छे। आ दरेकमां जीव छे, अने ते केवा स्वरूपे छे ते नीचेनी हकीकते समजाशे ते तमामने शरीर छे, अने तेना शरीरने मनुष्यना शरीर साथे जुदी जुदी रीते सरखाववामां आवे छे।

पृथ्वीकाय—जेम मनुष्यने कांइ वागेल होय अने घा पडेल होय, ते रुझाता धीमे धीमे भराइ जाय छे, तेम खोदेली खाणो पण स्वयं भराइ जाय छे, जेम उघाडापगे चालनार मनुष्यना पगनुं तळिउं घसाय छे तेम वधतुं जाय छे, तेवीज रीते माणसो-पशुपक्षी तथा वाहनोनी आवजाव थवाथी पृथ्वी पण रोज घसाय छे, ने रोज वधवा पामे छे, जेम बाळक वधे छे तेम पर्वत पण धीमे धीमे नित्य वधे छे, माणसने लोढुं पकडवुं होयतो माणसने लोढा पासे जवुं पडे छे, त्यारे लोह चुंबक नामनो पत्थर पोताने स्थाने रहीने पोतानी चैतन्य शक्ति थी लोढाने पोतानी पासे खेंची ले छे, माणसना पेटमां पथरीनो रोग थाय छे ते सचेत पत्थर होवाथी नित्य वधे छे, माछलीना पेटमां रहेल मोती पण एक जातनो पत्थर छे, अने ते पण नित्य वधे छे, जेम माणसना शरीरमांना हाडकामां जीव होय छे, तेम पत्थरमां पण जीव होय छे।

अपकाय—जेम पक्षीना इंडामां रहेल प्रवाही पदार्थ पंचेन्द्रिय पक्षीना पिंड स्वरूपे छे तेम पाणीना जीवो पण ते [illegible] आकारना पिंड रूपे छे, मनुष्य [illegible] तिर्यंच गर्भ अवस्थामां [illegible] आत्मा [illegible] छे तेम पाणीमां पण [illegible] समजवा [illegible] मनुष्यने [illegible] छे [illegible] मनुष्यनुं शरीर [illegible] छे [illegible] तेम [illegible] मनुष्यनुं [illegible] छे [illegible] होय छे,

जेम मोगरा मरवाथी मनुष्यनुं शरीर पुष्ट थाय छे, अने न मळवाथी मुरझाई जाय छे, तेम वनस्पति पण खातर तथा पाणीनो योग्य मळवाथी ते विकास पामे छे, अने तेना अभावे ते मुरझाई जाय छे, जेम मनुष्य भाग ले छे, तेम वनस्पति पण भाग ले छे, जिसने खर्बन हवा लईने सारो वनस्पति ऑक्सीजन हवा बहार काढे छे, जेम केटलाक मनुष्यो मांसाहारी होय छे, तेम वनस्पति पण मांसीपतंग आदि नाना जीवोने गळीने पोताना पोषणनी वृत्ति पुरी करे छे, था कारण अने हवा द्वारा मांसाहार करे छे, चन्द्रमुखी पुष्प चन्द्रमानी सामे ने सूर्यमुखी पुष्प सूर्यनी सामे खीले छे, अने तेमना अस्त थवाथी बीडाई जाय छे।

तेनां भूत-सत्व पण छे, जेमके बे-त्रण-चार इन्द्रियवाळा जीवो प्राणी कहेवाय छे, वनस्पतिने भूत, पांच इंद्रियवाळाने 'जीव,' अने पृथ्वी-पाणी-अग्नि-वायुने 'सत्व' कहे छे, ए बधा जीवोमां १० द्रव्य प्राण होय छे, जेनी गणत्री नीचे मुजब नी छे।

पांच इन्द्रिय, मन, वचन, काय, आयुष्य, श्वासोश्वास, ए दश प्राण छे, आ प्राणधन सर्वे जीवोने अत्यन्त प्रिय छे।

स्थावरोमां जीव होवानु साबित थवाना पुष्ट कारणे चार्वाक-नास्तिक आदिनुं खंडन थई जाय छे, आ सर्वे जीवो द्रव्य दृष्टिए नित्य अने पर्याय दृष्टिए अनित्य छे, एम महावीर भगवाने फरमावेलुं छे, प्रभु पोते बेट समान डूबता सघळा जीवोने सहायक छे, तेमज तेमनु ज्ञान तत्वनो निर्णय करावनारने कारणे दीपक समान छे, दीपक समान स्वरूप-पररूपनु ज्ञान प्रगट थई जाय छे आ भगवाननो धर्म छे, के जे तेओए तुलनात्मक दृष्टि थी कहेलो छे। धर्मोपदेश करवानो तेमनो उद्देश लोकोने समभाव-शान्ति-अहिंसा-सत्यनु स्वरूप समजावीने परोपकार करवानो हतो, पण पोतानो उत्कर्ष प्रगट करवानो न हतो ॥ ४ ॥

मूल

से सव्वदंसी अभिभूय नाणी,
णिरामगंधे धिइमं ठियप्पा;
अणुत्तरे सव्वजगंसि विज्जं,
गंथा अतीते अभए अणाऊ ॥ ५ ॥

त्पादस्याभावाचेत्यर्थः । "दग्धे बीजे यथात्यन्तं प्रादुर्भवति नांकुरः। कर्मबीजे तथा दग्धे, नारोहति भवांकुर इति" ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ—[से] वह [सव्वदंसी] सब कुछ देखनेवाले भगवान् [अभिभूय] क्षायोपशमिक ज्ञानोंको जीतकर [णाणी] केवलज्ञान संयुक्त, [णिरामगंधे] निर्दोष चारित्र पालनेवाले [धिइम] धीरता समन्वित [ठिअप्पा] अपने आत्म-स्वरूपमें स्थिर-लय [सव्वजगंसि] अखिल विश्वमें [अणुत्तरे] सबसे उत्कृष्ट [विज्ज] पदार्थोंके जाननेवाले सर्वज्ञ-सर्वविषयज्ञ [गंथा] परिग्रह-ग्रन्थीसे [अतीते] रहित [अभए] सात भयोंसे रहित [अणाउ] और आयु रहित थे ॥ ५ ॥

भावार्थ—भगवान् महावीर स्वामी सामान्यरूपसे पदार्थोंके जाननेवाले तथा मति-श्रुति-अवधि और मन पर्यव इन चार क्षयोपशमजन्य ज्ञानोंको जीत कर केवलज्ञानसमुत्पन्न थे, और उन्होंने यह भी बताया कि ज्ञान और चारित्रसे ही मोक्ष होताहै अत प्रभुके ज्ञानका वर्णन करके चरित्रका वर्णन करते हैं। भगवानने मूलगुण और उत्तरगुणोंका पूर्णतासे पालन किया तथा अनेक विघ्न बाधा और परिग्रह पड़नेपर भी स्वचरित्रमें स्थिर रहे। भगवान् तीनों लोकमें सबसे श्रेष्ठ विद्वान् परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ और सातभयसे रहित तथा सब कर्मोंसे मुक्त थे॥५॥

भाषा-टीका—प्रभु २२ परिषह और शारीरिक मानसिक कष्ट तथा रागादिक एवं ज्ञानावरणीयादिक आन्तरिक शत्रुओंको जीत कर केवल ज्ञानी होगए। आपने ज्ञानको प्रमुख पद देकर संसारको कियाका भी भान कराया। और यह सिद्ध कर दिखाया कि ज्ञान और क्रिया इन दोनोंका आश्रय लेनेसे मोक्ष है। अत वे स्वयं आमगन्ध-मूल गुण और उत्तर गुणरूपी दोषोंसे रहित थे। आपने धीरतासे चरित्रका पालन किया, आत्माको शुक्लध्यानमें स्थिर किया। कर्मोंका सर्वथा नाश करनेके लिए निभृतात्मा होकर स्थित रहे, स्थिरता उनका प्रधान गुणथा। और ब्रह्मज्ञान-पाकर हाथ पर धरे आमलेकी तरह सब चराचरको ज्ञान दिया। क्योंकि अन्तर और बाह्य परिग्रहसे रहित होकर कर्म ग्रन्थका सर्वथा [illegible] मुक्त थे [illegible]। निर्ग्रन्थ थे। इसी कारण है कि [illegible] नामसे संसारमें [illegible] हैं। आप [illegible] उपदेश देते और लोगोंके

सं० टीका—'से इति' । भूति शब्दो वृद्धौ, सम्पदि, ऐश्वर्ये, भस्मनि वर्तते, भूतिप्रज्ञश्चात्र प्रवृद्धज्ञानोऽनन्तज्ञानवानिति, तथा च भूतौ भस्मनि कर्मणां भस्मसात्करणे इत्यर्थः कर्मक्षय इति यावत् प्रज्ञा यस्य स भूतिप्रज्ञः, तथा समस्तात्मैश्वर्योदयवान् च । "भूतिर्भस्मनि सम्पदि, इत्यमरः" । पुनस्तथा भूतिप्रज्ञो जगद्रक्षाविषयको भूतिप्रज्ञः । सर्वमंगलभूतिप्रज्ञ इत्यपि; । अनियतचारी=अप्रतिबन्धविहरमाणत्वात्, वायुरिवेतिभावः । ओघं संसारं तरीतुं शीलमस्येति ओघतरः । उत्पादव्ययोः ओघं परम्परां तरतीति सः । "ओघो वेगे जलस्य च । वृन्दे परम्परायां च, द्रुतनृत्योपदेशयोरिति" मेदिनी । अथवा कर्मणामोघः समूहस्तं तरतीति सः । "ओघो वृन्देऽम्भसां रय इत्यमरः" । धीर्बुद्धिस्तया राजत इति धीरः,=परिषहोपसर्गेऽक्षोभ्यो दृढो वेति धीरः । "धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञ इत्यमरः ।" अनन्तचक्षुर्ज्ञानं तत्केवलज्ञानमेव तदेव चक्षुर्भूतः सोऽनन्तचक्षुरिति । यथा सूर्योऽनुत्तरपुत्कृष्ट सर्वतोऽधिकं तपति न तस्मादधिकमारे कश्चनास्ति, तथैव भगवानपि ज्ञानेन सर्वोत्कृष्ट । पुन कथंभूतो हि सूर्यो, विशेषेण रोचते दीप्तिमान्, प्रकाशकाधिकत्वात्, इन्द्रोऽग्नि यथा तमोऽन्धकार-दूरीकृत्य प्रकाशयति, एवमेवापि भगवानज्ञानतमोऽपहृत्य यथार्थस्वरूपप्रकाशकत्वात् । "विरोचन इत्यत्र सूर्य इति, विरोचन सूर्योऽग्निश्चाधारश्च कर्मणा [illegible] अद्वर्यक [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

उसी तरह महावीर भगवान्‌भी ज्ञानकी अनन्तताकी अपेक्षा सर्वोत्कृष्ट थे। उस ज्ञानसे भगवान् जनताके अज्ञानांधकारको अपहरण करके यथार्थ रीतिसे ज्ञानका आविर्भाव-प्रकट करनेवालोंमेंसे थे । प्रभुने अग्निकी तरह कर्म रूप ईंधनको भी जलाकर अनन्त संसारकी अज्ञान आत्माओंको प्रकट रीतिसे परिशुद्ध किया। और सूर्यकी सदृश भगवान् महावीर प्रभु अखिल विश्वमें अद्वितीय प्रसिद्धि प्राप्त महापुरुष थे। अधिकतर संसारमें उनदिनों प्रभुकी ज्ञान-कान्ति ही सब ओर चमक रही थी ॥ ६ ॥

गुजराती अनुवाद—वीर परमात्मानुं ज्ञान चोथी भूमिकाथी वधीने अनन्तताने प्राप्त थयुं, कर्मोनो क्षय थवाथी भगवान् अनन्तज्ञानवाळा थया, त्यारे संसारना मगळ समान तेमज रक्षक तेओ थया, वायु समान अप्रतिबंध विहारी, संसार समुद्रने तारनार भगवान् हता, बीजाओने उपदेश दान करीने जन्म मरणथी मुक्त करावनार हता, परिषह तेमज उपसर्ग सहती वखते आत्मने कोई पण प्रकारनो क्षोभ न थवाना कारणे धीरजवान्, अनन्तज्ञानरूप चक्षुवाळा, तथा सूर्य जेम सर्वथी अधिक तपे छे, तेम प्रभु ज्ञाने करी सर्वोत्तम छे, विशेषमां अग्नि जेम मळगवाथी प्रकाश करे तथा इन्द्रनी पेठे अन्धकारने दूर करी प्रकाश करे छे, तेम श्रीमहावीर देव पण अज्ञानरूप अन्धकार दूर करी प्रकाश करे छे, अग्निनी माफक कर्मरूप ईंधणने बाळी अनन्त संसारना अज्ञान आत्माओने प्रगट रीते परिशुद्ध कर्या, अने सूर्यनी पेठे प्रभु अखिल विश्वमां अद्वितीय प्रसिद्धिने पामेल महापुरुष हता, ते दिवसोमां प्रभुनी ज्ञान-कान्ति अधिकतर प्रकाशती हती ॥ ६ ॥

मूल

अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं,
णेया मुणी कासव आसुपण्णे;
इंदेव देवाण महाणुभावे,
सहस्सणेता दिवि णं विसिट्ठे ॥ ७ ॥

संस्कृतच्छाया

अनुत्तरं धर्ममिमं जिनानां नेता मुनिः काश्यप आशुप्रज्ञः ।
इन्द्र इव देवानां महानुभावः सहस्रनेता दिवि विशिष्टः ॥ ७ ॥

न प्रतिहन्यते वेति, "बुद्धिर्मनीषा धिषणा धीः प्रज्ञेत्यमरः" । अथवा तस्य बुद्धि केवलज्ञानाख्या सा साद्यनन्ता—साद्यपर्य्यवसाना कालतो, द्रव्यक्षेत्रभावापेक्षयाऽप्यनन्ता तयाऽक्षयः, यथा सागरो महोदधिः स्वयंभूरमणः समुद्रः स इवानन्तपारः । यथासौ विस्तीर्णो गंभीरज-लोऽक्षोभ्यस्तथैव तस्य भगवतो विस्तीर्णा प्रज्ञाऽनन्तप्रज्ञा, स्वयंभूरमन-समुद्रादनन्तगुणितो गंभीरोऽक्षोभ्यश्च, अनाविलोऽकलुषजलः, "कलु-षोऽनच्छ आविल इत्यमर" । नाविलोऽनाविलो निर्मलस्तथैव कर्म-लेशाभावादकलुषज्ञानो निर्मलज्ञान इति । न कषायी-अकषायी ज्ञानावरणीयादिकर्म्मबन्धनवियुक्तत्वात् । मुक्तःकर्मरहितोऽपुनरावृत्ति प्राप्तः । सर्वलोके पूज्यत्वेऽपि, निरुद्रोधान्तरायक्षयेऽपि निरवद्यभिक्षा-मात्रोपजीवित्वाद्भिक्षुः । पुनश्च स ज्ञातृपुत्रीयो महावीरो भगवान् दीप्तिमान्, शक्र इव देवाधिपतिरिव कान्तिमानिति, "शक्र इन्द्रः सुना-सीरः शतक्रतुरिति धनञ्जय " । "जिष्णुर्लेखर्षभ शक्र इत्यमरः" ॥ ८॥

अन्वयार्थ—[से] वे भगवान् महावीर [पन्नया] बुद्धिकी अपेक्षा अनन्तपारवाले तथा [अणाइले] पवित्र जलसे भरपूर [महोदहीवावि] स्वय-म्भूरमण समुद्रकी तरह [अक्खयसायरे] अक्षीण समुद्र थे तथा [अकसाइ] चार कषायसे रहित [मुक्के] आठ कर्मोंसे रहित [देवाहिवइ] असंख्य देवोंके अधिपति [सक्केव] इन्द्रकी तरह [जुईमं] दीप्तिमान्-चमकीले थे ॥ ८ ॥

भावार्थ—भगवानको किसी अन्य पदार्थसे उपमा न दी जा सकनेके कारण समुद्रसे हि एक देशीय उपमा दी गई है । अर्थात् जिसप्रकार स्वयंभूर-मणसमुद्र अनन्तपार युक्त है उसी प्रकार भगवान् भी द्रव्य क्षेत्र-काल और भावकी अपेक्षा अनन्त ज्ञानवान् थे, समुद्रके निर्मल जलके समान उनका ज्ञान भी स्पष्ट और आवरण रहित था, इसी प्रकार कषायसे रहित तथा आठ कर्मोंके बंधसे मुक्त थे, जैसे इन्द्रका प्रभाव देवोंपर होताहै उसी प्रकार प्रभुका प्रभाव भी प्राणीमात्र पर था ॥ ८ ॥

सं० टीका—स इति, वीर्यान्तरायस्य निःशेषतः क्षीणत्वात् स भगवान् वीरो वीर्येणौरसेन धृतसंहननादिबलेन प्रतिपूर्णवीर्यः, अनन्तशक्तिमानित्यर्थः । अथवोत्कर्षवत्तया प्रतिपूर्णप्रभाववान् अथवा सर्वशक्तिमान् । "सवीर्यमतिशक्तिभाक्" इति । "वीर्यं बले प्रभावे चेत्यमरः" । नगानां पर्वतानां मध्ये यथा, "शैलवृक्षौ नगावगावित्यमरः" "नग. शिलोच्चयोऽद्रिश्च शिखरीति धनंजयः" । सुदर्शनो मेरुः केवलकल्प्यजंम्बूद्वीपमध्ये श्रेष्ठस्तथैव गुणैर्भगवान् श्रेष्ठः । यथा सुरालयः स्वर्गस्तन्निवासिनां देवानां मुदाकरो हर्षकर आनन्दजनको मनोऽनोकूलवर्णगंधरसस्पर्शप्रभावादिगुणै राजते । एवं भगवानप्यनन्तगुणैः शोभते, विराजतेऽनेकैर्गुणैरुपेतो भगवान् वीर इति ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ—[से] वे भगवान् [वीरिए] बल-वीर्यसे [पडिपुण्णवीरिए] प्रतिपूर्ण शक्तिवाले थे, तथा [वा] जिसप्रकार [सुदंसणे] सुमेरु पर्वत [णगसव्वसेट्ठे] सब पहाडोंमें अवलोकनीय और महान् एवं श्रेष्ठ है, उसी प्रकार महावीर प्रभु भी सर्वश्रेष्ठ थे, और सुमेरु पर्वत जिसप्रकार [सुरालए-वासिमुदागरे] देवोंको प्रसन्नता उत्पादक होता है उसी प्रकार भगवान् सब प्राणीवर्गकेलिए हर्षदायक थे, तथा जैसे सुमेरु [णेगगुणोववेए] अनेक गुणोंसे शोभित है वैसेही भगवान् भी अनन्त उत्तमोत्तम गुणोंसे समलंकृत थे ॥ ९ ॥

भावार्थ—भगवान्का वीर्यान्तराय कर्म्म बिल्कुल नष्ट हो गया था, अतएव उनमें अनन्तवीर्य-अनन्त बलका प्रादुर्भाव हो गया था, जैसे सुमेरु-पर्वत सब पहाडोंमें श्रेष्ठ है उच है उसी प्रकार भगवान् भी शक्ति आदि गुणोंमें उच और सर्वश्रेष्ठ थे । तथा जिस प्रकार स्वर्ग देवोंकेलिए हर्षोत्पादक है उसी प्रकार सुमेरु भी हर्ष जनक है वैसे ही भगवान् भी प्राणीमात्रकेलिए हर्षको उत्पन्न करनेवाले थे । सुमेरु जैसे अनेक गुणोंसे—सुनहरी रंग और चन्दनादि गन्ध तथा उत्तम फलोंसे शोभित होता है, भगवान् भी ज्ञान-शक्ति-सुखादि गुणोंसे विराजमान थे ॥ ९ ॥

भाषा-टीका—वीर्यान्तरायका सर्वथा क्षय होनेसे भगवान् अनन्त शक्तिमान् और धैर्य्य, शौर्य्य, सहिष्णुतादि शारीरिक बलसे बलिष्ठ थे,

जाम्बूनदं-वैडूर्यं चेति भेदात् । स किं भूतः, पण्डकवैजयन्तः=पण्डकवनं शिरसि व्यवस्थितं, वैजयन्तीकल्पं पताकाभूतं यस्य स तथोक्तः। "पताका वैजयन्ती स्यात्केतनं ध्वजमस्त्रियामित्यमरः" । असौ मेरुर्नवनवतिसहस्रे योजने ऊर्ध्वोच्छ्रितः=भूतलादुपरि प्रवृद्ध उन्नतो वा "उच्चप्रांशून्नतोदग्रोच्छ्रितास्तुङ्ग" इति, "जातोन्नद्ध प्रवृद्धाः स्युरुच्छ्रिता इति चामरः" । अधः=सुमेरोरधस्तात्प्रदेशे एकं सहस्रं योजनमवगाढ इत्यर्थः । एकसहस्रोनलक्षयोजनं पृथिवीत ऊर्ध्वं, सहस्रमेकं च योजनं भूमाविति भाव. ॥ १० ॥

अन्वयार्थ—[से] वह सुमेरु पर्वत [सयं सहस्साण] एक लाख [जोयणाणं] योजनका है, [तिकंडगे] उसके तीन भाग हैं, [पंडगवेजयंते] पाण्डुक वन जिसकी ध्वजाके समान है, तथा [णवणवते] ९९ निनानवे [सहस्से] हजार [जोयणे] योजन [उद्धुस्सिते] ऊंचा है, और [एगं] एक [सहस्से] हजार योजन [हेट्ठ] बुनियादमें नीचा है ॥ १० ॥

भावार्थ—इस गाथामें भगवानकी उपमा भूत सुमेरुगिरिका वर्णन किया है, सुमेरु एक लाख योजन ऊंचा है, निनानवे हजार योजन जमीनसे ऊपर तथा एक हजार योजन जमीनमें है, इसके तीन काण्ड-भाग हैं, उन तीन कण्डिकाओंमें सबसे ऊपरकी कण्डिका पर पाण्डुक वन है । और मानो वह ध्वजाकी तरह जान पड़ता है, जिसप्रकार यह सुमेरु पर्वत तीनों लोकोंमें व्याप्त है उसी भांति भगवानके भी ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि गुण समस्त लोकालोकमें व्याप्त हैं ॥ १० ॥

भाषा-टीका—यह सुमेरु पर्वत ऊंचाईमें एक लाख योजन है, जिसके तीन काण्ड-भाग हैं । जिनके क्रमसे भौम-जाम्बूनद-वैडूर्य नाम हैं । इस पर पण्डकवन उंचाईमें सबसे अधिक होनेके कारण सुन्दर ध्वजाकी तरह उसकी सुशोभाको और भी बढ़ाकर मानो चार चांद लगा रहा है । जिस मेरुकी जड़ जमीनमें १००० योजन तक चली गई है। और वह ९९००० योजन पृथ्वीके ऊपर आकाशमें [illegible] तरह [illegible] है । उसके तीनों भाग तीनों [illegible] धारण किए हुए हैं । इसी तरह प्रभु [illegible] हुए तीनों लोक

नितम्बदेशो मध्यभाग इत्यर्थः । "मेखला खड्गबन्धे स्यात्काञ्ची शैल-नितम्बयोरिति मेदिनीकोशः" । नन्दनवनमायाति । तथा द्विषष्टि-योजनसहस्राण्यधिकान्यतिक्रम्य सौमनसवनम् । ततः षट् त्रिंशत्सह-स्राण्यारुह्योल्लंघ्य शिखरे पण्डकवनमिति मेरोश्चत्वारि वनानि । यस्मिन् मेरौ महेन्द्रा त्रिदशालयात् स्वर्गात्समागत्य रमणीयतमशब्दादिगुणेन रतिं रमणक्रीडां वेदयन्त्यनुभवन्ति । अतश्चतुर्नन्दनवनाद्युपेतो विचित्रक्रीडास्थलसमन्वितः स मेरुः ॥ ११ ॥

अन्वयार्थ—[से] वह सुमेरु [णभे] आकाश को [पुट्ठे] छूकर [चिट्ठइ] ठहरा हुआ है, तथा [भूमिवट्ठिए] भूमिको छूकर स्थित है, [जं] जिसकी [सूरिया] सूर्य [अणुपरिवट्टयंति] प्रदक्षिणा करते हैं, और जो [हेम-वण्णे] सोनेके समान परम कान्ति युक्त है, जिसमें [बहु] बहुत अर्थात् चार [नंदणे] नन्दनादि वन हैं [जंसी] तथा जिसमें [महिंदा] महेन्द्र आकर [रतिं] सुखका [वेदयती] अनुभव करते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—वह सुमेरु पर्वत ऊपरके भागमें आकाशको व्याप्त करके तथा नीचे भूमिको स्पर्श करके स्थित है, इसलिए वह ऊर्ध्वलोक-अधोलोक और तिर्यक् लोकको स्पर्श करता है। ज्योतिष्क विमान उसकी प्रदक्षिणा करते हैं। उसका रंग सुवर्णकी तरह पीला है। उसके ऊपर चार वन हैं; समान भूमिमें भद्रशाल वन है, उसके पांचसो योजन ऊपर नन्दन वन है, उसके बासठ हजार योजन ऊपर सौमनस वन है, उससे छत्तिस हजार योजन ऊपर पाण्डुक वन है, इस प्रकार वह अनेक क्रीडास्थलोंसे युक्त है, और उसमें देव तथा देवेन्द्र आकर रति-क्रीडाका अनुभव करते हैं ॥ ११ ॥

भाषा-टीका—उस सुमेरु पर्वतने ऊर्ध्व लोक-अधोलोक और मनुष्य-लोक इस प्रकार तीनों लोकोंके आकाशको छू लिया है। जिसकी तराईकी जगह सूर्य चांद तथा ग्रहगण चारों ओर परिक्रमा देते रहते हैं। तब वह तपे हुए सोनेकी तरह चमचमाट करने लगता है। उसके चारों ओर के बहुतसे वनोंमें चार मुख्य सुन्दर वन हैं। और प्रथम समतल भूमि पर भद्रशाल वन है। उस जगहसे ५०० योजन ऊपर जानेसे मानो उसकी तराईकि

अने औषधिओए करी देदीप्यमान छे, तेम श्री वीर भगवान्नुं अनेकान्त दर्शन परम सुंदर अने मनोहर छे । जेनी अकाश लंबमानता प्रसिद्ध छे। जेनी गौतम जेवा दार्शनिकोए पण प्रशंसा करेली छे। ते दर्शननुं सुन्दर वर्ण अर्थात् शब्दोमां निर्माण थयुं छे। तथा ते सर्व दर्शनोमां प्रधान अने सर्वोत्तम छे। साधारण तथा अनुमर अल्प मनुष्योने माटे अगम्य तथा अति दुरारोह छे। जेनी २८ लब्धिरूप औषधिओनी चमक सहुथी विलक्षण छे। के जे धर्मनी प्रभावना करवामां उपयोगमां लाववामां आवे छे। तेनाथी दुष्कर रोग जडमूळथी नष्ट थईने शान्त थई जाय छे ॥ १२ ॥

मूल

महीइ मज्झंमि ठिते णगिंदे,
पन्नायते सूरियसुद्धलेस्से;
एवं सिरीए उ स भूरियण्णे,
मणोरमे जोयइ अच्चिमाली ॥ १३ ॥

संस्कृतच्छाया

मह्यां मध्ये स्थितो नगेन्द्रः, प्रज्ञायते सूर्य्यवच्छुद्धलेश्यः।
एवं श्रिया तु स भूरिवर्णः, मनोरमो द्योतयत्यर्चिमाली ॥१३॥

सं० टीका—मह्यां मध्यदेशेऽन्तर्भागे यो जम्बूद्वीपमध्यसापि बहुमध्यप्रदेशे स नगेन्द्रः स्थित । पुनश्च सौमनस, विद्युत्प्रभ, गन्धमादन, माल्यवंतदंष्ट्रापर्वतचतुष्टयोपशोभितः समभूभागे दशसहस्रयोजनविस्तीर्णः, शिरसि सहस्रमेकमधस्तादपि दशसहस्राणि नवति योजनानि योजनैकदेशभागैर्दशभिर्भागैरधिकानि विस्तीर्णश्चत्वारिंशद्योजनोच्छ्रितचूडोपशोभितो नगेन्द्रः पर्वतप्रधानो मेरु । प्रकर्षवत्तया जगति सूर्यवच्छुद्धलेश्यो निर्मलकान्ति सूर्यसमप्रभ इति । एवमनन्तरोक्तया श्रिया तु [illegible]ष्टतरया कान्त्या स मेरुर्भूरिवर्णोऽनेकवर्णोऽनेकरगाद्युपेतः

भाषा-टीका—जिसमें राग, द्वेषका त्याग हो और ज्ञान पूर्वक त्याग, वैराग्य, संयम, स्वाभिमान, सहानुभूति आदि गुण पाए जायँ तथा मानव जीवनको उन्नत बनानेकेलिए और संसारमें उत्कृष्ट धर्मको प्रकट करनेके लिए प्रभुने उपदेश किया, जो कि-अभेद रूपमें था, और वह धर्म प्राणी मात्रके लिए कहा था। इसकी स्वयमेव सिद्धिकेलिए उत्कृष्ट ध्यानका आश्रय लिया; उस ध्यानके प्रबल प्रतापसे उस पावन पुरुषको फलस्वरूप केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। इसके अनन्तर भी मन, वचन, कायके योगोंका निरोधन करनेके कालमें सूक्ष्मकाययोगको रोककर शुक्लध्यानके तीसरे पदको प्राप्त करना आरम्भ किया; जिस स्थितिमें मन और वचनके व्यापारको रोक दिया जाता है तथा काययोगका भी आधा भाग रुक जाता है। यह शुक्लध्यानका तीसरा चरण तेरहवें गुणस्थानपर वर्तमान सूक्ष्म किया रूप होजाता है।

और जिस स्थितिमें मन, वचन, कायकी अप्रतिपाति रूप निवृत्ति होती है वह शुक्लध्यानका चौथा पाद है। अर्थात् कर्मरहित केवलज्ञानरूपी सूर्यसे पदार्थोंका प्रकाश करनेवाले सर्वज्ञ भगवान् जब अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु बाकी रह जाता है तब सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति नामक शुक्लध्यानके योग्य बन जाते हैं, उस समयकी चेष्टा अचिन्त्य होती है, बादरकाययोगमें स्थिति करके बादरवचनयोग और बादरमनोयोगको वे सूक्ष्मतम करते हैं, पुनः भगवान् काययोगके अतिरिक्त वचनयोग मनोयोगकी स्थिति करके बादरकाययोगसूक्ष्म करते हैं, तत्पश्चात् सूक्ष्मकाययोगमें स्थिति करके क्षणमात्रमें उसी समय वचनयोग और मनोयोग इन दोनोंका सम्यक् प्रकारसे निग्रह करते हैं तब यह सूक्ष्म क्रिया ध्यानको साक्षात् ध्यानके करने योग्य बना लेती हैं और वे वहां एक सूक्ष्म काययोगमें स्थित होकर उसका ध्यान करते हैं। इस तरह प्रभुका यह सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति ध्यान है।

और अयोग गुणस्थानके उपान्त्य अर्थात् अंत समयके प्रथम समयमें देवाधिदेवके मुक्तिरूपी लक्ष्मीकी प्रतिबन्धक कर्मोंकी प्रकृतियां शीघ्रमेव नष्ट होजाती हैं। भगवान अयोगी परमेष्ठीको उसी अयोगगुणस्थानके उपान्त्य समयमें साक्षात् रूप और निष्कम्प समुच्छिन्न क्रिया नामक चौथा शुक्ल ध्यान प्रकट हो जाता है।

भगवानका यह प्रशस्त और शुक्लसे भी अधिक शुक्ल ध्यान है। लेश्याकी दृष्टि से महान शुक्ललेश्य है। उनका आत्मामें पुण्य पापको क्षिप्त करके जब अपने

तेजोलेश्या-

यह पुरुष समदृष्टि होता है, मयिकमायामें द्वेष नहीं रखता, औरोंके कल्याण और अहितको सोचता है, अपने बुद्धि बलसे युक्त और अनुभव ज्ञान कर लेता है, किसी अन्यकी शोचनीय दशा पर उसे दया आजाती है, चातुर्यमय पूर्ण और अनिन्द्य व्यवहार है, ये पीतलेश्याके लक्षण हैं ।

पद्मलेश्या

कर्म्मोकी निर्जरा करके पवित्र होनेकी प्रबल इच्छा हो, सुपात्रोंमें सात्विक दान वितरण करके सहजानन्द लूटता हो, जिसका अन्तर और बाह्य अत्यन्त शुद्ध और सरल हो, आत्मामें सदैव विनय और नम्रता रहती हो, शत्रुओंका प्रेमसे आदर करता हो, आत्म ज्ञानको उदयमें लाना ही जिसका ध्येयहो, सच्चरित्र पालक साधु हो तो समझो कि इसने नीति युक्त किया है, यह पद्मलेश्याका लक्षण है ।

शुक्ललेश्या

अभिमानका लेश तक न हो, अपने चारित्रका फल मागनेकी अभिलाषासे निदान न करता हो, पक्षपातका अत्यन्त अभाव हो, सम्यग्ज्ञानकी पूर्णता हो, रागद्वेषका अत्यन्ताभाव हो, समाधि और अध्यात्मिकतामें स्थायी भाव हो, आत्मि-मयता हो, ये लक्षण शुक्ललेश्याके हैं; ।

तेजोलेश्या, पद्म और शुक्ल ये तीन प्रशस्त लेश्या हैं, क्रमसे संवेगको उत्तम रीतिसे बढानेमें सहायिका हैं,

इन्हें उदाहरणसे समझाते हैं,

चोरोंका एक समुदाय किसी ग्रामको लूट कर भाग गया, तब उस बस्तीके लोकभी उनसे बदला लेनेकी इच्छासे अपने समुदायको सगठित बनाकर चले आ रहे थे उनमें छ आदमी अलग २ छ प्रकृतिके थे । रस्तेमें चलते २ पहले ने यह कहा कि—

[१] हम सब वहा जाकर सारे ग्रामके जीवोंको मार देंगे, उनकी पली हुई चिडिया तकको भी न छोडेंगे ।

[२] दूसरेने कहा हम उनके पशु पक्षियोंको कुछ न कहेंगे ।

[३] उनकी स्त्रियोंको कुछभी कष्ट न देंगे । क्योंकि औरोंकी बहु एं जैसी ही होती हैं ।

तेजो, पद्म अने शुक्ल ए त्रण प्रशस्त लेश्या छे, क्रमे करीने संवेगने उत्तरोत्तर वधारवामां सहायरूप छे।

लेश्याओने उदाहरणथी समजावे छे—

चोरोनो एक समुदाय कोई गामने लुटीने चाल्यो गयो त्यारे ते गामना लोको तेनो बदलो लेवानी इच्छाए संगठित बनीने चाल्या जाय छे। ते मां छ माणसो जुदी जुदी छ प्रकृति ना हता, रस्तामां चालता चालता पहेलाए कह्युं के—

(१) आपणे बधा त्यां जईने आखा गामना जीवोनो नाश करी नाखीए, तेमना पाळेला पशुओने पण नहि छोडीए।

(२) बीजाए कह्युं के आपणे तेमना पशु पक्षिओने कई ईजा नहि करीए।

(३) त्रीजाए कह्युं के आपणे तेमनी स्त्रीओने कोई पण जातनुं कष्ट नहि आपिए। कारणके अन्यनी वहु दीकरीओ आपणी वहु दीकरीओ जेवी छे।

(४) चोथाए कह्युं के पुरुषोमां पण जेना हाथमां शस्त्र होय तेनेज मारवा जोइए, निःशस्त्र शत्रुने मारवा नीति विरुद्ध छे।

(५) पांचमाए कह्युं के शस्त्रधारिओमां पण जेओ आपणा पर आक्रमण करे तेनेज मारवा।

(६) छठ्ठाए कह्युं के शत्रु सिवाय भूलथी पण कोई निरपराधीने न मराय।

आ रीते जुदा जुदा विचारो जुदी जुदी लेश्याओ द्वारा थाय छे। अनुकंपे पवित्र विचारो द्वारा जे कर्मरूपी शत्रु सिवाय बीजा बधानी रक्षा करे तेनुं मत सर्वमां प्रधान अने उत्तम छे।

आ रीते भगवान वीरप्रभुनुं पण शुक्ललेश्या युक्त ध्यान छे। जेमां आत्माना अन्तरंग भाव स्वच्छ होय छे तेमनुं पवित्र ध्यान शंखना पेठे उज्वळ वर्णेलुं छे। आ रीते जगत जीवोना हितार्थ शुक्ल ध्याननो उपदेश पण वीर प्रभुए करेल छे॥१६

मूल

अणुत्तरग्गं परमं महेसी,
असेसकम्मं स विसोहइत्ता।
सिद्धिं गते साइमणंतपत्ते,
नाणेण सीलेण य दंसणेण ॥ १७ ॥

लोकके अग्रभागमें [गते] जा विराजे, [साद्यनंत] और आदि-अनन्त, तथा [परमं] उत्तम [सिद्धिं] मोक्षको [नाणेण] ज्ञान [सीलेण] चरित्र [य] और [दंसणेण] दर्शनके द्वारा प्राप्त हुए ॥ १७ ॥

भावार्थ—भगवान्ने क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन और क्षायिकचारित्र द्वारा सर्वोत्तम लोकाग्रभागमें धारण करनेवाली मुक्तिको सकल कर्मोंका अन्त करके उसे पाया, वह मुक्ति सादि अनन्त है, कई लोग मोक्षसे वापिस आना मानते हैं, किन्तु वह युक्ति संगत नहीं है, क्योंकि संसारमें रुलानेवाले राग-द्वेष-क्रोध-मान-मायादि विकार हैं जबतक ये विकार हैं तबतक मोक्ष नहीं, और शुद्धात्मामें कोई विकार नहीं है। अतः विकार रहित आत्मा संसारमें क्योंकर पुनरावर्तन कर सकता है? यदि उसमें रागादिका सद्भाव मानाजाय तो वह मोक्ष नहीं, यदि मोक्ष होनेपर पुनः अवतरित होते हों तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि विकारोंको विकारही पैदा कर सकते हैं, जब शुद्धात्मा निर्विकार है तो विकारकी उत्पत्ति क्योंकर हो सकती है ॥१७॥

भाषा-टीका—भगवान् शैलेशी अवस्थामें शुक्लध्यानके चतुर्थ भेदको करनेके अनन्तर आदि अनन्त लोकाग्र अपुनरावृत्ति धाममें आ विराजे। लोकके अग्रभागमें अवस्थित होनेसे वह परमप्रधान है, उसे उन गम्भीर-महर्षि ने वेदनी [illegible] ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मोंका विशोधन करके (वह भी अपने निजी पुरुषार्थ से) फिर ज्ञान, दर्शन चारित्र के द्वारा सिद्धि गति मोक्षको पाया।

आत्मा सबमें अनन्त है, उन सबसे श्रेष्ठ क्षेत्राग्रको सिद्ध परमात्मा [illegible] होकर प्राप्त हुआ है। उस सिद्धावस्थाके होने पर वे निद्रा, तन्द्रा, भय, भ्रान्ति, राग, द्वेष, पीड़ा, संतापसे रहित हो जाते हैं। तथा शोक, मोह, भय, जन्म, मरण, आदि भी नहीं रहता है। क्षुधा, तृषा, खेद, मद, उन्माद, मूर्च्छा, मत्सर [illegible] है [illegible] भी नहीं है, [illegible] है [illegible] रहित है, [illegible] रहित है, [illegible] नहीं है [illegible] है [illegible]

[illegible] है [illegible]

[illegible] है [illegible]

[illegible]

[illegible] है,

पतिदेवानां क्रीडास्थानम्, "शाल्मले शाल्मलीवृक्ष इति हैमः" । यस्मिन् वृक्षे व्यवस्थिता अन्यतश्चागत्य सुपर्णा=सुवनपतिविशेषा देवा रतिं=रममाणा रतिं रमणं क्रीडां वेदयन्त्यनुभवन्तीति । वनेषु मध्ये नन्दनं=देवानां क्रीडास्थानं श्रेष्ठम् प्रधानं "नन्दनं, मिस्सकं, चित्तलतां, फारुसकं, वना इत्यभिधानप्पदीपिका" । एवं भगवान् वीरोऽपि केवलत्वेन ज्ञानेन समस्तपदार्थाविर्भावकेन शीलेन=चारित्रेण यथाख्यातेन स्वभावेन सहजधर्मविशेषेण सद्वृत्तेन साधुचरित्रेण प्रधानस्तथा भूति-प्रज्ञ=प्रवृद्धज्ञानोऽनन्तज्ञानो भगवान् इति भाव. ॥ १८ ॥

अन्वयार्थ—[जह] जैसे [रुक्खेसु] वृक्षोंमें [सामली] शाल्मली वृक्ष [वा] तथा [वणेसु] वनोंमें [नंदण] नन्दनवन [सेट्ठं] श्रेष्ठ [णाए] समझा जाता है [जस्सिं] जिसमें कि [सुवण्णा] सुपर्ण-कुमार नामक भुवनवासी देव [रतिं] आराम क्रीडाका [वेदयती] अनुभव करते हैं उसी प्रकार भगवान् [नाणेण] ज्ञानमे [य] और [सीलेण] चारित्रमे श्रेष्ठ तथा [भूइपन्ने] प्रभूत ज्ञानशाली [आहु] कहलाते थे ॥ १८ ॥

भावार्थ—वृक्षोंमें सेमलवृक्ष सुंदर सघन छाया युक्त होता है, यह वृक्ष पृथ्वीकायिक और नित्य है । तथा ससारके समस्त वनोंमे नन्दनवन खूबसूरत है, क्योंकि कथित दोनों स्थानोंमें रहनेवाले तथा बाहरसे आनेवाले सुपर्णकुमार जातिके भुवनवासी देव, आनन्दमें आमोदप्रमोदसे अनेकप्रकारका विलास करते हैं, उसीप्रकार भगवान् महावीर प्रभु भी सबमें उत्तम थे, कारण उस समय प्रभुके मुकाबलेमें उनके ज्ञान और चरित्रकी बराबरी करनेवाला कोई भी व्यक्ति न था, इसीलिए सेमल और नन्दनवनकी उपमा देकर भगवानकी स्तुति की गई है ॥१८॥

भाषा टीका—शाल्मली वृक्षकी शीतल छाया होनेसे वह सब वृक्षोंमें श्रेष्ठ है, और वह भुवनवासी देवोंका क्रीडा स्थान है । वनोंमें जिसप्रकार नन्दनवन उत्तम वन है उसी प्रकार भगवान महावीर प्रभु भी केवलज्ञानके कारण श्रेष्ठ हैं जिससे सर्वोत्तम पदार्थ उन्हें प्रत्यक्ष अवभासित है । ज्ञानके साथ साथ उत्तम यथाख्यात चारित्रसे भी पूर्ण उत्तम श्रेष्ठ है । और आत्माका सहज स्वभाव उत्तम गुण है । १८ ॥

शान्तिकर और स्वादिष्ट वस्तु है, इसी प्रकार विशेष तपसे जगत्की तीनों कालकी अवस्थाओंको नित्य और परिवर्तन शील माननेवालोंमें मुनि–भगवान् महावीर प्रभु श्रीफ्चजाकी तरह समस्त लोकमें महान् तपसे तप कर निकले हुए कुंदनकी तरह सुशोभित थे ॥ २० ॥

गुजराती अनुवाद—सर्व समुद्रोमां स्वयंभूरमण समुद्र मोटो छे, तेना कांठा पर देवताओ वायुसेवन करवाने आवे छे, भुवनपति देवोमां धरणेन्द्र देवराज प्रधान छे, मीठा अने सरस पदार्थोमां शेरडीना रस शान्तिकर तेमज मीठ तथा स्वादिष्ट छे, तेवीज रीते तप उपधानथी जगत्‌नी त्रणे कालनी अवस्थाओने नित्य तेमज परिवर्तनशील माननाराओमा मुनींद्र श्री भगवान् महावीर प्रभु समस्त लोकमां शुद्ध कुन्दननी माफक सुशोभित छे ॥ २० ॥

मूल

हत्थीसु एरावणमाहु णाए,
सीहो मिगाणं सलिलाण गंगा ।
पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवो,
णिवाणवादीणिह णायपुत्ते ॥ २१ ॥

(संस्कृतच्छाया)

हस्तिष्वैरावणमाहुर्ज्ञातं, सिंहो मृगाणां सलिलानां गंगा ।
पक्षिषु वा गरुत्मान् वेणुदेवो, निर्वाणवादिनामिह ज्ञातपुत्रः ॥२१॥

सं० टीका—हस्तिषु=करिवरेषु मध्ये, यथैरावतं=शक्रवाहनं शा प्रसिद्धं "ऐरावतोऽभ्रमातङ्गैरावणाभ्रमुवल्लभा इत्यमर" । "कुंजरे वारणो हत्थीन्यभिधानप्पदीपिका" । दृष्टान्तभूत वा प्रधानमाहुरुक्तवा अथवा हस्त एवं रत्नत्रय तदस्यास्तीति हस्ती तेषु हस्तिषु, "हत्थं पाणिम्हि, रतने, गणे, सोण्डाय, सन्तरे इति अभिधानप्पदीपिका" ऐरावतो नागराजस्तद्वच्छोभनीय । अथवा हस्तो नागस्तोयदस्तस्य ऐरावत इवेति । अथवा पुनरप्युहस्तिषु हि ऐरावतो नागो नागसदृश

ऐरावतकी तरह उच्च कोटिकी है। अथवा हाथमें जिस प्रकार नारंगी सुन्दर लगती है उसी तरह प्रभु भी जगती-तल पर नारंगीकी तरह भव्य प्राणियोंके हृदयोंमें सुन्दर लगते हैं । हरिणादिक जंगली जीवोंमें सिंह बलिष्ट होता है, इसी तरह भरत क्षेत्रकी अपेक्षा मानवसृष्टिमें वीर प्रभु सिंहकी तरह आत्म-बलसे बलवान थे, जैसे सब प्रकारके जलोंमें गंगाजल अनेक औषधियोंसे मिश्रित होनेके कारण निर्मल है, ऐसे ही प्रभु भी कर्म-लेपसे अलिप्त होनेसे अत्यन्त स्वच्छ हैं। और पक्षिओंमें गरुड नामक वेणुदेव प्रधान है, इसी प्रकार निर्वाण अर्थात् जो सिद्धक्षेत्र है जहां कर्म-मलका अत्यन्त अभाव है, उसका स्वरूप बतानेमें तथा उसके पानेके उपाय बतानेमें ज्ञातपुत्र महावीर प्रभु सर्वोपरि हैं । उनका निर्वाण मत्त्में उच्चकोटिका और अकाट्य है ॥ २१ ॥

गुजराती अनुवाद—जेम ऊंचा तथा सुन्दर हाथिओमा ऐरावत हाथी निष्कलंक अने उत्तम छे, केमके तेनापर इन्द्र सवारी करे छे, अथवा ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप जे गुण रत्नो छे, तेमा प्रभु पण हाथीनी पेठे जे ऊचा छे, अथवा ते रत्नत्रय मनोहर तेमज उपादेय छे, अथवा हस्तिनो अर्थ बादळ पण थाय छे, जेमनी वाणी अमोघ वाणी छे, अने ऐरावत हाथीनी पेठे उच्च कोटिनी छे, अथवा जेम नारंगी हाथमा सुदर लागे छे तेम प्रभु पण भूतल पर नारंगीनी जेम भव्य प्राणीओना स्वच्छ हृदयने सुदर लागे छे, मृगादिक जनावरोमा सिंह बलिष्ठ होय छे, तेम भरतक्षेत्रनी अपेक्षाए मानव सृष्टिमा श्रीवीरप्रभु कर्मरूप मृगोने जीतवा माटे सिंह समान आत्मबलमा बलवान् छे, अनेक प्रकारनी औषधि-युक्त होवाने लीधे गंगाजल सर्व जलमा निर्मल छे, तेमज प्रभु पण कर्म लेपथी अलिप्त होवाने लीधे अत्यन्त विशुद्ध छे, पक्षिओने विषे गरुड [वेणुदेव] प्रधान छे, तेवीज रीते निर्वाण (सिद्ध) क्षेत्र के ज्या कर्ममळनो अत्यन्त अभाव छे, तेनु स्वरूप बतावनामां तथा तेनी प्राप्तिनो उपाय बतावबामा ज्ञातपुत्र महावीर प्रभु सर्वोपरि छे ॥२१॥

मूल

जोहेसु णाए जह वीससेणे,
पुप्फेसु वा जह अरविंदमाहु ।
खत्तीणसेट्ठे जह दंतवक्के,
इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे ॥ २२ ॥

संस्कृतच्छाया

योधेषु ज्ञातो यथा विश्वक्सेनः,
पुष्पेषु वा यथाऽरविन्दमाहुः ।
क्षत्रियाणां श्रेष्ठो यथा दान्तवाक्यः,
ऋषीणां श्रेष्ठस्तथा वर्धमानः ॥ २२ ॥

सं० टीका—योधेषु वीरपुरुषेषु भटेषु मध्ये ज्ञातो विदितो दृष्टान्तभूतो वा विश्वा—सेना हस्त्यश्वरथपदातिप्रभृतिचतुरंगदलसमेता (इति शेषः) यस्य स विश्वसेनश्चार्धचक्रवर्ती तथाऽसौ प्रधानः । "विष्वक्सेनो जनार्दन" इत्यमरः इत्यनेन विश्वसेनःशब्दः विष्वक्से-नस्यापभ्रंशोऽपिगवितुमर्हतीत्याधुनीका मता । पुष्पेषु च "स्त्रियः सुमनसः पुष्पं प्रसूनं कुसुमं सुममित्यमरः ।" तन्मध्ये यथाऽरविन्दं महोत्पलकमलं "वा पुंसि पद्मं नलिनमरविन्दं महोत्पलमित्यमर. ।" प्रधानमाहुस्तथा क्षतात् रिपुकृतखण्डनादष्टकर्मणस्त्रायन्त इति क्षत्रिया "राजञो, खत्तियो, खत्तं, मुद्धाभिसित्त, बाहुजा इत्यभिधानप्पदी-पिका ।" "राजा तु खत्तिये वुत्तो नरनाहे पभुम्हि च" इत्यभि-धानप्पदीपिका ।" राजानोऽपि तेषां मध्ये दान्ता उपशान्ता यस्य वाक्येनैव शत्रवस्स दान्तवाक्यश्चक्रवर्ती "सब्बभुम्मो चक्कवत्ती इत्यभिधानप्पदीपिका ।" यथा चासौ श्रेष्ठः प्रधानस्तदेवमनुना प्रकारेण बहून् दृष्टान्तान् प्रशस्तान् अनुकूलान् प्रदर्श्याधुना भगवन्तं महावीरजिनवरेन्द्रं दार्ष्टान्तिकं स्वनामग्राहमाह । तथैव ऋषीणां "तापसो तु इसी (रितो) इत्यभिधानप्पदीपिका ।" मध्ये श्रीमद्वर्ध-मानोऽन्तिमतीर्थंकरो महावीरस्वामी श्रेष्ठः ॥ २२ ॥

अन्वयार्थ—[जह] जैसे [जोहेसु] योद्धाओंमें [वीससेणे] कृष्णवासुदेव [णाए] प्रधान है [व] और [पुप्फेसु] फूलोंमें [अरविंदं] महाकमल प्रधान होता है तथा [खत्तीण] क्षत्रियोंमें [दंतवक्के] चक्रवर्ती [सेट्ठे] प्रधान है [तह] उसी प्रकार [इसीण] ऋषियोंमें [वद्धमाणे] भगवान् वर्धमान [सेट्ठे] प्रधान [आहु] कहे जाते थे ॥ २२ ॥

भावार्थ—कृष्ण-वासुदेवसे बढ़कर अन्य कोई योद्धा नहीं है, गन्धयुक्त फूलोंमें कमल अच्छा होता है, समस्त भूमिके क्षत्रियोंमें चक्रवर्ती मुख्य कहलाता है, उसी भांति भगवान्-महावीर उस समयके सब ऋषि-मुनिओंमें सर्वश्रेष्ठ थे ॥ २२ ॥

भाषा-टीका—लड़ाके वीरोंमें पुष्कल हाथी, घोड़े रथ पैदल आदि चतुरनीकका आधिपत्य भोक्ता अर्धचक्री वासुदेव कृष्ण प्रधान होता है। फूलोंमें हजार पंखुड़ियोंवाला अरविंद नामक कमल श्रेष्ठ है। सताए गए वे मनुष्य जिनके कि-शत्रुओंने हृदयके सैंकड़ों टुकड़े कर डाले हैं। तथा उन (कर्म रूपी) शत्रुओंसे जो सुरक्षित रखनेवाला हो वही क्षत्रिय होता है। उन्हींको दीप्तिमान राजा कहा जाता है। उनमें उपशान्त गुण प्रधान होता है जिसके कथन मात्रसे शत्रु शिथिल पड़ जाते हैं वही चक्रवर्ती भी होता है अत एव वह सबमें मुख्य है। इसी प्रकार इन सुन्दर दृष्टान्तोंको जिनपर अनायासमें ही घटाया जाता हो ऐसे वे हमारे परम पवित्र वर्धमानस्वामी अन्तिम जिन-भगवान् सब ऋषिमहर्षियोंमें श्रेष्ठ थे ॥ २२ ॥

गुजराती अनुवाद—योद्धाओमा गज-अश्व-रथ-पायदल, ए चतुरंगी सैनानो अधिपति अर्ध चक्रवर्ती वासुदेवकृष्ण सर्वोत्तम छे, फूलोमां हजार पांखडी वालुं अरविंद कमल श्रेष्ठ छे, शत्रु (कर्मरूपी शत्रु) थी रक्षा करनार क्षत्रिय कहेवाय छे, तेने दीप्तिमान् राजा कहे छे, तेनामां उपशान्त रस प्रधान होय छे, जेना कथन मात्र थी शत्रु शिथिल थई जाय छे, ते चक्रवर्तीज होय छे, ते सर्वोत्तम छे, तेवीज रीते आवा सुन्दर-दृष्टान्तो जेना पर घटी शके ते अनाग परम पवित्र, पतित पावन, जगदुद्धारक वर्धमान भगवान् अन्तिम जिन सर्व ऋषिओमा श्रेष्ठ छे ॥ २२ ॥

मूल

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं,
सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति ।
तवेसु वा उत्तमबंभचेरं,
लोगुत्तमे समणे णायपुत्ते ॥ २३ ॥

संस्कृतच्छाया

दानानां श्रेष्ठं अभयप्रदानं, सत्येषु वाऽनवद्यं वदन्ति ।
तपस्सु वोत्तमं ब्रह्मचर्यं, लोकोत्तमः श्रमणो ज्ञातपुत्रः ॥ २३ ॥

तथैव याज्ञवल्क्यसंहितायाम्—

"कर्मणा मनसा वाचा, सर्वभूतेषु सर्वदा,
अक्लेशजननं प्रोक्तमहिंसात्वेन योगिभिः।"

तथा स्मृतावाचाराध्याये—

"अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
दानं दया दमः क्षान्तिः, सर्वेषां धर्मसाधनम्॥

"मा हिंसीः पुरुषं जगदिति" यजुर्वेदसंहितायां षोडशोऽध्याये तृतीयमन्त्रः।

मा हिंस्यात् सर्वभूतानीति 'शतपथे'।

तथा च मनुः—पंचमाध्याये

"योऽहिंसकानि भूतानि, हिनस्त्यात्महितेच्छया,
स जीवंश्च मृतश्चैव, न क्वचित्सुखमेधते" ॥ ४५ ॥

पुनश्च मनुः—

"धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
अहिंसा सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम्॥"

तथा च महाभारते—

"अहिंसा परमो धर्मो हिंसाऽधर्मस्तथाहितः।
सत्यं तेऽहं प्रवक्ष्यामि, यो धर्मः सत्यवादिनाम्॥"

धार्मिकजनानामुत्कृष्टं प्राथमिकं धर्मन्त्वहिंसैवेति यथा—

"[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥

यदाहुर्लौकिका अपि।

"श्रूयतां धर्मसर्वस्वं, श्रुत्वा चैवावधार्य्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत्॥"

राज्यादधिकं प्राणाः प्रियाः। यथा—

"प्राणी प्राणितलोभेन, यो राज्यमपि मुञ्चति।
तद्वधोत्थमघं सर्वोर्वीदानेऽपि न शाम्यति॥"

"मार्य्यमाणस्य हेमाद्रिं, राज्यं वाऽस्य प्रयच्छतु।
तदनिष्टं परित्यज्य, जीवो जीवितुमिच्छति॥"

"दीर्य्यमाणः कुशेनापि, यः स्वांगे हन्त दूयते।
निर्मन्तून् स कथं जन्तूनन्तयेन्निशितायुधैः॥"

तथोक्तं—

"रसातलं यातु यदत्र पौरुषं, क्व नीतिरेषाऽशरणो ह्यदोषवान्।
निहन्यते यद्बलिनातिदुर्बलो, हहा महाकष्टमराजकं जगत्॥"

पुनश्च—"म्रियस्वेत्युच्यमानोऽपि, देही भवति दुःखितः।
मार्य्यमाणः प्रहरणैर्दारुणैः स कथ भवेत्॥"

पुनरपि हिंसकान्निन्दति—

"कुणिर्वरं वरं पंगुरशरीरी वरं पुमान्।
अपि सम्पूर्णसर्वांगो, न तु हिंसा परायण॥"

स्वार्थिकी हिंसाऽपि हानीया, यथा—

"हिंसा विघ्नाय जायेत, विघ्नशान्त्यै कृतापि हि।
कुलाचारधियाप्येषा, कृता कुलविनाशिनी॥"

"अपि वराकमायाना, यस्तु हिंसा परित्यजेत्।
स श्रेष्ठ सुलस इव, कालसौकरिकात्मजः॥"

"जात्यार्य्या, इक्ष्वाकवो, विदेहा, हरयोऽम्बाष्ठा, ज्ञाताः कुरवो, बुंबुनाला, उग्रा, भोगा, राजन्या इत्येवमादयः क्षत्रिया आर्यकुलोद्भवाः" ॥

(तत्त्वार्थसूत्रम् ३–१५)

ज्ञातखण्डोद्यानोऽपि ज्ञातवंशस्य परिचयमादत्ते, यथा—

"वहिया य 'णायसंडे' आपुच्छिताण णायए सव्वे ।
दिवसे मुहुत्तसेसे कमाणामं समणुपत्तो ॥"

(आवश्यकचूर्णि पृ० २६७)

पुनश्च—

"उत्तरखत्तियकुण्डपुरसंनिवेसस्स मज्झेणं निगच्छति २ त्ता जेणेव 'णायसंडे' उज्जाणे तेणे व उवागच्छइ............महावीरे लोयं करेइ ।" (श्री आचारांगसूत्र २-१५-८)

श्रीहेमचन्द्राचार्योऽपि परिशिष्टपर्वणि ज्ञातनन्दनमिति शब्दप्रयोगं कृत्वा प्रणमस्करोति, यथा—

कल्याणपादपारामं, श्रुतगंगाहिमाचलम्,
विश्वाम्भोजरविं देवं, वन्दे श्रीज्ञातनन्दनम् ॥

इत्यादिप्रमाणैर्भगवान् महावीरो ज्ञातवंशमलंकृतवान् ।

अन्वयार्थ—जैसे [दाणाण] दान-धर्ममें [अभयप्पयाणं] अभयदान [सेट्ठं] श्रेष्ठ है, [वा] और [सच्चेसु] सत्योंमें [अणवज्ज] पाप रहित-दूसरोंको पीडा न देनेवाला सत्य वचन [वा] और [तवेसु] सब तपोंमें [बंभचेरं] ब्रह्मचर्यको [उत्तम] अच्छा [वयंति] कहा है, उसी प्रकार [समणे] दयालु-श्रमण [णायपुत्ते] ज्ञातृ-पुत्र-महावीर [लोगुत्तमे] लोकमें] श्रेष्ठ थे ॥ २३ ॥

भावार्थ—स्व परके हितकेलिए किसीवस्तुका निष्काम अर्पण करना दान है, दान अनेक प्रकारका होनेपर भी 'अभयदान' सब दानोंमें उत्तम है,

१

जाता है, वह फल सूर कसाईके पुत्र 'सुलस' की तरह सब मनुष्योंमें पवित्र और श्रेष्ठ गिना जाता है।"

"जो इन्द्रियोंको तो वश रखना चाहता है, तथा देव और गुरु की आन्तरिक सेवा करता है, यथा शक्य दान भी देता है, तत्वको पढ़ कर पढ़ाता भी है, तप भी करता है, परन्तु जरासी भी हिंसाको यदि धर्म मान्यताने कर देता है तब तो उपरोक्त सबकी सब क्रियाएँ निष्फल हैं, अतः सिद्ध हुआकि धर्मके नाम पर की गई हिंसा भयंकर पापकारिणी है।"

"जिस शास्त्रमें धर्मका नाम लेकर हिंसा करनेका उपदेश किया हो वह शास्त्र न होकर कुशास्त्र समझा जाना चाहिए अर्थात् वह शस्त्र है शास्त्र नहीं।"

"यह कितना आश्चर्य है कि–मनुष्य तक को मार देनेवाले, लोभान्ध होकर पथ भ्रष्ट होजाने वाले, हिंसा विधायक शास्त्र बनाकर, तथा पाप करनेका उपदेश देकर, लोकोंको मूर्ख बना रहे हैं, अन्ध विश्वासी बनाकर मानो नरकके कुंएमें डाल रहे हैं।"

अहिंसाका माहात्म्य–"अहिंसा माता की तरह सबकी पालिका और हितकारिणी है। अहिंसा ही शत्रुओंके मनमें अमृतका संचार करनेवाली है। अहिंसा दुःखरूपी दवानलको बुझानेमें अमोघ और प्रधान मेघ है, संसार भ्रमणा यानी जन्म मरणके रोगसे पीडितोंके लिए तो आरोग्यता देनेमें उत्कृष्ट 'औषधि' है।"

अहिंसाका फल–"लम्बी आयु, स्वच्छ और सुन्दर रूप, नीरोगता, संसारमें निर्मल यश कीर्ति, इत्यादि सामग्रियाँ अहिंसा पालन करनेके उपलक्षमें ही तो मिली हैं। अधिक क्या कहा जाय अहिंसा सब मनोरथ पूर्ण करनेवाली है।"

किसीने ठीक ही कहा है कि–"पहाड़ोंमें सुमेरु, अमृत पीने वालोंमें देवता, मनुष्योंमें चक्रवर्ती ज्योतिष चक्रमें चांद, ठंडी छाया देनेवालोंमें कल्पवृक्ष, ग्रहोंमें सूर्य जलाशयोंमें समुद्र, सुर–असुर–मनुष्य तथा चक्रवर्तियोंमें वीतराग के पदकी तरह सब व्रतोंमें 'अहिंसा' को सबमें बड़प्पन तथा प्रधानता प्राप्त है। अर्थात् इससे बड़ा कोई और बड़ा व्रत नहीं हो सकता है।

निष्कर्ष–इन सब शास्त्रोंका मन्थन करनेसे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि–हिंसा सब अनर्थोंका कारण है, अंगोंने तो इसका नाम प्राणातिपात कहा है,

मगर चौथी रानीने उसे कुछ भी न देकर उसका वह प्राणदंड का अपराध राजासे कह कर क्षमा करा दिया। तब यह सुन उन तीनोंने कहा कि इसे तूने क्या दिया है? चौथी रानीने कहा कि मैंने इसे वह वस्तु दी है, जिसे तुम सब मिल कर स्वप्नमें भी नहीं दे सकी। यह सुनकर वे सब क्रुद्ध होकर उसके गले पड गई और बोली कि हमने तो उसे कोडपति बनादिया है और तुम कहती हो कि हमने इसपर तुनके जितना उपकार भी नहीं किया। चौथीने कहा कि धनसे भी अधिक सबको अपने प्राण प्यारे होते हैं। मैंने इसे प्राणदान दिलवाकर सदाके लिए सुखी बना दिया है। अब इसे मरनेका भय नहीं है जिससे मैंने सबसे बडा उपकारका कार्य किया है। यदि मेरे कहेका विश्वास न हो तो राजासे इसका न्याय कराना चाहिए। इतना कहनेके बाद राजाको तुरन्त महलमें बुलवाया गया, और रानियोंका वह मुकदमा सुन कर राजाने चोरको बुलाया और पूछा कि भाई! सत्य कह तू किस रानीका अधिक उपकार मानता है।

उसने नम्रतासे सिर झुका कर कहा कियों तो सबने मुझ पर भारी उपकार किया है, मगर चौथी रानीका सबसे अधिक उपकार मानता हूं, क्योंकि उसने अभयदान दिलवाया है। तीनों रानियोंने क्रोडोंका धन भी दिया और एक एक दिन मरनेसे भी बचाया मगर मुझे तो सदैव यही भय बना रहता था कि धनका क्या करूंगा जब कि कल मर जाना है। मगर चौथी रानीने मुझे उसी मौतके संकटसे उबारा है। अबमें यावज्जीवन पर्य्यन्तके लिए निर्भय हूं। अब इस उपकारको अपने तनका पुरस्कार देकर भी नहीं चुकाया जा सकता। क्योंकि सब दानोंमें अभयदान प्रधानतम है।

सर्वोच्च भाषा सत्य है–इसी प्रकार सत्य वचनोंमें निरवद्य, पापरहित, दूसरेकी पीडाको हटानेवाली भाषा सर्वोत्तम है। क्योंकि काना, नपुंसक, रोगी, चोरादिक नामसे पुकारनेपर भी उनके मनको आघात पहुचता है।

मनुका मत– सत्य, प्रिय और अन्यके मनके अनुकूल वचन बोलो, असत्य और अप्रिय सत्य कभी मत बोलो।

असत्य– असत् शब्दके तीन अर्थ हैं, सद्भावका प्रतिषेध और अर्थान्तर तथा गर्हानिन्दा। वस्तुके सद्भावका आरोपण करना सद्भावका प्रतिषेध करना है। यह [illegible] सद्भावका है। सद्भूत पदार्थोंका छिपाना–अथवा असद्भूत पदार्थोंका

कोई उस पर विश्वास नहीं करता, बदनाम मुफ्तमें हो जाता है। कुपथ्य करनेकी तरह न जाने क्या २ दुःख-दोष झूठे मनुष्यमें बढ जाते हैं।" "झूठ बोलने वाला नरक, निगोद, और पशु योनिमें जन्म लेकर मरता रहता है।" "थोड़ा सा असत्यका प्रयोग करनेवाला भी नरकमें उत्पन्न होता है।"

"ज्ञानिओंने ज्ञान और चरित्रका मूल तो सत्य ही बताया है, सत्यवादीके पैरोंकी धूलिसे पृथ्वी पवित्र हो जाती है।" "जो सदा सत्य बोलते हैं उनका भूत, प्रेत, सर्प, सिंह आदि कुछ भी नहीं बिगाड सकते, ।" "सिर मुंडा कर, जटा रखा कर, नग्न रह कर, कपडे पहिन कर या तपको तप कर भी जो असत्य बोलता है तब तो उसे अछूतसे भी बढ कर निन्द्य समझना चाहिए।" "एक तरफ तो असत्यका पाप है, दूसरी ओर संसारके सब पाप हैं, यदि इन दोनों पापोंको तोला भी जाय तो असत्यका पाप बढ निकलेगा।" "डाकुओं और व्यभिचारिओंके पापका प्रायश्चित हो सकता है, परन्तु असत्यवादीका प्रतिकार नहीं।" "सत्यवादीका देवोंको भी पक्ष होता है, राजा भी उस पर शासन नहीं चला सकता, उन पर अग्निका उपद्रव नहीं होने पाता, क्योंकि सत्यकी महिमा अपार है।"

"सत्यका संसार भरके योगियोंने खूब ही गायन किया है, जिसमें शुभचन्द्राचार्यके कुछ वचनामृत आपके पठनार्थ सामने रखते हैं। इन्होंने कहा है कि-"जो संयमी मुनि धीरज रख कर संयमकी रक्षा या मुनि दीक्षाकी धुराको धारण करता है, वह मुनि वचनके जंगलमें सत्य रूपी वृक्षका आरोप करता है।" "यमनियमप्रवृत्तिओंका समूह एक मात्र अहिंसाकी रक्षाके लिए कहा है, अहिंसा व्रत यदि असत्यसे दूषित होतो वह ऊंचे पदसे कभी भी नहीं पासकता। असत्य वचनके होनेसे अहिंसाका प्रतिपालन असंभव है।"

"जो वचन जीवोंका इष्ट हित करनेवाला हो तो वह असत्य भी सत्य है। और जो वचन पाप सहित हिंसात्मक कार्यको पुष्ट करता है वह सत्य भी असत्य है और निन्द्य भी है।" "जो मुनि अनेक जन्मके उत्पन्न दुःखोंकी शान्तिके लिए तपश्चरण करता है वह निरन्तर सत्यही बोलता है, क्योंकि असत्यवचन बोलनेसे मुनिपनका होना असम्भव है।" 'जो वचन सत्य हो, कल्याण भरपूर हो, किसीके विरुद्ध न हो, आकुलता रहित हो, असभ्य न

इसी भांति स्त्रीका भी परमधर्म है कि-पर पुरुष चाहे रूपमें, ऐश्वर्य्यमें, कलामें कितना भी बढा चढा क्यों न हो, उसे जहरका पुतला समझ कर त्याग देना चाहिए जिस प्रकार सीताने रावणको छोड दिया था । वही स्त्री देवोंसे पूजित होती है जिसने मैथुनके विकार को जीता है ।

मैथुन नाम जोडे का है, प्रकृतिमें स्त्री पुरुषका ही जोडा समझा जाता है, दोनोंका परस्पर संयोग या संभोगके लिए जो भावविशेष उत्पन्न होता है अथवा दोनों मिलकर जो संभोग किया करते हैं उसको मैथुन कहते हैं, और उस मैथुनको 'अब्रह्म' कहते हैं । इसमें भी प्रमत्तयोगका सम्बन्ध है, क्योंकि उस अभिप्रायसे जो भी क्रिया की जायगी, फिर चाहे वह परस्पर दो पुरुष या दो स्त्री ही मिल कर क्यों न करें, अथवा अनंग क्रीडा आदि ही क्यों न हो वह सब अब्रह्म है, और जो प्रमादको छोडकर क्रिया करते हैं उसको मैथुन नहीं कहते । जैसे कि पिता भाई आदि पुत्री भगिनि आदिको जब गोदमें लेकर प्यार करते हैं तब वह अब्रह्म नहीं कहला सकता, क्योंकि उनमें 'प्रमत्त-योग' नहीं है । इस प्रमत्तयोगकी यदि एक अंशमें निवृत्ति की जाय तो वह ब्रह्मचर्याणुव्रत कहलाता है । जैसे कहा है—

"माता बहन बेटीकी तरह परस्त्रीको जानता हुआ जो अपनी विवाहिता स्त्रीमें ही सन्तोष करता है, वह चौथा अणुव्रत कहलाता है ।" "उत्तम पुरुष परस्त्रीको व्याधि और दुखके समान समझ कर दूरसे ही छोड देते हैं, क्योंकि परस्त्री सदैव दुःखोंका घर है, और सुखोंका नाश करनेके लिए प्रलयकी आग जैसी सिद्ध हुई है ।" "जो स्त्री अपने पतिको छोड कर परपुरुषमें रमण करने लगी जाती है, उसे परले सिरेकी निर्लज्ज समझना चाहिए । जब इस आचरणसे अपनी स्त्रीका भी विश्वास नहीं है तब परस्त्रीका किस बात पर विश्वास किया जा सकता है ।" "परस्त्रीका सेवन करके पुरुष क्या सुख पाता है केवल नरक निगोदमें रुलनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं । अतः मनुष्योंको ब्रह्मचर्य्य' व्रतका पालन करना चाहिए ।" "इस व्रतका आश्रय-लेकर योगीजन ... परमात्माका और अपना स्वरूप अभेदरूपसे जान लेते हैं । ... करते हैं, और इसे धीर वीर पुरुष ही धारण करनेमें समर्थ हैं । ...ववाले, शीलरहित, इन्द्रियोंके दास, दुर्बल पुरुषतो इसका सपनेमें भी ...ण नहीं करसकते, क्योंकि यह ब्रह्मचर्य्य असिधारा महाव्रत है ।"

"इन तीनों भुवनोंमें ब्रह्मचर्य्य नामक व्रत ही प्रशंसनीय है, जो इसे निर्मलमतीसे पालते हैं वे पूज्य पुरुषों द्वारा भी पूजित होते हैं।" "जो ब्रह्मचर्य पालनमें अनुरक्त रहते हैं वे दश प्रकारके मैथुनोंका सर्वथा त्याग कर देते हैं।" जैसे—

(१) शरीरका संस्कार–शृंगारादिकरना। (२) पुष्ट रसका सेवन करना। (३) गाना-बजाना-देखना-सुनना। (४) स्त्रीका संसर्ग करना। (५) स्त्रीमें किसी प्रकारका संकल्प–विचार करना। (६) स्त्रीके अंग उपांगोंको देखना। (७) उसे देखनेका संस्कार बनाए रखना। (८) पूर्व्व कृत भोगोंका पुनः स्मरण करना (९) अगाडीके लिए भोगनेकी चिन्तवना करनी। (१०) शुक्र (वीर्य)का क्षरण कर देना।

ये दश भेद मैथुनके हैं, ब्रह्मचारीके लिए ये सर्व्वथा त्याज्य हैं।

"जिस प्रकार किंपाकफल (इन्द्रायण फल) देखने सूंघनेमें रमणीय है परन्तु विपाक होनेसे तो हलाहल विषका काम कर डालता है। इसी भान्ति यह मैथुन भी कुछ काल पर्यन्त रमणीक और सुन्दर तथा सुखदायक प्रतीत होते हैं, परन्तु विपाक समय यानी अन्त समयमें बहुत ही भयंकर प्रतीत होते हैं।" "जो पुरुष काम और भोगोंसे विरक्त होकर सदा ब्रह्मचर्यका सेवन करते हैं उनका आत्मशुद्धिके लिए दश प्रकारका मैथुन त्याग देना चाहिए। क्योंकि इन दोषोंके त्याग बिना मनसे निर्मलता नहीं आती। उत्तम भाव–ही कामके वेगको रोक सकता है।"

कहा भी है कि–"सांप डसे गए प्राणीके सात वेग होते हैं, परन्तु कामरूपी सर्पके द्वारा डसे गए जीवके दश भयानक और बड़े वेग होते हैं, वे ये हैं।"

कामके उदयावस्था पहले पहल चिन्ताएं घिर आती हैं कि कामवश ... [illegible] ... दूसरे उसके देखनेकी इच्छा हो आती है, ... [illegible] ... और कहता है हा हाय ... [illegible] ... हो जाता है ... [illegible] ... है ... [illegible] ... है, ... [illegible] ... है ... [illegible] ... है ... [illegible]

ब्रह्मचर्यसे ही पुजता है-ब्रह्मचर्य सच्चरित्रका प्राण है, परब्रह्मके पानेमें निमित्तरूप है, जो ब्रह्मचर्यका समाचरण करते हैं, वे पूज्य पुरुषोंद्वारा पूजित होते हैं।

ब्रह्मचर्यका फल-बड़ी आयु, सुडौल शरीर, शरीरकी दृढतर रचना, शरीर पर विलक्षण तेज, महान् शक्ति, यश कीर्ति, संसारमें मान मर्यादा, प्रतिष्ठापात्रता, ये सब ब्रह्मचर्यसे प्राप्त होते हैं।

इसी प्रकार सब लोकोंकी उत्तम रूप सम्पदा पाकर तथा सर्वोतिशायी क्षायिक ज्ञान दर्शन शीलशाली पुरुषोंमें 'ज्ञात वंश' में जन्म प्राप्त, अन्तिम जिनेन्द्र श्रमणमहात्माओंमें प्रधानतम थे।

महावीरके नाम-श्रमण भगवान् महावीर प्रभुके वर्धमान, विदेहदिन्न, ज्ञातपुत्र, काश्यप, वैशालिक, महावीर, सन्मति, श्रमण, भगवान् इत्यादि अनेक नाम थे। ये सब नाम उनकी अमुक अवस्थाके सूचक हैं। क्योंकि भगवान् महावीर स्वामीका जीवन सांसारिक अवस्था और साधक अवस्थामें विभक्त है। वर्धमान, विदेहदिन्न (महावीर प्रभुकी माताका नाम 'विदेहदिन्ना' भी था "तिसला ति वा, विदेहदिन्ना ति वा, पियकारिणी ति वा—(आचारांग २-१५ १३)। त्रिशला माता विदेहमें जन्मी थीं जिससे उनका नाम विदेहदिन्ना था। अतः माताके इसी नाम पर महावीर प्रभुका मातृपक्षका नाम भी विदेहदिन्न पड़ गया था, ज्ञातपुत्र, काश्यप और वैशालिक ये ३ नाम उनकी सागारिक अवस्थाको बता रहे हैं। महावीर, सन्मति, और श्रमणभगवान् ये तीन नाम उन्होंने साधक अवस्थामें अपने आत्मवीर्यादि गुणोंसे प्राप्त किए हैं, 'वर्धमान' पिताके पक्षका नाम था, और विदेहदिन्न मातृपक्षका नाम था। ज्ञातपुत्र यह 'वंश' सम्बन्धी नाम था, काश्यप 'गोत्र' का नाम था, और 'वैशालिक' जन्मस्थानके सम्बन्धका 'अर्थसूचक' नाम है, तब महावीर नाम उनके आत्म वीर्यका, सन्मति उनके आत्म ज्ञानका और 'श्रमणभगवान्' नाम श्रमण संस्कृतिके तात्कालीन अग्रसर रूपक 'अर्थसूचक' नाम है ॥ २१ ॥

ज्ञातपुत्र-उपर्युक्त सब नामोंमें भगवान महावीरके 'ज्ञातपुत्र' नामके विषयमें हमको विचार करना है, यह 'ज्ञातपुत्र' नाम उनके वंशका सूचक है, यह बात जैनागम और बौद्धागममें और २ कही गई है।

भगवान् महावीर का 'श्री आचारांग' और 'कल्पसूत्र' आदि सूत्रोंमें उनके जीवन चरितके अनुसार उनका जन्म क्षत्रियकुण्ड ग्राममें 'ज्ञातवंशीय' और 'काश्यपगोत्रीय' सिद्धार्थ क्षत्रिय राजाके घर त्रिशला क्षत्रियाणीकी कुक्षिसे हुआ था।

यह ज्ञातृवंश उस समयके प्रसिद्ध इक्ष्वाकु, आदि क्षत्रियोंके विशाल कुलोंकी तरह प्रसिद्ध 'वंश' समझा जाता था। इस ज्ञातृवंशके क्षत्रिय प्रायः 'ज्ञातृक' के नामसे पहचाने जाते थे। और उनके इस 'ज्ञातृ' कुलके सम्बन्ध से उनके नगरों के बाहर बनाए हुए खंड-उद्यानों के नाम भी 'ज्ञातृखंड' के नामसे प्रसिद्ध थे। भगवान् महावीर प्रभुने 'कुण्डग्राम' के समीपवर्ती 'ज्ञातृखंड' नामक बागमें दीक्षा ली थी। शास्त्र वचन तो इसकी खूब ही पुष्टि करता है।

जिनागममें 'ज्ञातृपुत्र' का प्रतिशब्द 'नायपुत्त' या 'नातपुत्त' के रूपमें और बुद्धागममें 'नायपुत्त' या 'नाटपुत्त' के रूपमें जिस शब्दप्रयोगका उल्लेख देखनेमें आता है, वह भगवान् महावीर के 'ज्ञातृवंश' का ही अर्थसूचक नाम है, ऐसे नाम लेखोंमें इनको उपरोक्त कारण मिलते हैं, 'नायपुत्त' या 'नातपुत्त' ये दोनों नाम संस्कृत में 'ज्ञातृपुत्र' शब्दके ही प्राकृत रूप हैं, और 'नायपुत्त' या 'नाटपुत्त' ये दोनों नाम भी इसी शब्दके 'पाली' रूप हैं। प्राकृत में 'त' को 'य' और पाली में 'त' को 'थ' और 'थ' को 'ट' भी साधारणतया हो जाता है। दिगम्बर सूत्रोंमें 'ज्ञातृपुत्र' का 'नाथपुत्त' इस शब्दको व्यवहृत होता देखा जाता है। इस प्रकार भाषा और भावकी दृष्टिसे देखते हुए भी ये सब अलग २ नाम मूल 'ज्ञातृपुत्र' शब्दमें मिल जाते हैं। ये सब नाम 'ज्ञातृपुत्र' शब्दसे बनाए गए हैं। इसमें शंका करने के लिए जरासा भी स्थान नहीं है। प्राचीन कालमें वंशके नामसे परिचय करानेकी प्रथा होनेसे भगवान् महावीर प्रभुके जीवनविषयक परिचय श्रीजैनागमोंमें और बौद्धागमोंमें 'नातपुत्त' या 'नायपुत्त' शब्दसे और भगवान् महावीरके शिष्योंका परिचय 'नातपुत्तीय' या 'नायपुत्तीय' शब्दसे [illegible] दिया गया है।

श्रीजैनागमके ११ अंगमें छठ्ठा अंग "नायधम्मकहाओ" है, उसमें [illegible] आया हुआ 'णाय' शब्द भी भगवान् महावीरका वंशवाचक 'नाय-' [illegible] गहरा सम्बन्ध रखता है प्राकृतमें 'न' को 'ण' हो जाना तो

इससे प्राचीन कालमें 'वंशवाचक' नामसे परिचय देनेकी प्रथा स्पष्ट जानी जा सकती है। महात्मा बुद्ध भी उनके मूल नाम "सिद्धार्थ" की अपेक्षा उनके 'गोत्रसूचक' नाम "गौतम" के नाम से और 'वंशसूचक' "शाक्यपुत्र" के नामसे अधिक प्रसिद्ध थे।

भगवान् महावीरका वंश 'ज्ञातृवंश' था और इस ज्ञातृवंशसे उनका 'वंशसूचक' नाम '**नायपुत्त**' प्रसिद्ध हो गया, जिसे हम ऊपर देख गए हैं। मगर इस वंशका अगाडी चलकर कितना विस्तार और कितना विनाश हुआ इसका इतिहास प्रायः लुप्त है। इस लुप्तप्रायः इतिहास का शोध करना 'अत्या-वश्यक' है। इस इतिहास को तलाश करने के लिए हमारे पास बौद्ध साहित्य एक अनन्य साधन है।

भगवान् 'महावीर' और 'महात्मा बुद्ध' ये दोनों एक समयके समकालीन धर्मक्रान्तिकारी महापुरुष होगए हैं। तदुपरान्त वे दोनों एक ही देशके निकटस्थ प्रान्तके निवासी राजवंशी पुरुष थे इन कारणोंको लेकर महात्मा बुद्धको एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें विहार करते हुए भगवान् महावीरकी जन्म भूमिमें आनेका और वहां भगवान् महावीरके वंश-सम्बन्धी लोगोंके साथ वार्तालाप करनेका प्रसंग प्राप्त होना यह एक स्वाभाविक बात है।

'बुद्धपिटक' के 'महावग्ग' नामक सूत्रमें म० बुद्ध भगवान् महावीरकी जन्मभूमि कुण्डग्राममें और उसके पासमें 'ज्ञातृकों' के ग्राममें एवं वैशालि नगर जानेका और वहां 'निर्ग्रन्थ श्रावक' 'सिंह' सेनापतिके साथ बातचीत करनेका उल्लेख मिलता है। इस उल्लेखके आधार पर भगवान् महावीर का 'ज्ञातृवंश' और उनकी जन्मभूमिके विषयमें हमको बहुत कुछ परिचय मिलेगा। इसी धारणासे ये उल्लेख उतारने उचित प्रतीत हुए।

*अथ भगवान् वहां **कोटिग्राम** था वहां गए, वहां भगवान् कोटिग्राम में विहार करते थे,

---

* देखो, विनयपिटक महावग्ग पृ० २८१-'कोटिग्राम,'

अम्बपाली गणिकाने सुना कि भगवान् **कोटिग्राममें** आगए। अम्ब-पाली गणिका सुन्दर-सुन्दर (भद्र) यानोंको जुड़वा कर, सुन्दर यान पर चढ़ कर, सुन्दरयानों के साथ वैशालीसे निकली। और जहां वह **कोटिग्राम** था वहां चली

तब वह 'लिच्छवी' जहां **कोटिग्राम** था वहां गए।

"एक समय भगवान् बुद्ध नादिक (नातिका) के गिञ्जकावसथमें विहार करते थे"

{ मज्झिमनिकाय पृष्ठ १२७
चुल-गोसिंग-सुत्तन्त
वैशाली }

कोटिग्राममें इच्छानुसार विहार कर जहां पर **वैशाली** का महावन है वहां गए, वहां भगवान् बुद्ध वैशाली महावन की कूटागार शाला में विहार करते थे।

उस समय बहुतसे प्रतिष्ठित 'लिच्छवि' संस्थागार-(प्रजातन्त्रभवन) में बैठे थे। वे सब मिलकर बुद्ध का गुण बखानते थे। धर्म का, संघ का, गुन बखानते थे, उस समय निगंठों का श्रावक (जैनों का श्रावक) सिंह सेनापति उस सभामें बैठा था।......................................
......तब सिंह सेनापति जहां **'निगंठ नाथपुत्त'** थे वहां गया, जाकर **'निगंठ नायपुत्त'** से बोला कि भंते मैं..............................

सिंह! तुम्हारा घर दीर्घकाल से **निगंठों** के लिए प्याऊ की तरह रहा है।..
.... उस समय बहुतसे **निगंठ** (जैन साधु) वैशाली में एक ....
....
आयुष्मान् (निगंठ) बुद्ध .... चिरकालसे
....है।

विनय पिटक' 'महावग्ग' तथा 'मज्झिम निकाय' में आए हुए इन उल्लेखोंसे हमें साफ र मालूम हो जाता है कि 'महात्मा बुद्ध' महावीरस्वामी'

की जन्मभूमि 'कुण्डग्राम'–पाली भाषामें 'कोटिग्राम' में गए थे। और कुण्डग्रामके पासकी बसनेवाली वैशाली नगरीमेंसे वहां महात्मा–बुद्धको अम्बापाली नामक वेश्या और लिच्छवीक्षत्रिय मिलने आए थे। कोटिग्राम से म० बुद्ध जहां 'ञातिका' 'ज्ञातृक' रहते थे वहां गए थे। और वहां 'ञातिका' ज्ञातृकोंके 'गिञ्जिकावसथ'–ईंटोंके घरमें ठहरे थे। इस स्थानके पास ही एक अम्बापालीवन नामक उद्यान भी रहा है जिसे अम्बापालीने बुद्ध और उनके संघको समर्पण कर दिया था। वहां से म० बुद्ध वैशाली गए और वहां सिंह नामक सेनापति जो कि निर्ग्रन्थोंका श्रावक था, उसे अपना अनुयायी बनाया, सिंह सेनापति महात्मा बुद्धको मिलने जाने से पहले निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र महावीर प्रभुके पास अनुज्ञा लेने आया था। तब भगवान् महावीरने सिंह सेनापति को "तू क्रियावादी हो कर अक्रियावादी श्रमण गौतमके पास उसे मिलने क्यों जाता है? यह कह कर न जानेकी सम्मति दी थी"। परन्तु वह अपनी इच्छानुसार श्रमण गौतमके पास गया और वह वहीं श्रमण गौतम बुद्धका अनुयायी होगया।

उपरोक्त उल्लेखसे हमारे विषयको पुष्ट करने वाली चार बातें जानने में विशेष तया मिलती हैं।

(१) बौद्धोंका कोटिग्राम* ही जैनोंका कुंड ग्राम मालूम होता है, ए दोनों नामोंमें शाब्दिक सादृश्यके अतिरिक्त उस ग्राम के पास 'ज्ञातृक'–[illegible] वंशके क्षत्रियोंका निवास स्थान और वैशाली नगरीकी निकटता होनेके कारण ये दोनों वस्तुएं 'कुण्डग्राम' और वही 'कोटिग्राम' होनेकी मान्यता पुष्ट हो जाती है।

(२) कोटिग्रामके पास ज्ञातृकोंका निवासस्थान, भगवान् महावीरके वंश 'ज्ञातृवंश' था यह और भी पुष्ट कर देता है, और साथ ही कुण्डग्रामके आस पास 'ज्ञातृक'–'ज्ञातृवंश' के आश्रित [illegible] 'स्थान' थे, और [illegible]

* [illegible] कोटिग्राम [illegible] पुस्तक [illegible] 'प्राचीनभारतवर्ष' [illegible] डा० त्रिभुवनदास [illegible]।

'ज्ञातृवंशी' क्षत्रिय रहते थे। यह इस विचारको और भी दृढ कर देता है। यह "ज्ञातृक" का उल्लेख और ये 'ज्ञातृक' भ० महावीरकी अन्य जातिवाले 'ज्ञातृ' क्षत्रिय ही होंगे यह कल्पना की ओर निर्देश करता है।

(३) 'ज्ञातृ' जाति लिच्छविओंकी एक शाखा थी* इस बातकी पुष्टिके लिए भी 'वैशाली के लिच्छवी क्षत्रिय महात्मा बुद्धको मिलने आए थे' इस उल्लेखसे पता चल जाता है कि भगवान् महावीर की माता भी लिच्छवि वंशकी ही थी और 'सिंह सेनापति' जोकि-भगवान् महावीर का श्रावक था वह भी लिच्छवि वंशका ही था। ये दोनों बातें ज्ञातृ जातिको लिच्छविओंकी शाखा का होना ही पुष्ट करती हैं।

(४) कुण्डग्रामके पास विदेहकी राजधानी वैशाली नगरी थी। इस नगरी का कुण्डग्राम एक शाखापुरके समान था। भ० महावीर प्रभुका "वैशालिक" नाम भी इस नगरके नाम से ही प्रसिद्ध था, विशाला नगरी में सिंह सेनापति नामका जो निर्ग्रन्थ श्रावक लिच्छवी रहता था वह भगवान् महावीर की उदारको न मानकर महात्मा बुद्धके पास गया था। इससे भी महात्मा बुद्ध वैशाली नगरमें आया था तब भगवान् महावीर प्रभु भी इसी नगरमें थे, यह स्पष्ट जान पडता है।

ऊपरके उल्लेख में जो **'ज्ञातिका'** शब्द लिखा गया है, उस शब्दका मूल बहुतोंने **'नादिका'** भी निकाला है, और उसका अर्थ 'इस नामके तालाबके तट पर बसा हुआ एक ग्राम' किया जाता है। मगर यह भ्रमपूर्ण है। इस प्रकार हर्मन जेकोबी‡ उसका मूल शब्द **ज्ञातिका** ही बताता है। और यह शब्द 'ज्ञातृवंश' के क्षत्रियों का वाचक है यह कह कर समर्थन करता है।

---

* प्रसिद्ध जैन तीर्थंकर महावीरकी माता भी लिच्छवी वंश की ही थी। 'भारतका प्राचीन राजवंश' पृ० १७८ देखकर विशेषस्वरूप यह।

‡ हर्मन जेकोबी की 'Sacred Books of The East' नामक ग्रन्थमें प्रकाशित 'आचारांग और कल्पसूत्र' नामक जैनसूत्रोंके अनुवादकी ..., पृष्ठ १०।

इस ज्ञातिका शब्द पर त्रिपिटकाचार्य श्रीयुत राहुलसांकृत्यायन ने इस पर विशेष प्रकाश डालाहै। उसने अपनी 'बुद्धचर्य्या' *नामक हिन्दी पुस्तकमें 'नादिका' का मूल शब्द "नातिका"-ज्ञातृका,, बताया है। और 'ज्ञातृक' शब्द ज्ञातृवंशके क्षत्रियोंका सूचक है यह सप्रमाण बताया है। वे आगे चलकर यह भी बताते हैं कि-ज्ञातृ जाति लिच्छवियोंकी शाखाथी। और वैशाली नगरीके आस पास ही रहने वालीथी। यह ज्ञातृ जाति आज भी वैशाली नगरी (जिला मुज़फ्फरपुरके अन्तर्गत है, बसाढके पास) के आस पास जथरिया नामक जातिसे पहचाना जाता है, यह जथरिया शब्द भाषाकी दृष्टिसे भी 'ज्ञातृ' शब्दके साथ गहरा संबध रखता है।

जथरिया शब्द 'ज्ञातृ' शब्दका अपभ्रंश शब्द प्रतीत होता है। 'ज्ञातृ' शब्दमेंसे जथरिया शब्दका अवतरण किस प्रकार होगया इसके विषयमें राहुलजीने भाषाकी दृष्टिसे निम्न प्रमाणसे विचार कियाहै। ज्ञातृ=ज्ञाति, ज्ञातृ-ज्ञातर-जातर-जतरिया-जथरिया-जेथरियाके गाँवमें नादिका-ज्ञातृका-नतिका-रतिका-रती जिसके नामसे वर्तमान रती पर्गना (जि० मुजफ्फरपुर) है। बुद्धचर्य्या २९. पृ०।

इस प्रकार 'जथरिया' शब्द 'ज्ञातृ'का अपभ्रंशहै राहुलजी इस रती पर्गना का मूल नाम अपने उपरोक्त उल्लेखमें आए हुए 'नादिका' शब्द से उत्पत्ति बताते हैं।

---

* उस समय बडी भारी निगंठोंकी परिषद (जैन साधुओंकी जमात) के साथ निगंठ नातपुत्त (महावीर) नालन्दामें ही निवास करते थे।

(१) 'नातपुत्त'-'ज्ञातृपुत्र लिच्छविवंशकी एक शाखा थी। जो वैशाली के आस पास रहतीथी। ज्ञातृस से वर्तमान जथरिया शब्द बना है। महावीर और जथरिया दोनोंका गोत्र काश्यप है। आज भी जथरिया भूमिहार ब्राह्मण इस प्रदेशमें बहु संख्यक हैं। उनका निवास स्थान रतनी भी ज्ञातृ-नती-रतनी-स्थान बना है।

१११ बुद्ध [illegible]

ज्ञातृ-वंश और उनके जीवनके सम्बन्धका बहुतमा अज्ञानान्धकार जो कि भाने आसपास फैल गया है यह अन्धकार दूर हो जायगा ॥

गुजराती अनुवाद—पोतानी तेमज अन्यनी पूर्ण उन्नति तथा भलाईने माटे जे परोपकार दृष्टिथी आपवामां आवे तेने 'दान' कहे छे, अथवा वस्तुपरथी पोतानो अधिकार छोडी दईने बीजा कोईने अधिकार आपवो ते पण 'दान' कहेवाय छे, परन्तु अहीं तो श्रद्धा अने प्रतीतिनी साथे भक्ति-भाव पूर्वक परिग्रह परनो ममत्व-भाव छोडीने कर्मोनी निर्जरा खातर अनुकम्पाथी तथा मन-वाणी-कायनी शुद्धि सहित फलनी इच्छा वगर दाता जे प्रासुक अने पवित्र वस्तु आपेछे तेने 'दान' कहे छे ।

ते दानना चार प्रकार—अन्नदान-औषधदान-अभयदान अने ज्ञान-दान, ए दानोंमा प्राणिओनो भय दूर करी तेने सर्वथा निर्भय करवा ते सर्वोत्तम दान मनाय छे । अने आ मानवदेहमां दश प्राण छे, तेथी 'प्राणी' कहेवाय छे, जीवित रहेवानी इच्छा अथवा जीवित रहेवानो तेनो स्वभाव होवाथी तेनुं नाम 'जीव' पण छे, अने ए दश प्राण द्रव्य प्राण छे, अने ज्ञान-दर्शन-सुख-शक्ति रूप अनन्त-चतुष्टय भाव प्राण छे, वास्तविक रीते सर्व कालमां आ प्राणोथी सदा आ जीव जीवित छे, सर्व जीवो जीववानी इच्छा राखे छे, मरवु कोई इच्छतो नथी, तेथी जीवित रहेवानी इच्छावाळाने अभय दान दईने तेनु सर्वप्रकारे रक्षण करवु श्रेष्ठ छे । कोईने गमेता तिसी अभयदान पण आप्युं होत तो आ जीवनी मोक्ष थई जात, परन्तु आत्माने ज्ञानदान न मळवाथी पोताने जीववानु स्वार्थ राख्यु, बीजा जीवोने पण जीववुं प्रिय छे ए मान भुलावी दीधु । कोइए कह्यु पण छे के—

"जे रीते मने मारु जीवन प्रिय छे, तेमज अन्य जीवोने पण पोतानु जीवन प्रिय छे, मार्गमां रहेनार [illegible] [illegible] कीडा, महलमां वसनार भूपति तेमज झुपडीमां रहेनार गरीब [illegible], ए दरेक जीववु इच्छे छे, तेथी समजीने थोड पण प्राणीना [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

अहिंसा परम धर्म छे [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

तदुपरान्त 'योगशास्त्र' ना व्यासकृत भाष्यमां अहिंसानी व्याख्या आ प्रमाणे करवामां आवी छे। के "सर्वदा सर्वप्रकारना जीवोनी साथे कदी पण द्रोह न करवो ते अहिंसा छे।

याज्ञवल्क्य-स्मृतिमां कह्युं छे के मन, वचन, कायथी कोईने पण क्लेश न पहोंचाडवो ते ज 'अहिंसा' छे।

अहिंसा-सत्य-आज्ञा विना पर वस्तु न लेवी, आत्माने पवित्र राखवो, इन्द्रियोनुं दमन करवुं, दया पाळवी, मनोविकारना प्रवाहने रोकवो, शान्तिमय जीवन जीववुं, ए बधाने धर्मसाधन बताववामां आव्युं छे।

यजुर्वेद-तेमां पण उपदेश आपवामां आव्यो छे. के-हे पुरुष! तुं जगतना कोई पण प्राणीनी हिंसा करीश नहि। "मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे" १८-२, पोतानी आंखोथी सर्वने मित्र दृष्टिए जोवा जोइए। शत्रु जेवी दृष्टि कोईना पर पण न करवी।

मनुनो पांचमो अध्याय-"जे मनुष्य पोताना कल्याणनी तो इच्छा प्रगट करे छे, परन्तु प्राण भूत जीवोनी हिंसा करे छे ते जीव आ लोकमां, अने मरीने परलोकमां क्यारे पण सुख मेळवी शकशे नहि।

दशधर्म-"धैर्य धारण करवुं, शान्ति राखवी, आत्माने पापथी विरक्त बनाववो, चोरी न करवी, आन्तरिक पवित्रता राखवी, इन्द्रियोने वश करवी, सत्य बोलवुं, क्रोध न करवो, अहिंसानुं पालन करवुं, आरंभ अने परिग्रहने मुकवा ए प्रकारे धर्मना दश लक्षण बतावेला छे।"

महाभारत-"आ हुं सत्य कहुं छुं के [illegible] धर्म अहिंसा छे अने ते प्रधान छे, अने हिंसा करवी [illegible] पाप छे।

अहिंसाध्ययनासूत्र [illegible] दमन छे, अहिंसा [illegible], अहिंसा [illegible], अहिंसा [illegible] अहिंसा एज [illegible]

[illegible] सर्वमां अनेक [illegible] नहि, तात्पर्य के सर्व [illegible]

मारायी प्रतिकूळ सारुं नथी लागतुं त्यारे बीजाओने तेमने प्रतिकूळ क्यांथी सारुं लागे ?

"बधाने पोतानो प्राण प्रिय छे राज्य नहि"–पोताना प्राण बचाववानी खातर इष्ट मित्र अने राज्यने पण तृणनी समान छोडी दे छे, तेथीज कोईना प्राणनो नाश करवाथी जे पाप थाय छे. ते समस्त पृथ्वीनुं दान करवा छतां दूर थई शकतुं नथी।

मरनारने भले राज्य आपो के सुवर्णना पहाड अर्पण करो परन्तु जीवतरनी पासे ते वस्तुओनो कंइ हिसाब नथी। तेथी ते सर्वने छोडीने जीवता रहेवानी अपील करे छे।

"जरा कांटो पगमां लागे छे तो ते आखा शरीरमां भारे पीडा करे छे तो जे निरपराध जीवोने मोतने आरे पहोंचाडी दे छे, ते मरनारना दुःखोनी वेदना अनिर्वचनीय छे।"

"अशरण, निरपराध, दुर्बलप्राणी बलवानना हाथे मराय छे, ते क्यांनी नीति ! हाय ! कष्टनी साथे अमारे कहेवु पडे छे के जगत्मां अराजकता व्यापी गई छे, त्यां न्यायने स्थान क्याथी मळे, जो कोई कोईने समझावे छे 'तुं मरी जा' एम सामळनार पण आ सांभळतां ज कंपी उठे छे, शरीर भयभीत अने दुःखी थई जाय छे। तो जे बीजाने कठोरता पूर्वक शस्त्रथी मारे छे त्यारे तेनी शी दशा थती हशे ! तेना दुःखना अनुभव वगर तेनुं वर्णन कोण करी शके ?"

"हाथनुं कपावुं सारुं छे, पण वगरना रहेवामां पण कंइ खराबी नथी, पण शरीरना सम्पूर्ण अगोने प्राप्त करवा छतां 'हिंसकपुरुष' कोई कामनो नथी।"

स्वार्थ साधवानी हिंसा पण हानिकारक छे–"विघ्ननी शान्तिने माटे करेली हिंसा पण विघ्नने माटेज थाय छे। घणाओ एम कहां ये छे केअमारा कुळनो आ रिवाज चाल्यो आवे छे। परन्तु ते कुळनु जगाय भर्ई करी शकतो नथी। ते कुळना नाश माटेज थाय छे शान्तिने माटे नहि। पोताना वंशमां परम्परागत चालती आवेली हिंसाने जे प्राणी छोडी दे छे, अने शुद्ध आत्मा बने छे ते 'कालसूर कसाई' ना पुत्र 'सुलस' नी पेठे मनुष्योमां पवित्र अने श्रेष्ठ बने छे।'

"पोतानुं जीवन सर्व कोईने बधी वस्तुओ करतां अधिक प्रिय छे, जेम कह्युं छे के-"जो मरनारने एम कहेवामां आवे के तुं एक करोड सोनामहोर लईने तारो जीव दई दे। त्यारे ते धनना ढगलाने छोडीने जीववानी आशा प्रगट करशे। कारणके जीव गया पछी तेने माटे धन शा कामनुं? सर्वने जीववुं वहालुं लागे छे। तेथी सर्व दानोमां अभयदान श्रेष्ठ छे।

अभयदान पर उदाहरण–वसन्तपुरमां अरिदमन नामे राजा राज करतो हतो, ते पोतानी चार राणिओ साथे आनंद भोगवतो। एक दिन ते राणिओए गावुं, बजाववुं नाचवुं शरु कर्युं। राजा तेमनी गांधर्व विद्या उपर प्रसन्न थई गयो अने बोल्यो के "आजे तमे जे कंई मागशो ते हुं आपीश।" राणिओए जवाब आप्योके अत्यारे तो अमने कोई पण वस्तुनी आवश्यकता नथी, पण यथा समय ऊपर मागी लइशुं, अमने आपेल वरदान हमणां आप जमा राखो, राजाए कह्युं "बहु सारुं"

एक वार राणीओए एक चोरने जोयो के जेने लाल कणेरनां फूलोनो हार पहेरावीने वध्यभूमि तरफ लई जवामां आवतो हतो। राणीओनी साथे राजा पण महेल पर टेलतो हतो। चोरने जोईने राणीओए राजाने *पूछ्युं के प्रजानाथ! "आणे शो अपराध कर्यो छे?" राजाए एक सिपाईने* बोलावीने पूछ्युं। तेना जवाबमां तेणे कह्युं के-पृथ्वीनाथ! तेणे चोरी जेवुं राज्य तेमज धर्मविरुद्ध अकार्य कर्युं छे, तेथी आपेज तेने प्राणदंडनी शिक्षा फर्मावी छे।

ते सांभळीने तेमानी एक राणीए कह्युं के न्यायवल्लभ! आप मने मारुं वरदान आपो के तेने एक दिवसने माटे जीवनदान आपवामां आवे, के जेथी हुं तेना पर कांइक उपकार करी शकुं" राजाए कह्युं "तथास्तु"

राणीए तेने महेलमां बोलावी कह्युं के "तने आजने माटे बचावी लीधो छे माटे खा पी ने मोजकर" एम कहीने अन्न वस्त्रथी तेनुं स्वागत करवामां आव्युं। सवार थता तेने १००० दीनार आपीने विदाय करवामां आव्यो।

ए रीते बीजी अने त्रीजी राणीए पण एक एक दिवसनु जीवित दान दईने अनुक्रमे एक लाख अने एक करोड सोनामहोरनु दान आप्यु।

पण चोथी राणीए तेने कंइ पण आप्या वगर तेने प्राण दंडनी सजा राजानी पासे क्षमा करावी दीधी। ए सांभळीने ते राणीए कह्युं के "हवे तो हुं

अनुभवगम्य छे, तेनो निषेध करवो ते सद्भूतनुं अपलाप नामे मिथ्यावचन छे, आत्माने श्यामाक तंदुल-सामकना चावलनी जेम नाना प्रमाणवाळो बतावो अथवा अंगुठाना टेरवा बराबर समजवो अथवा एम कहेवुं के ते रक्त वर्णनो छे। निष्क्रिय छे, वगेरे सर्व वचन अभूतोद्भावन नामे असत्यवचन छे, कारणके आ जातना वचनो द्वारा आत्मानुं जे वास्तविक स्वरूप नथी तेनो उल्लेख करवामां आवे छे। अर्थान्तर-एटले भिन्न अर्थ, एक पदार्थने अन्य रूपे बताववो, वास्तविक न कहेवो, ते अर्थान्तर छे। जेम कोई गायने घोडो कहे, अने घोडाने गाय कहे, जइने ईश्वर कहे अने ईश्वरने गुलाम कहे। ते-अर्थान्तर नामे असत्य कहेवाय छे।

गर्हा-एटले निन्दा करवी, तेथी जेटला निंद्य वचनो छे तेने बधाने गर्हित नामे असत्य वचन समजवां जोइए, जेमके "आने मारी नाखो !" "मरी जा" "आने कसाईने सोंपी दो" विगेरे हिंसामय वचन बोलवां तेमज मर्म भेदी-मनने दुःख थाय तेवा अपशब्द कहेवा, गाळो देवी, कठोर वचन कहेवां, तुच्छ शब्दो वापरवां, पैशून्य-कोईनी चुगली करवी, वगेरे गर्हित वचन कहेवाय छे। जो ते गर्हित वाक्य कदाच सत्य पण होय, छतां ते असत्य मनाय छे कारण के ते निन्द्य छे। प्रमाद सहित जीवना वचनो पण असत्य मनाय छे, प्रमाद युक्त कहेला वचन असत्य होय छे, अने प्रमाद रहित कहेवामां आवेल असत्य वचन पण सत्य होइ शके छे, जेवी रीते कोई रोगीबाळकने पतासामां दवा राखीने आपता कहे छे के आ पतासुं छे।

सत् शब्दना बे अर्थ थाय छे, विद्यमान तेमज प्रशस्त-तेथीज असत् शब्दना अविद्यमान अने अप्रशस्त ए बे अर्थ लेवा जोइए। सद्भूत-निन्हव-असद्भूतोद्भावन तेमज अर्थान्तर ते अविद्यमान अर्थ दर्शावनार होवाथी असत्य छे। गर्हित वचन अप्रशस्त होवाथी असत्य छे तेमज प्रमादनो सवन्ध पण बंनेनी साथे छे,

ते सिवाय कषाय असत्यनुं निमित्त बने छे। कषायनो उदय थतां असत्यनो प्रयोग अवश्य करवामां आवे छे। तेथी क्रोध मान-माया-लोभ-राग-द्वेष-मोहादिने लीधे असत्य बोलवानो त्याग करवो, तेने सत्य अणुव्रत कहे छे।

गृहस्थीमां-कठोर शब्द वापरवा-चुगली करवा-अप्रशस्तवचन कहेवां-असत्य शब्द बोलवानुं अनिवार्य थई जाय छे। त्यारे बीजुं अणुव्रत स्वीकारवुं छे त्यारे आने आ संभवित प्राप्त थाय छे।

असत्य बोलवानुं निकृष्ट परिणाम—जुठुं बोलनार मरीने मुंगो बने छे, अथवा तेने मूक गतिवाळो जीव बनवु पडे छे, ते स्पष्ट बोली शकतो नथी। कोईने तेनी सम्मति पण प्रिय लागती नथी। मुख रोगथी पीडाय छे, आ बधु जुठुं बोलवानु दुष्ट परिणाम जाणीने कन्यादि सम्बन्धी असत्य कदी पण न बोलवुं जोइए। असत्य बोलनार मूर्ख-विकलांग-वाणी हीन थाय छे। तेनी वातो सांभळतां लोकोने तिरस्कार थाय छे। अने तेना मुखमांथी दुर्गन्ध नीकळे छे। जे लोक विरुद्ध छे, जेथी विश्वासघात थाय छे। जे पुण्यनुं प्रतिपक्षी छे, तेवुं वचन क्यारेय पण न बोलवुं जोइए। जे जूठ बोले छे तेनामां तुच्छता आवे छे, ते पोताने छेतरे छे, अधोगति (नरक) मां जाय छे, तेथी जूठ सदा वर्जनीय छे। जूठ प्रमादथी पण न बोलवु जोइए, कारण के हितकार्यरूपी कपास असत्यरूपी आंधी थी पडी जाय छे। भूत-भविष्यत्-वर्तमाननी वातोनु पूर्ण ज्ञान न होय तो 'ते आम हशे' एम न कहेवु, जे वातमा शंका होय ते न कहेवी, जो त्रणे काळनी वातोमा तद्दन निश्शंक पणुं होय तो कहेवी। असत्य बोलवाथी वैर विरोध वधे छे, पोल खुली जवाथी पस्तावो थाय छे, कोई तेना पर विश्वास करतु नथी, बदनामी थाय छे, कुपथ्यना सेवननी पेठे अनेक दु:खो जूठ बोलवाथी थाय छे। जूठ बोलनार नरक-निगोद-अने पशु योनिमां जन्म मरण करे छे। थोडु असत्य बोलनार पण नरक निगोदमा जाय छे। ज्ञानिओए ज्ञान अने चारित्रनु मूल सत्यज बताव्यु छे, सत्यवादिओना चरण रजथी पृथ्वी पवित्र थाय छे। जे हमेशा सत्य बोले छे तेने भूत-प्रेत-सर्प-सिंह-कइ पण करी शकता नथी। साधु मुद्राधार, जटा धारण, नग्नावस्था धारण करीने साधु वेश पहेरीने, अथवा तपश्चर्या करीने [illegible] असत्य [illegible] तेने [illegible] पण वधु [illegible] समजवो। [illegible]

जन्म प्राप्त करीने पण असत्य बोले छे, ते संसार रूपी सागरनो पार केवी री
पामी शके !" "जेनां नाक-कान-हाथ कपायेलां होय, रूप रंगनु नाम पण
होय, दरिद्री तेमज रोगी होय, कुल-जाति अने वर्ग थी हीन होय, तो
थयुं ? तेनुं तो भूषण सत्य छे, सत्यथी पवित्र तेमज शुद्धी बनी शके छे, तेन
शोभा सत्यथी छे ।" "जे पुरुष असत्य-कालिमाथी मलिन छे, तेनो साथ पा
रूपी-चाळाशना भयथी कोई पण धर्मज्ञ पुरुष स्वप्नमां पण करतो नथी ।
"जूठानी संगतिथी साचो पण कलंकित थाय छे, जेम मेला लूगडानी संगति
स्वच्छ अने निर्मळ गंगाजलने पण दंडनु प्रहार सहवु पडे ।" "पुत्र-स्वजन-
धन तेमज मित्रो विमुख बने, वा चाल्या जाय, तेमज प्राणनाश थाय छ
असत्य न बोलवु जोइए । इत्यादि वचनामृतोनुपान करी जे कोई पाप रहि
तेमज श्रेष्ठ सत्य बोले छे, ते जगत् प्रधान पुरुष छे ।"

तपमां श्रेष्ठ तप कयो ? सत्यनी पेठे सर्व प्रकारना इच्छा निरो
तपमां नव विधि ब्रह्म-गुप्तिए गुप्त एवो ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ छे । सुन्दर स्त्रीओना मनोह
अंगोने जोईने तेनी साथे रमण करवानी जे इच्छा चित्तमां उत्पन्न थायछे, तेन
त्यागी देवी, अथवा वेद नामे नो-कषायना तीव्र उदय थी मैथुन सेवननी
इच्छा उत्पन्न थाय छे तेनो नाश करवो ए ब्रह्मचर्य व्रत छे । तेने स्पष्ट कर
माटे सत्पुरुषो कहे छे के हे कामी-पुरुष ! अनुपम-सहज-परमानंद रूप नि
स्वरूपने छोडीने अति सुन्दर स्त्रीजनोना शरीर आदिना रूपने मनमां शा मा
याद करे छे, अथवा तेना मोहमां शा माटे फसाय छे ।

अब्रह्मचर्यना दोष—स्त्री संभोगथी सन्ताप थाय छे, पित्त वधे छे
क्षय ज्वर उत्पन्न थईने शरीरनु नाश करे छे, क्रिनाक्लिनने भुलावी दे छे, शरी
निःसत्व बनी जाय छे । तृष्णाला बंधनमां फसाई पडे छे, तेथी कामेच्छा अने
ज्वरमां जरा पण अन्तर नथी । आ दोषो जाणीने जो सर्वथा शीलनु पाल
शक्य न लागे तो गृहस्थे पोतानी विवाहित स्त्रीमां सन्तोष राखवो, कारणके
आ प्रतिज्ञा थी पण अनेक प्रकारना इच्छानु मर्दन थाय छे कथु पण छे के
स्वस्त्रीमां सन्तुष्ट रहनार अन्य स्त्री सम्बन्धी कारण पण इच्छा न करनार
पण सदर्शनशाहनी पेठे अद्भुत [illegible] थाय छे । [illegible] सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य
पाळनार ब्रह्मचारीना [illegible] तेनो प्रभाव अवश्य छे
अने [illegible] पर [illegible] कष्टोमां, सभ तेहनी आगळ

(१) जेमके शरीर शणगारवुं, (२) पुष्ट पदार्थेनुं सेवन करवुं, (३) गावुं, बजाववुं, जोवुं, सांभळवुं, (४) स्त्री संसर्ग करवो, (५) स्त्री संबंधी संकल्प विकल्प करवा, (६) स्त्रीना अंग उपांग जोवा, (७) तेने जोवाना विचारो करवा, (८) पूर्वकृत भोगोनु स्मरण करवुं, (९) भविष्यना भोगोनी चिन्तवणा करवी, (१०) वीर्य स्खलन करवु,

आ दश भेद मैथुनना छे, ब्रह्मचारीने माटे ते सर्वथा त्याज्य छे।

"जेवी रीते किंपाक फळ देखवा-सुंघवा मां रमणीय छे, पण परीणामे हालाहल झेर समान छे, तेवीज रीते मैथुन पण थोडा वखत माटे रमणीय-सुंदर अने सुखदायक मालुम पडे छे, परन्तु परिणामे अत्यन्त भयप्रद नीवडे छे।" "जे पुरुष कामभोगोथी विरक्त बनीने सदा ब्रह्मचर्य पाळे छे, तेणे भावशुद्धि माटे दश प्रकारना मैथुननो त्याग करवो जोइए, केम के आ दोषोना त्याग कर्यां वगर भावशुद्धि-निर्मळता थती नथी, भावज कामना वेगने रोकी शके छे, वळी पण छे के-

"सर्प करडेल माणसने सात वेग होय छे, परन्तु काम रुपी सर्पथी डसायेल जीवने दश महा भयानक वेग होय छे, ते नीचे मुजब छे।

(१) कामना उद्दीपनथी चिंता उत्पन्न थाय छे, के काम भोगनी क्यारे प्राप्ति थशे, (२) जोवानी इच्छा उत्पन्न थाय छे, अने निःश्वास मूके छे (३) अफसोस करे छे, के त्यांने कोई पण न शरमाइ। (४) ज्वर आवे छे, तापमान वधे छे, (५) शरीर बळवा लागे छे, दाह उपजे छे (६) भोजननी रुचि नथी रहेती, (७) महा मूर्च्छा उत्पन्न थाय छे, जरा पण चेन रहेतु नथी, (८) उन्मत्त बनी जाय छे, जेम तेम बकवाद करे छे। (९) प्राण चाल्या जवानी शंका रहे छे। (१०) मृत्यु पण थई जाय छे।

काम वासनाथी घेरायेलो जीव यथार्थ तत्व वस्तु स्वरूप समजी शकतो नथी, ज्यारे लोक व्यवहारनु ज्ञान पण नाश पामे छे [illegible] परमार्थनुं ज्ञान तो क्यांथी थाय ? वळी वस्तीमां तेनु मन अस्थिर बनी जाय छे।

"जेने काम रुपी कटक [illegible], ते वेश्याओमां, भरवामां, नाटकशाळाओ, फरवानां, [illegible] अस्थिर बना [illegible]। [illegible] पुरुष चतुर होय [illegible] बनी [illegible] अने [illegible] बने छे, [illegible] अने [illegible] बने छे।"

नगरीमां थी त्या महात्मा-बुद्धने अंबपाली नामे वेश्या अने लिच्छवि क्षत्रिय मळवा आव्या हता, कोटिग्राममां महात्मा बुद्ध ज्यां 'नातिका' ज्ञातृक लोक रहेता हता, त्यां गया हता, अने त्यां 'नातिक' (ज्ञातृक) लोकोना ईंटोना घरमां हता। ते स्थाननी पासेज 'अम्बपाली' वन नामे उद्यान हतु जे अम्बपालीए बुद्ध अने तेमना संघने समर्पण करेल हतु। त्यांथी महात्मा बुद्ध वैशाली गया अने त्यां सिंह नामे सेनापति के जे निग्रन्थोनो श्रावक हतो, तेने पोतानो अनुयायी बनाव्यो। सिंह सेनापति महात्मा बुद्धने मळवा जता पहेलां 'निग्रन्थ' ज्ञातृपुत्र महावीर प्रभुनी पासे अनुज्ञा लेवा आव्यो हतो। त्यारे भगवान् महावीरे सिंह सेनापतिने "तु क्रियावादी होवा छतां अक्रियावादी श्रमण गौतमने मळवा शा माटे जाय छे ?" एम कहीने न जवानु कह्यु हतु। पण ते पोतानी इच्छानुसार श्रमण गौतमनी पासे गयो अने त्यां ते श्रमण गौतम बुद्धनो अनुयायी बन्यो।

ऊपरना उल्लेखथी आपणा विषयने पुष्ट करनारी चार वात विशेष प्रकारे जाणवानी मळे छे।

(१) बौद्धोनु 'कोटिग्रामक' (बौद्ध ग्रन्थोमां 'कुडग्राम' नु नाम 'कोटि-ग्गाम' अने भगवान् महावीरना 'ज्ञातिपुत्र' ने बदले 'नातिपुत्त' लखेल छे। जुओ "भारतना प्राचीन राजवंश" पानु ६० लेखक विश्वेश्वरनाथ रेउ) जैनोनु कुंड ग्राम जणाय छे, आ बन्ने नामोमां शाब्दिक सरखापणु छे। ते उपरान्त ते गामनी नजीक ज्ञातृक=ज्ञातृवंशना क्षत्रियोनु निवासस्थान अने वैशाली नगरीनु नजिकपणु होवाने लीधे 'कुडग्राम' अने 'कोटिग्राम' बन्ने एकज होवानु नक्की थाय छे।

(२) कोटिग्रामना पास ज्ञातृओनु निवासस्थान भगवान महावीरनो वंश ज्ञातृवंश हतो, ते वातनी पुष्टि करे छे। तेमज कुंडग्रामनी आसपास ज्ञातृक= ज्ञातृवंशना क्षत्रियोना रहेठाण हता। अने आ ज्ञातवंशी क्षत्रियो रहेता हता, ते आ वातनुं समर्थन करे छे। आ ज्ञातृक लोको उपरना विचारनो निर्देश करे छे के आ ज्ञातृक भगवान महावीरना वंशनी जातिना ज होवा जोइए।

(३) ज्ञातृ जाति लिच्छवि जातिनी एक शाखा हती। प्रसिद्ध जैन तीर्थंकर महावीरना माता पण लिच्छवि वंशना हती (जुओ भारतना प्राचीन राजवंश पानु २००) आ वातनी पुष्टि वैशालीना लिच्छविओए महात्मा बुद्धने मळवा आव्या हता ते उपरथी मळे छे। भगवान् महावीरना माता त्रिशला लिच्छवि वंशना हता, अने सिंह सेनापति के जे भगवान महावीरनो श्रावक

क्षत्रियोनो सूचक छे, एम सप्रमाण बताव्युं छे, आगळ ऊपर वळी तेओ एम पण बतावे छे के 'ज्ञातृजाति' लिच्छविओनी शाखा हती। अने वैशालीनी आजुबाजुमां रहेती हती, आ ज्ञातृजाति आजे पण वैशाली नगरी [जिल्ला मुजफ्फरपुरनी अंदर वसाडनी पासे छे] नी आसपास जथरिया नामे जाति वसे छे, आ जथरिया शब्द भाषा दृष्टिए पण ज्ञातृशब्दनी साथे गाढ संबन्ध धरावे छे।

जथरिया शब्द 'ज्ञातृ' शब्दनो अपभ्रंश जणाय छे, ज्ञातृमांथी 'जथरिया' शब्द केवी रीते बनवा पाम्यो ते संबंधमां भाषा दृष्टिए उक्त राहुलजीए नीचे मुजब विचार कर्यो छे।

ज्ञातृ=जाति, ज्ञातृ=ज्ञातर-जातर-जतरिया-जथरिया जथरियाना गाममां 'नादिका'=ज्ञातृका=नतिका-लतिका-रतिका-रत्ती जे नामथी वर्तमान रत्ती परगणा [जि॰ मुजफ्फरपुर] छे। बुद्धचर्या पानुं ५२८ ॥

आ रीते 'जथरिया' शब्द 'ज्ञातृ' नो अपभ्रंश छे। राहुलजी आ रत्ती परगणानुं मूल नाम पोताना उपरोक्त उल्लेखमां आवेल 'नादिका' शब्दथी उत्पन्न थयेलुं बतावे छे।

आ प्रकारे 'जथरिया' अने तेमनुं स्थान रत्ती ए बंने शब्द ज्ञातृ शब्दनी साथे गाढ संबंध धरावे छे, अने आ संबंधथी जथरिया ज्ञातृक=ज्ञातृवंशीय छे, अने तेमनुं प्राचीन निवासस्थान के जे नादिका अथवा नातिका नामथी ओळखाय छे ते वर्तमान रत्ती परगणुं छे, एवो राहुलजीनो दृढ अभिप्राय छे। वळी तेमना आ अभिप्रायमां बीजीवात ए पण छे के आ 'जथरियानुं' मूळ गोत्र काश्यप छे, ते काश्यप गोत्र भगवान् महावीर अने तेमना ज्ञातृवंशी क्षत्रियोनुं पण हतुं।

आ जथरिया ज्ञातृ वंशी क्षत्रियोना संबंधमां श्रीराहुलजी जणावे छे के आ 'जथरिया' लोको वर्तमानमां [illegible] कहेवाय छे, एओ दान लेता नथी, [[illegible]] [illegible] पण दान नथी लेती ते देशमां [illegible] [illegible] आवश्य होय पण [illegible] अने जो जथरिया [illegible] परन्तु बीजा लोको एमने [illegible] नथी [illegible] के [illegible] तथा क्षत्रियोमां

सदुपदेशदानाद्वा महावीरः सत्त्वाधार इति, अथवा पृथ्वी सर्वसहा, एवं भगवानपि परिषहोपसर्गान् सम्यक् सहते, कर्मरजांसि धुनोति दूरीकरोतीति भावः, अष्टविधं कर्मापनयति वेति शेषः । तथा विगता मणष्ठा सबाह्याभ्यन्तरेषु वस्तुषु गृद्धिर्लिप्सा वा गार्ध्यं, तृष्णा भरमभिलाषो यस्य स विगतगृद्धिः । तथा सन्निधानं सन्निधि· स च द्रव्यसन्निधिः संचयः । धनधान्यद्विपदचतुष्पदरूपो द्रव्यसन्निधिः, भावसन्निधिस्तु कषायविषयादयो वा, सामान्येन कषायास्तुभयरूपमपि सन्निधिमथवेन्द्रियजन्य विषयं तत्र करोतीति भावः । "सनिधाने,=अन्तिके, इन्द्रियगोचरे, सन्निधिरिति शब्दार्थचिन्तामणिः"। "सन्निधिः संनिधानेऽपि पुमानिन्द्रियगोचर इति मेदिनी" । "पच्चक्खे सन्निधाने च, सन्निधि परिकित्तितो, इत्यभिधानप्पदीपिका" । भगवान्न करोतीन्द्रियगोचरं विषयं प्रगटं प्रत्युत नाशयतीति भाव· । वीरस्तथैवाशुप्रज्ञः सर्वत्र सदोपयोगात्र छद्मस्थवत्मनसा पर्यालोच्य पदार्थपरिच्छित्तिं विधत्ते करोति । छादयते स्वात्मरूपमनेनेति छद्म, तन्मध्ये तिष्ठतीति छद्मस्थो हि स केवलज्ञानरहितो भवति । परन्तु भगवान् सर्वज्ञ· । स एवभूतः समुद्रमिव महाभवौघं संसारसमुद्रं समुत्तीर्य तीर्त्वा, बहुदुःखाकुलं चातुर्गतिकं संसारसागरं तीर्णं सर्वोत्तमं निर्वाणमासादितवान् । अभयं प्राणिनां प्राणरक्षानुकूलं व्यापारं स्वतः परतश्च सदुपदेशदानात्करोतीत्यभयंकरश्च, भयोपपदात्करोतेः 'मेघर्तिभयेषु कृञः' इति 'खच्' प्रत्यये सिद्धत्वात् अभयंकरशब्दस्य नेति सुमागम । तथाऽष्टविधकर्मविशेषेरयति, प्रेरयति कम्पयति, दूरीकरोतीति वीरः । तथा अनन्तपर्यवसानं नित्यं ध्रुवं ज्ञेयानन्तत्वात् चाऽनन्तं चक्षुरिव चक्षुः केवलज्ञानं यस्य स तथोक्तः ॥ २५ ॥

लिया है। और अब केवल ज्ञानरूप अनन्तचक्षुयुक्त हैं। और वह चक्षु सर्व अनन्तरूप है। प्रभुकी अनन्त ज्ञानरूप लक्ष्मी इसीसे अपार है ॥ २५ ॥

गुजराती अनुवाद—ते भगवान् महावीर प्रभु पृथ्वीनी पेठे सर्व प्राणीओने आधारभूत छे, अने पोताना पवित्र उपदेशथी सर्वनो भय दूर करनार छे, अथवा पृथ्वीनी जेम सर्व प्रकारना प्रकार परिषह तेमज उपसर्ग सहनशील रीतथी सहन करनार छे, आठ कर्मरूपी रज मेलनो नाश करीने निर्लेप थया छे। बाह्य तेमज आन्तरिक सर्व तृष्णा अने आशानो तेमणे नाश कर्यो छे, तेथी कोई पण पदार्थमां तेमने आसक्ति रही नथी, हवे तेओ द्रव्यथी समारोपयोगी वस्तुओ अने भावथी इन्द्रिय विषयो तेमज कषायनो संग्रह करशे नहि, तेओए इन्द्रिय विषयोनो सर्वथा नाश कर्यो छे, तेओ सर्वज्ञ होवाथी छद्मस्थनी पेठे विचार करीने बोलवानी तेमने आवश्यकता नथी, कारणके तेमने हस्तामलकवत् त्रिलोकनुं आत्मज्ञान प्राप्त थयुं छे, तेमज वळी संसारसमुद्रनो पार पामी सुन्दर निर्वाण प्राप्त कर्युं छे, के ज्यांथी पुनरागमन करवुं नहि पडे। वीरना पूर्वे अष्टकर्मनी अनन्त कर्मवर्गणाओनो अत्यन्त अभाव कर्यो छे केवलज्ञानयुक्त छे, ते सर्व अनन्तरूप छे। प्रभुनी अनन्तज्ञानरूपी लक्ष्मी अपार छे ॥ २५ ॥

मूल

कोहं च माणं च तहेव मायं,
लोभं चउत्थं अज्झत्थदोसा।
एआणि वंता अरहा महेसी,
ण कुव्वइ पाव ण कारवेइ ॥ २६ ॥

(संस्कृतच्छाया)

क्रोधं च मानं च तथैव मायां, लोभं चतुर्थमध्यात्मदोषान्।
एतान् वान्त्वा अर्हन्महर्षिः करोति पापं न कारयति ॥ २६ ॥

स० टीका—[illegible]
[illegible]
[illegible]

च उप्फाति" "गब्बोऽभिमानोऽहंकारो" इत्यभिधानप्पदीपिका"। मायां छद्मत्वं कपटं, "माया तु संवरीत्यभिधानप्पदीपिका" । लोभं पुद्गलवस्तुसंचयव्यापारं "अभिज्झा वनथो वानं, लोभो रागो इत्यभिधानप्पदीपिका" । वान्त्वा त्यक्त्वा वा एतान् दोषान् कषायानात्मदोषान् परिहायाऽसौ भगवान् महर्षिर्जिनस्तथा स्वयं पापनाशत्वं, "पापं, च किब्बिसं, वेराऽघं दुच्चरितं, दुक्कतं, अपुञ्ञाऽकुसलं, कण्हं, कलुसं, दुरिताऽगु च" । अथवा पापमपराधं "पापापराधेसु" अथवा पापं कर्मपंकं "पापे च कद्दमे" । अथवा पापं युद्धं चापि, "पापे युद्धे रणे" अथवा पापं कलिः कलहं "पापे कलि" । वा पापं वैरं चापि "पापे च पटिघे वेरं" "इत्यादीन्यभिधानप्पदीपिका" । न करोत्यन्यैर्न कारयतीत्येते कषायदोषास्त्वपि हितमिच्छंस्त्याज्या एव, यथाह सिद्धान्ते–

"कोहं माणं च मायं च, लोहं च पाववड्ढणं,
वमे चत्तारि दोसे उ, इच्छंतो हियमप्पणो" ॥ ३७ ॥

इमे चत्वारः कषायाश्चतुरो दोषान् समुत्पादयन्ति, यथा–

"कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो,
माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्वविणासणो" ॥ ३८ ॥

एतानात्मदोषानेतः प्रयत्नैरपनयेत् ॥

"उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे,
मायमज्जवभावेन, लोहं संतोसओ जिणे" ॥ ३९ ॥

नो चेत्संसारे परिभ्रमणं, यथा–

"कोहो अ माणो अ अणिग्गहीआ, माया अ लोभो अ पवड्ढमाणा ।
चत्तारि एए कसिणा कसाया, सिंचंति मूलाइं पुणब्भवस्स" ॥ ४० ॥

(दश० अ० ८)

अथ कषायप्रत्याख्यानस्य फलमाह–कसायपच्चक्खाणे णं भंते जीवे किं जणयइ? कसायपच्चक्खाणे णं वीयरागं भावं जणयइ, वीयरागभावे पडिवन्ने वि य णं जीवे समसुहदुक्खे भवइ ॥ ३६ ॥
(उ० अ० २९॥)

वीतरागताफलमाह–वीयरागयाणं भंते जीवे किं जणयइ? वी० नेहाणुबंधणाणि तण्हाणुबंधणाणि य वोच्छिंदइ, मणुन्ना मणुन्नेसु सद्दफरिसरूवरसगंधेसु चेव विरज्जइ ॥ ४५ ॥

कषायविजयस्य पृथक्त्वफलं दर्शयति–कोहविजएणं भंते जीवे किं जणयइ? को० खंतिं जणयइ, कोहवेयणिज्जं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ। खंतिए णं भंते जीवे किं जणयइ? ख० परीसहे जणयइ ॥ माणविजएणं भंते जीवे किं जणयइ? मा० मद्दवं जणयइ, माणवेयणिज्जं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ; मद्दवयाए णं भंते जीवे किं जणयइ? म० अणुस्सियत्तं जणयइ, अणुस्सियत्तेण (अनुत्सुकत्वेन) जीवे मिउमद्दवसंपन्ने (मृदुमार्दवसम्पन्नो) अट्ठ मयट्ठाणाइं निट्ठावेइ (क्षपयति) ॥ मायाविजएणं भंते जीवे किं जणयइ? मा० अज्जवं जणयइ। मायावेयणिज्जं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ। अज्जवयाए णं भंते जीवे किं जणयइ? अ० काउज्जुययं, भावुज्जुययं, भासुज्जुययं अवि-संवायणं जणयइ, अविसंवायणसंपन्नयाए णं जीवे धम्मस्स [illegible] ॥ [illegible] किं जणयइ? [illegible] मनो[illegible] जणयइ [illegible] ॥ ७० ॥ [illegible] जणयइ, [illegible] [illegible]

च भवति । अतः क्षान्त्यैव नश्यति । मत्समो नान्योऽस्तीति मननं मानं । अथवाऽऽत्मन्यविद्यमानगुणारोपणोत्कर्षरूपा बुद्धिर्मानो महति धनाद्ये सत्यपि अनुक्षणं वर्धमाने तदभिलाषो लोभोऽथवा परवित्तादिकं दृष्ट्वा नेतुं (ग्रहीतुं) यो हृदि जायतेऽभिलाषो लोभश्च सः ।

इतरेऽप्याहुर्यथा—

"लोभ एव मनुष्याणां, देहसंस्थो महान् रिपुः । सर्वदुःखाकरः प्रोक्तो, दुःखदः प्राणनाशकः ।" "सर्वपापस्य मूलं हि, सर्वदा तृष्णयान्वित, विरोधकृत् त्रिवर्णानां, सर्वार्तेः कारणं तथा ।" "लोभात्त्यजन्ति धर्मं च, मर्य्यादां वै तथैव च, मातरं भ्रातरं हन्ति, पितरं बान्धवं तथा ।" "गुरुं मित्रं तथा तातं, पुत्रं च भगिनीं तथा, लोभाविष्टो न किं कुर्य्यादकृत्यं पापमोहितः" ॥ २६ ॥

अन्वयार्थ—भगवान महावीर (कोह) क्रोधको (च) और (माणं) मानको (च) और (माय) मायाको (तहेव) इसीप्रकार (चउत्थं) चौथे (लोभ) लोभको अर्थात् (एआणि) इन सब (अज्झत्थदोसा) अध्यात्मसम्बन्धी दोषोंको (वन्ता) त्यागकर (अरहा) अर्हन तथा (महेसी) महर्षि हुए, और (पावं) पाप (ण) न (कुव्वइ) स्वयं करते हैं (ण) न (कारवेइ) औरोंसे प्रेरणासे कराते हैं ॥ २६ ॥

भावार्थ—आत्माके नाश होनेपर सर्वका भी नाश होजाता है संसारके बढ़नेके कारणभूत क्रोध-मान-माया और लोभ हैं, अतः इनके नाश होनेसे संसार वर्धकोंका भी नाश हो जाता है इसलिए भगवान क्रोधादि [illegible] अर्हन अवस्था [illegible] प्राप्त हुए [illegible] किन्तु [illegible] भी [illegible] [illegible]

भाषा टीका—[illegible]

प्रभुमें इसका अत्यन्ताभाव है। अतः प्रभुके अनुवर्तियोंका भी यह मुख्य कर्तव्य है कि-वे भी कषायोंको छोड़ें; जैसे दशवैकालिकमें कहा है कि-

क्रोध-मान-माया-लोभ पापको बढ़ाने में उत्तेजना देते हैं, यदि हितकी इच्छा है तो चारों ही कषायोंका वमन करो अर्थात् त्याग करो।"

'ये चारों कषाय अनन्त दोषोंको बढाने वाले हैं, तथापि इनमें एक एक मुख्य दोष है।'

जैसे-"क्रोधसे प्रीतिका नाश होता है, मान विनयका नाश करता है, माया-कपट करनेसे मित्रता टूट जाती है, लोभ तो प्रेम, विनय और मित्रता इन तीनों का ही नाशक है।

इनके हटाने के साधन-क्रोधको शान्तिसे, मानको मार्दवतासे, मायाको सरल और उदार आर्जवतासे तथा लोभको सन्तोषसे अलग हटाओ नहीं तो संसारमें अनन्त परिभ्रमण करना होगा।

क्योंकि-यदि क्रोध और मानका निग्रह न किया हो, तथा माया और लोभको बढ़ा रहा हो तब तो ये चारों ही कषाय संसारकी जड़को सींचकर बढ़ा देते हैं।

कषायके त्याग का फल-उत्तराध्ययन के २९ वें अध्यायमें गौतम प्रश्न पूछते हैं कि-भगवन्! कषाय को छोड़ देनेसे क्या लाभ उत्पन्न होता है?

गौतम! कषाय त्यागसे वीतरागभाव उत्पन्न होताहै। वीतरागभाव आने पर सुख-दुःखमें समान भाव हो जाताहै।

वीतरागता का फल-

वीतरागता के पानेसे क्या लाभ होता है? गौतम! वीतरागतासे स्नेह-बंधन और तृष्णाका बन्धन नष्ट करदालता है मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्द-रूप-रस-गंध और स्पर्शमें वैराग्यतासे विरक्त होता है।

अलग २ कषायके जीतने का फल-क्रोध के विजयसे क्या प्राप्त होता है? क्रोधके विजयसे क्षमा के गुणका प्रगट करताहै। क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले कर्मोको न बांधकर पूर्वसञ्चित बांधे हुए कर्मोका क्षय करदेता है। तितिक्षा परिषह जीतनेका अभ्यास तथा सहिष्णुता उत्पन्न करना है।

गुजराती अनुवाद—कषायनो पहेलो भेद, क्रोध छे, आवेशमां आवी जीव द्वेष करे छे, तेथी बीजानुं अनिष्ट पण करी बेसे छे, चित्तवृत्ति गरम तथा खराब बनी जाय छे। अनिष्ट करती वखते क्रोधनोज उपयोग थाय छे, कषायनो बीजो भेद मान छे। तेनी मात्रानुं कशुं प्रमाण नथी, तेने अहंकार पण कहे छे, तेना आवेशमां मात्र पोतानीज चडती इच्छे छे। माया नाम कपटनुं छे, तेनाथी दम्भ करे छे, सरळतानो नाश थाय छे, चित्तवृत्ति कब्जे रहेती नथी। परधनमां अतिशय अभिलाषा ए लोभ छे, तेनाथी अन्यनुं अहित करी बेसतां वार लागती नथी।

कषाय निग्रहनो उपाय—क्रोध शान्तिथी जीति शकाय छे, शान्ति वगर क्रोधना आवेशमां अन्ध बने छे। अधीरता-अस्थिरता-तेमज हृदयदौर्बल्य आवे छे तेथी क्रोधनो समभावथी नाश करवो जोइए।

माराथी मोटुं कोई नथी, ए मान्यता मानथी आवे छे, अथवा पोतानामां न होय तेवा गुणो पोतानामां छे, एवी बुद्धि थई जाय छे, तेथी वधारे हलका माने छे, स्पष्ट वात न कहेवी ते माया छे,

पुष्कळ धन होवा छतां हरेक क्षणे वधुनी अभिलाषा राखवी ते लोभ छे, अथवा परधन जोइने ते लई लेवानी हृदयमां इच्छा उत्पन्न थवी ते पण लोभ छे, लोभ मनुष्यनो मोटामां मोटो शत्रु छे, सर्वना विरोधनुं ए कारण छे। लोभथी प्रेरित बनीने माता-पिता-भाई-बन्धु-अने धर्मनी मर्यादा पण रहेती नथी। गुरु-मित्र-पुत्र-भगिनी वगेरेनो नाश लोभथी करे छे। लोभथी सर्व प्रकारना अनर्थ करे छे।

परन्तु भगवाने आ चारे कषायोनो नाश करी दीधो छे, आ चारे दोषो कोई साधारण दोष नथी, ते तो अध्यात्म दोष छे। तेनाथी आध्यात्मिकतानो नाश थाय छे, तेनाथीज अनन्त संसारमां रखडवुं पडे छे, भगवान् महावीर प्रभु ते कषायोनो नाश करी महर्षि बन्या, हवे तेओ पाप-आस्रव करता नथी, कर्म मळथी तेओ अलिप्त छे, जन्म-जरा-मरणथी मुक्त छे, कलहनो अत्यन्ताभाव थई गयो छे, प्रभु निर्वैर छे, आशय ए छे के प्रभु पोते पाप करता नथी, कोई बीजाने पाप या आस्रवनो उपदेश पण करता नथी, करावता नथी, कारणके पाप करवु, करावबु, ते कषाय अने अशुभयोगो थी-थाय छे, प्रभुमां तेनो अत्यन्त अभाव

मायाना विजयथी जीव शुं पामे छे? मायाना विजयथी सरलभावपणुं पामे छे, अने मायाथी वेदवां पडतां कर्मो बंधातो नथी, अने पूर्व बंधायां होय ते तेने दूर करे छे।

निष्कपटताथी जीव शुं पामे छे? निष्कपटताथी मन-वचन अने कायनी सरलता अने सुंदरता प्राप्त करे छे, अने कोईनी साथे ते ठगाई करतो नथी, जेवो जीवात्मा धर्मनो सम्यक् आराधक बने छे,

हे पूज्य! लोभना विजयथी जीव शुं पामे छे? लोभना विजयथी सन्तोष रूप अमृतने मेळवे छे, लोभ जन्य कर्म बांधतो नथी, अने पूर्वे बंधायेलां छे तेने विखेरे छे।

निर्लोभताथी जीव शुं पामे छे? तेनाथी जीव अपरिग्रही बने छे, अने धनलोलुपी पुरुषोना कष्टो, पराधीनताओथी बची जाय छे, अने राष्ट्रनी दासत्व शृंखलाओने निर्लोभी थईने तोडे छे अने देशने स्वतन्त्र बनावी शके छे.

कषाय पण एक आग छे, तेने शान्त करो—जेमके-चारे तरफ आग सळगी रही छे, ते बधाने एकदम बाळी रही छे, शरीरधारी प्राणीने पण तेणे छोडेल नथी, ते अग्निने हे गौतम! तमे शी रीते बुझावी नाखी,?

हे केशी! महा मेघमांथी उत्पन्न थयेला पाणीना प्रवाहमांथी ते उत्तम पाणी लई सतत हुं ते अग्निने ठारी नाखुं छुं, अने तेथी ते ठरेली अग्नि मने लेशमात्र बाळी शकती नथी।

गौतम! ते अग्नि कई? गौतमे जवाब आप्यो केशी मुने' कषायोज भयंकर अग्नि छे, ज्ञान-दर्शन-चरित्र-तप रूपी जलनी धाराओ तीर्थंकररूपी महामेघथी वरसेली छे, सत्यज्ञाननी धाराओथी, हणायेली ते कषायो रूपी अग्नि मात्र ठरी जाय छे, तेथी ते आग मने लेशमात्र पण बाळी शकती नथी ॥ २६ ॥

मूल

किरियाकिरियं वेणइयाणुवायं,
अण्णाणियाणं पडियच ठाणं ।
से सव्ववायं इति वेयइत्ता,
उवट्ठिए संजम दीहरायं ॥ २७ ॥

उन सबको प्रभु अच्छे प्रकारसे जानकर तथा औरोंको इनका तथ्य समझा कर संयममें तत्पर होगये थे अर्थात् जैसा उपदेश करते थे वैसा आचरणमें भी लाते थे ॥ २७ ॥

भावार्थीकाः—क्रियावादियोंके १८० मत, अक्रियावादियोंके ८४ मत, विनयवादियोंके ३२ मत और अज्ञानवादियोंके ६७ इस प्रकार पाखंडियोंके ३६३ भेद सर्वधर्म्मलिंगियोंके होते हैं। बौद्धोंने ९६ पाखंड माने हैं। मनोनीत धर्मका नाम पाखण्ड है। या सर्वधर्मका नाम पाखंड है। प्रभुने इनकी तुलना स्याद्वादसे कर दिखाई। जिस अग्नि परीक्षामें कोई पाखंड न टह सका। परन्तु प्रभुने इनसे सर्वधर्म समभाव रखना बताया। इनमें युक्तायुक्तविभाग करके असत्य का त्यागना सर्वश्रेष्ठ माना। इस प्रकार स्वसमय परसमय का मन्तव्य समझाकर यावज्जीवतक संयमधर्ममें एकरस होकर तत्पर (स्थिर) रहे थे ॥ २७ ॥

गुजराती अनुवाद—क्रियावादीना १८० मत, अक्रियावादीना ८४, विनयवादीना ३२ अने अज्ञानवादीना ६७ ए सर्व ३६३ पाखण्डिओना भेद जाणवा, बौद्धोए ९६ भेद मान्या छे, मनोनीत धर्म पाखण्ड कहेवाय छे, तेनी तुलना स्याद्वादथी करी बतावी, ते अग्निपरीक्षामां कोई पाखण्डी टकी न शक्यो। प्रभुए सर्व धर्म समभाव राखवानुं पण बताव्युं, तेमां योग्यायोग्यनुं करवुं पण बतावीने असत्यनो त्याग सर्व श्रेष्ठ मान्यो। आरीते स्वसमय, पर-समयनुं मन्तव्य समजीने उत्तम दशविध संयममां (धर्ममां) जावजीव सुधी स्थायीपणे रह्या ॥ २७ ॥

मूल

से वारिया इत्थी सराइभत्तं,
उवहाणवं दुक्खखयट्ठयाए।
लोगं विदित्ता आरं परं च,
सव्वं पभू वारिय सव्ववारं ॥ २८ ॥

संस्कृतच्छाया

स वारयित्वा स्त्रियं सरात्रिभक्तं, उपधानवान् दुःखक्षयार्थम्।
लोकं विदित्वाऽऽरं पारं च, सर्वं प्रभुर्वारितवान् सर्ववारम् २८

जलोदरादिकृद्यूकाद्यंकमप्रेक्ष्यजन्तुकम् ।
प्रेताद्युच्छिष्टमुत्सृष्टमप्यश्नन्निश्यहो सुखी ॥ २५ ॥

अथवा वनमालादृष्टान्तेन रात्रिभोजनदोषस्य पातकं दर्शयति—

"त्वां यद्युपैमि न पुनः सुनिवेश्य रामं, लिप्ये वधादिकृदघैस्तदिति श्रितोऽपि । सौमित्रिरन्यशपथान्वनमालयैकं, दोषाशिदोषशपथं किल कारितोऽस्मिन्" ॥ २६ ॥

लौकिकसंवाददर्शनेनापि रात्रिभोजनप्रतिषेधमाह ।

यत्र सत्पात्रदानादिकिंचित्सत्कर्म नेष्यते ।
कोऽद्यात्तत्रात्ययमये, स्वहितैषी दिनात्यये ॥ २७ ॥
भुञ्जतेऽह्नः सकृद्वर्या द्विर्मध्याः पशुवत्परे ।
रात्र्यहस्तद्व्रतगुणान्, ब्रह्मोद्यान्नावगामुका ॥ २८ ॥
योऽत्ति त्यजन् दिनाद्यन्तमुहूर्तौ रात्रिवत्सदा ।
स वर्ज्येतोपवासेन स्वजन्मार्द्धं नयन् कियत् ॥ २९ ॥

तथा च—श्रावकस्यैकादशप्रतिमासु षष्ठ्यां प्रतिमायां श्रावको रात्रिभुक्तित्यागी भवति । यथाह—

समन्तभद्रस्वामी श्रावकाचारे—

अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं, नाश्नाति यो विभावर्याम् ।
स च रात्रिभुक्तिविरतः, सत्त्वेष्वनुकम्पमानमनाः ॥ १४२ ॥

पुनश्च—[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

शून्यः । एतच्च रात्रिभोजनं प्रथमचरमतीर्थंकरतीर्थयोः—ऋजुजडवक्रजडपुरुषापेक्षया मूलगुणत्वस्थापनार्थं महाव्रतोपरि पठितं मध्यमतीर्थंकरतीर्थेषु पुनः ऋजुप्राज्ञपुरुषापेक्षयोत्तरगुणवर्ग इति ॥

तथा च योगशास्त्रेऽपि—

अन्नं प्रेतपिशाचाद्यैः, संचरद्भिर्निरङ्कुशैः ।
उच्छिष्टं क्रियते यत्र, तत्र नाद्याद्दिनात्यये ॥

तथा—

घोरान्धकाररुद्धाक्षैः, पतन्तो यत्र जन्तवः ।
नैव भोज्ये निरीक्ष्यन्ते, तत्र भुञ्जीत को निशि ?

रात्रिभोजने दृष्टान् दोषानाह—

"मेधां पिपीलिका हन्ति, यूका कुर्याज्जलोदरम् ।
कुरुते मक्षिका वान्तिं, कुष्ठरोगं च कोलिकः ॥"
"कण्टको दारुखण्डं च, वितनोति गलव्यथाम् ।
व्यञ्जनान्तर्निपतितस्तालु विध्यति वृश्चिकः ॥"
"विलग्नश्च गले वालः, स्वरभङ्गाय जायते ।
इत्यादयो दृष्टदोषाः, सर्वेषां निशि भोजने ॥"

यदाहुः—

*मेहं पिपीलियाओ, हणंति वमणं च मच्छिया कुणइ, जूया

जलोयरत्तं, कोलियओ कोढरोगं च ॥ वालो सरस्स भंगं, कंटो लग्गइ गलम्मि दारु च । तालुम्मि विंधइ अली, वंजणमज्झम्मि भुंजंतो ॥ जीवाण कुंथमाईण घायणं भायणधोयणाईसु । एमाइरयणिभोयणदोसे, को साहिऊ तरइ ?,

नाभेक्ष्यसूक्ष्मजन्तून्, निश्यद्यात्प्राशुकान्यपि,
अप्युद्यत्केवलज्ञानैर्नादृतं यन्निशासनम् ॥

*जइवि हु फासुगदव्वं कुंथूपणगावि तहवि दुप्पस्सा,
पच्चक्खनाणिणो वि, हु राइभत्तं परिहरंति ।
जइवि हु पिवीलगाई, दीसंति पइवमाईउज्जोए,
तहवि खलु अणाइन्नं, मूलवयविराहणा जेण ॥

लौकिकसंवाददर्शनेनापि रात्रि-भोजनं प्रतिषेधति यथा—

"धर्म्मविन्नैव भुंजीत, कदाचन दिनात्यये,
बाह्या अपि निशाभोज्यं यदभोज्यं प्रचक्षते ।"

तच्छास्त्रमेव कथयति—

"त्रयीतेजोमयोभानुरिति वेदविदो विदुः ।
तत्करैः पूतमखिलं, शुभं कर्म्म समाचरेत् ॥"

पुनश्चैतदेवाह—

"नैवाहुतिर्न च स्नानं, न श्राद्धं देवतार्चनम् ।
दानं वा विहितं रात्रौ, भोजनं तु विशेषतः ॥"

* यद्यपि खलु प्रासुकद्रव्यं, कुन्थुपनका अपि तथापि दुष्प्रेक्ष्याः ।
प्रत्यक्षज्ञानिनोऽपि खलु रात्रिभक्तं परिहरन्ति ॥
यद्यपि खलु पिपीलिकाद्या दृश्यन्ते प्रदीपाद्युद्योते ।
तथापि खल्वनाचीर्णं, मूलव्रतविराधना येन ॥

पुनश्च—"दिवसस्याष्टमे भागे, मन्दीभूते दिवाकरे ।
नक्तं तु तद्विजानीयान्न नक्तं निशि भोजनम् ॥"
"देवैस्तु भुक्तं पूर्वान्हे, मध्यान्हे ऋषिभिस्तथा ।
अपराण्हे च पितृभिः, सायान्हे दैत्यदानवैः ॥"
"सन्ध्यायां यक्षरक्षोभिः, सदा भुक्तं कुलोद्वह ।
सर्ववेलां व्यतिक्रम्य, रात्रौ भुक्तमभोजनम् ॥"

आयुर्वेदेऽप्युक्तम्—
"हृन्नाभिपद्मसंकोचश्चण्डरोचिरपायतः ।
अतो नक्तं न भोक्तव्यं, सूक्ष्मजीवादनादपि ॥"

परपक्षसंवादमभिधाय स्वपक्षं समर्थयते—
"ससजीवसंघातं, भुञ्जाना निशि भोजनम् ।
राक्षसेभ्यो विशिष्यन्ते, मूढात्मानः कथं नु ते ? ॥"

एतदेवाह—
"वासरे च रजन्यां च, यः स्वादन्नेव तिष्ठति ।
शृङ्गपुच्छपरिभ्रष्टः, स्पष्टं स पशुरेव हि ॥"

रात्रिभोजनविरतानां सविशेषपुण्यवत्त्वं दर्शयति—
"अन्हो मुखेऽवसाने च, यो द्वे द्वे घटिके त्यजन् ।
निशाभोजनदोषज्ञोऽश्नात्यसौ पुण्यभाजनम् ॥"

ननु यो दिवैव भुंक्ते तस्य रात्रिभोजनप्रत्याख्याने फलं नास्ति ? फलविशेषो वा कश्चिदस्यत्यामित्याह—
"अकृत्वा नियमं दोषाभोजनाद्दिनभोज्यपि ।
फलं भजेन्न निर्व्याजं, न वृद्धिर्भाषितं विना ॥"

अमितगतिश्रावकाचारेऽपि रात्रिभोजनस्य निषेधः कृतः।

यत्र राक्षसपिशाचसंचरो, यत्र जन्तुनिवहो न दृश्यते।
यत्र भुक्तमपि वस्तु भक्ष्यते, यत्र घोरतिमिरं विजृम्भते॥
यत्र नास्ति यतिवर्गसङ्गमो, यत्र नास्ति गुरुराजदर्शनम्।
यत्र संयमविनाशि भोजनं, यत्र संसजति जीवभक्षणम्॥
यत्र सर्वशुभकर्मवर्जनं, यत्र नास्ति गमनागमक्रिया;
तत्र दोषनिलये दिनात्यये, धर्मध्यानकुशला न भुंजते॥
भुंजते निशि दुराशयाय के, गृद्धिदोषवशवर्तिनो जनाः।
भूतराक्षसपिशाचशाकिनी, संगतिः कथममीभिरस्य च॥
वल्भते दिननिशीथयोः सदा, यो निरस्तयमसंयमक्रियः।
शृंगपुच्छशफसंगवर्जितो, भण्यते पशुरयं मनीषिभिः॥
आमनन्ति दिवसेषु भोजनं, यामिनीषु शयनं मनीषिणः।
ज्ञानिनामवसरेषु जल्पनं, शान्तये गुरुषु सेवनं कृतम्॥
भुज्यते गुणवतैकदा सदा, मध्यमेन दिवसे द्विरुज्वले;
येन रात्रिदिवयोरनारतं, भुज्यते स कथितो नराधमः॥
ये विवर्ज्य वदनावसानयोर्वासरस्य घटिकाद्वयं सदा।
भुंजते जितहृषीकवाजिनस्ते भवंति भवभारवर्जिताः॥
ये व्यवस्थितमहः सुखर्वदा, शर्वरीषु रचयन्ति भोजनम्।
निम्नगामिसलिलं निसर्गतस्ते नयन्ति शिखरेषु शाखिनम्॥
सूचयन्ति सुखदायि येऽङ्गिनां, रात्रिभोजनमपास्तचेतनाः।
पावकोद्धतशिखाकरालितं, ते वदन्ति फलदायिकाननम्॥
ये ब्रुवन्ति दिनरात्रिभोगयोस्तुल्यतां रचितपुण्यपापयोः।
ते प्रकाशतमसोः समानता, दर्शयन्ति सुखदुःखकारिणोः॥

रात्रिभोजनमधिश्रयन्ति ये, धर्म्मबुद्धिमधिकृत्य दुर्धियः ।
ते क्षिपन्ति पविवन्हिमण्डले, वृक्षपद्धतिविवृद्धये ध्रुवम् ॥
ये विहृत्य सकलं दिनं क्षुधा, भुंजते सुकृतकांक्षया निशि ।
ते विवृध्य फलशालिनीं लतां, भस्मयन्ति फलकांक्षया पुनः ॥
ये सदापि घटिकाद्वयं त्रिधा, कुर्वते दिनमुखान्तयोर्बुधाः ।
भोजनस्य नियमो विधीयते, नास्ति तैः स्फुटमुपोषितद्वयम् ॥
रोगशोककलिराटिकारिणी, राक्षसीव भयदायिनी प्रिया ।
कन्यका दुरितपाकसंभवा, रोगिता इव निरन्तरापदाः ॥
देहजा व्यसनकर्म्मपंडिताः, पन्नगा इव वितीर्णभीतयः ।
निर्धनत्वमनपायि सर्वदा, पात्रदानमिव दत्तवृद्धिकम् ॥
संकटं सतिमिरं कुटीरकं, नीचवित्तमिव रंध्रसंकुलम् ।
नीचजातिकुलकर्म्मसंगमः शीलशौचशमधर्म्मनिर्गमः ॥
व्याधयो विविधदुःखदायिनो, दुर्जना इव परापकारिणः ।
सर्वदोषगणपोष्यनामता, रात्रिभोजनपरस्य जायते ॥
पद्मपत्रनयनाः प्रियंवदाः, श्रीमताः प्रियतमा मनोरमाः ।
सुन्दरा दुहितरः कलालयाः, पुण्यपंक्तय इवात्तविग्रहाः ॥
अंचितव्यसनवृत्तयोऽमलाः, पावना हिमकरा इवांगजाः ।
शक्रमन्दिरनिवासलालसं, मन्दिरं मधुररत्नराजितम् ॥
तत्त्वचिन्तितपदार्थमुज्ज्वलं, भूरिपुण्यमिव वैभवं स्थिरम् ।
सर्वरोगगणमुक्तदेहता, सर्वशर्म्मनिवहाधिवासिता ॥
ज्ञानदर्शनचरित्रभूषण , सर्वथार्चनविधानपण्डिता ।
सर्वलोकपतिपूजनीयता, रात्रिभुक्तिविमुखस्य जायते ॥

सूकरी शंवरी वानरी घीवरी, रोहिणी मंडली शोकिनी क्लेशिनी ।
दुर्भगा निस्सुता निर्धवा निर्धना, शर्वरीभोजिनी जायते भामिनी ॥
बान्धवैरचिता देहजैर्नन्दिता, भूषणैर्भूषिता व्याधिभिर्वर्जिता ।
श्रीमती ह्रीमती धीमती धर्मिणी, वासरे जायते भुक्तितः शर्मणी ॥
रात्रिभोजनविमोचिनो गुणा, ये भवन्ति भवभागिनां परे ।
तानपास्य जिननाथमीशते, वक्तुमत्र न परे जगत्रये ॥

इत्यनेकशास्त्रसम्मतरात्रिभोजनं परिहेयमिति भावः । उपधानं तप, प्रणय च प्रकर्षेण नयं न्याय "उपधान विषे गन्डौ प्रणयेऽपि नपुंसकमिति मेदिनी" । तद्विधतेऽस्यासावुपधानवान्, तपोनिष्टप्तदेहो भगवानपि, दुःक्षयार्थं दुःखपणाशनार्थमारं प्रान्तभागं, पारं परं लोकं "पारं परतटे प्रान्ते इति मेदिनी" । "पारं मुत्ति इत्यभिधानप्पदीपिका बौद्धकोषः" । ऐहलोकं पारलोकं, अथवाऽऽरं मनुष्यलोकं पारं दूरवर्ति नीरं 'पारं परम्हि, तीरम्हि' इति अभिधानप्प०" । अथवा नरकादिकं सङ्क्रमणहेतु तत्त्व ज्ञात्वा गवेमेव तत्, प्रभुर्भगवान् सर्वंसारं बहुशो निवारितवान् त्यक्तवान् एतदुक्तं भवति प्राणातिपातादिकं निषिद्धादिकं मनोऽनुज्ञाय परांश्च त्याजितवान्, नहि स्वतोऽस्थितः परांश्च स्थापयितुमलमित्ययं स्वयमधर्मे स्थित पराजनान्धर्मे स्थापयितुमसमर्थः । स्मृतिरप्युक्तमिति । "ब्रुवाणोऽपि न्याय्यं वचनं स्थित्वा व्यवहारन्, परं नालं कश्चिद्दमयितुमदान्तः स्वयमिति । सत्त्विश्वव्यं मनसि अवधाय प्रकृत, समाचरण नावद्दमयितुमलं स्वर्दमन । २८ ॥

[illegible]
[illegible]

मरने की अपेक्षा सब प्रकारके भोजन समान हैं। परंतु अन्नके भोजनमें जितना साधारण राग भाव है, उतना मांस भोजनमें नहीं। मांस भोजन में विशेष राग भाव है। जितना घास खानेवाली गायको चारा मिलने पर खाते समय सामान्य रागभाव है, उतना थोडा रागभाव चूहे मारनेवाली बिल्लीमें नहीं। बिल्लीको मांस भोजनमें विशेष रागभाव है। क्योंकि अन्नका भोजन सहजमें मिल जाता है और मांसका भोजन अतिशय श्रमादिककी अपेक्षा अथवा शरीरादिकके मोहकी अपेक्षा विशेष प्रयत्नसे तैयार किया जाता है। इसी तरह दिनका भोजन सब मनुष्योंको सहज ही प्राप्त होजाता है। इसीलिए उसमें साधारण रागभाव पाया जाता है, परन्तु रात्रि भोजनमें तो शरीरादिक व कामादिक पोषण करनेकी अपेक्षा विशेष रागभाव आता है। अत एव रात्रि-भोजन सर्वथा त्याज्य ही है।

इसके अतिरिक्त दीपकके प्रकाशमें बारीक जीव आंखोंसे ठीक २ नहीं दीखते, तथा रात्रिमें दीपकके प्रकाशसे नाना प्रकारके ऐसे छोटे बडे जीव घूमने लगजाते हैं, जो दिनमें कभी दिखाई नहीं पडते। अत एव रात्रि भोजनमें तो प्रत्यक्ष हिंसा है, और रात्रिमें भोजन करनेवाला हिंसासे कभी बच नहीं सकता। अत जिन महाभाग्यशालीने रातमें आहार करना सर्वथा छोड दिया है वही सच्चा अहिंसक है। रात्रि भोजनके छोडे बिना अहिंसाकी सिद्धि नहीं हो सकती। अत एव कोई २ आचार्य इसे अणुव्रतमें भी गर्भित करते हैं।

सागारधर्मामृतमें कहा है कि-अहिंसाव्रतका पालक रात्रि भोजनका त्याग अवश्य करता है। क्योंकि मूल व्रत की शुद्धि के लिए तथा अहिंसाव्रतकी रक्षाके निमित्त रात में चार प्रकार का आहारवर्जना तीनयोगसे सभी जीवोंके लिए वर्जित है।

पुरुष विचारक मनुष्योंका यह भी मत है कि रात होनेपर सूर्य तेज अन्दर आमाशयको शुद्ध करता है और बहुतसे जीव ऐसे भी हैं जिनसे भोजन [illegible] है [illegible] रात भोजन में बाधा आय तो [illegible] [illegible] अत एव रात्रि भोजनका [illegible] [illegible] हो सकता है।

[illegible] रात्रिभोजनके दोष की व्याख्या दिखाई थी।

छठा व्रत मुनिओंका रात्रि भोजन त्याग है—मुनिवर्ग महाव्रतोंको लेकर रात्रिभोजनसे सर्वथा विरक्त हो जाता है। दशवैका उसका छठवां व्रत इस प्रकार किया गया है। और वह गुरुके सन्मु प्रतिज्ञा लेता है कि–

भगवन् ! मैं रात्रिभोजन करनेका त्याग करता हूं। और अन्न, प खाद्य स्वाद्यादि पदार्थोंका रात्रि के समय न भोजन करूंगा, न कराऊंगा, न वालेकी अनुमोदना भी करूंगा। सारी उमरभरकेलिए तीनकरण और योगोंसे अर्थात् मन-वचन-कायासे रातमें, आहार न करूंगा न कराऊंगा, अनुमोदन भी न करूंगा। हे भगवन् ! उस रात्रिभोजनके पापरूप दं पीछे हटता हूं, उसका प्रतिक्रमण करता हूं, अपने आत्माकी साक्षी निंद्य समझता हूं, गुरुकी साक्षसे उसको घृणित समझता हूं, और आ उस पाप का त्याग करता हूं।

अहिंसा महाव्रतकी रक्षाकेलिए रात्रिभोजनका त्याग किया गया और वह भी इस जन्मके अन्तिम श्वास तक छोडा गया है।

उसे महाव्रत न कह कर व्रत इसलिए कहा है कि–महाव्रतोंकी इसका पालन करना अधिक कठिन नहीं है। इसीकारणसे इसे मूलगु रख कर उत्तरगुणमें रखलिया है।

और इसे महाव्रतोंके पीछे इस लिए पड़ा है कि प्रथम और अ तीर्थंकरके समय मनुष्य समुदायका स्वभाव ऋजुजड और वक्रजड होता और मध्यके तीर्थंकरोंके समयके मनुष्योंकी बुद्धि ऋजुप्रज्ञ होनेसे इसक सुगमतया समझानेके लिए महाव्रतके पीछे जोड दिया है। इससे यह भी है कि महाव्रतोंकी भांति ही इस व्रतका पालन भी किया जाया करे। द्रव्य- काल-भावकी तथा मिश्रणामिश्रणकी दृष्टिसे इसके अनेक प्रकार हैं जैसे–द्र अशनादि, क्षेत्रसे अढाई द्वीपमें कालसे रातके समय और भावसे द्वेषर होकर इसका पालन करना आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त और प्रकार भी पाए जाते हैं। जैसे कि–आहा रातमें ग्रहण करना और रातमें खाना, रातमें ग्रहण करना और दिनमें ख नमें ग्रहण करना और रातमें खाना, दिनमें ग्रहण करना और दिनमें खा

इसके अतिरिक्त अमितगति श्रावकाचारमें भी अनेक दोष दिखाए हैं,

जैसे—"रातमें राक्षस और पिशाच घूमते हैं, जीवोंके समूहको भलि प्रकार देखा नहीं जाता, जिस वस्तुका नियम किया हो उस पदार्थको भी अनजानपनसे खा सकता है, और उसमय घोर अन्धकार छाया रहता है।" "उस समय सुपात्र साधु महापुरुषोंका भी आना कठिन है, जिसमें गुरुदेवका सेवा सत्कार नहीं किया जा सकता, और संयमका निरन्तर विनाश हो जाता है, यहाँ तक कि छोटे मोटे जीव भी भक्षण कर जाता है।" "जिसमें दानादिक शुभकर्म भी वर्जित हैं, लोकोंका आना जाना उस समय बिल्कुल बंद हो जाता है, जो एकान्त दोषोंका घर है, जिसमें दिनका अभाव होजाता है, ऐसी रात्रिमें धर्मध्यानकुशल मनुष्य भोजन कभी नहीं करते।" "जो दुराशयके कारण जीभके स्वादके फेरमें पड़ कर रात्रिमें भोजन कर लेते हैं वे भूत प्रेतोंकी संगतिको न छोड़ सकेंगे।" "जिसने यम-नियम संयमकी क्रियाओंका त्याग कर दिया है, और दिनरात खाने पीनेमें ही पिला पड़ता है, उसे बुद्धिमान बिना सींग पूंछका पशु ही समझते हैं। मगर उसके पशुओं जैसे खुर ही तो नहीं हैं" "बुद्धिमान् शारीरिक सुख और जीवरक्षाके लिए दिनमें भोजन करते हैं, रात्रिमें आरामसे सोते हैं, ज्ञानीजन समय विचार कर बोलते हैं, तथा आत्मशान्तिके लिए गुरु जनकी सत्संगति और सत् शास्त्रका श्रवण-मनन और निदिध्यासन करते हैं।" "गुणवान् और उत्तम पुरुष सदैव दिनमें एक बार भोजन करते हैं, मध्यम-पुरुष उज्ज्वल दिनमें दो बार आहार करते हैं, और जो दिनरात निरन्तर चरते ही रहते हैं वे मनुष्योंमें अधम हैं।" "जो पुरुष दिनके आदि और अन्तकी दो घड़ियोंको छोड़ कर भोजन करते हैं, उनको कभी स्वास्थ्य बिगड़नेका भय नहीं रहता वे इन्द्रियोंके घोड़ों को जीतकर संसार भरके कष्टों से एकदम हल्के हो जाते हैं।" "जो पुरुष अपने पास दीपक रखकर रातको खाते हैं मानों वे स्वभावसे नीचकी ओर बहनेवाली नदीके जलको वृक्षकी चोटीके ऊपर पहुंचाना चाहते हैं।" "जो रात्रि भोजनको सुखदायक जीवन मानता है वह आगमें जलते हुए जनको मानो रक्षक मानता है मगर यह अनहोनी बात है।" "जो दिन और रातके भोजनमें बराबर पुण्य और पापकी मान्यता रखते हैं वे मानों सुख और दुःखमें पतना प्रकाश और अन्धकारको समान देखते हैं।" "जो धर्मबुद्धिसे रातमें खाते हैं, वे निश्चयसे वृक्षोंकी पद्धतिको बढ़ानेके-

मिलती है, जिसका समाज धर्मात्मा और सचरित्रानुगामी होता है, वे सब सुख दिनमें यत्नपूर्वक भोजन करनेवाले सत्यवादीको मिलते हैं ।"

इत्यादि अनेक शास्त्र संमत होनेसे रात्रिभोजनको अप्राकृतिक और दूषित समझकर छोड देना चाहिए। प्रभु महावीर रात्रिभोजनके स्वयं त्यागी थे, और औरोंको भी त्याग करनेका उपदेश करते थे, तथा सदैव तपश्चरण किया करते थे, अपार नम्रता थी, उनकी वाणी अनन्तनयोंसे शुद्ध थी। उन्होंने संसार और मोक्षका स्वरूप बताया था, सब प्रकारके आस्रवोंसे आप रहित थे, औरोंको भी आस्रवके पापजालसे सदा रोकते थे, क्योंकि जो स्वयं अधर्मी और अनीतिमान् हो वह औरोंको धर्म और नीतिमें क्योंकर स्थापन कर सकता है। जो स्वयं धर्मिजन-नैतिक जीवन व्यतीत करनेवाला हो वही औरोंको पापकर्मके गड्डेसे निकाल सकता है। किसीने कहा भी है कि "जो स्वयं तो न्याय की बात कहता हो, परन्तु न्यायके विरुद्ध आचरण करता हो तो वह औरोंपर अपना कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकता, क्योंकि 'अदान्त' कभी इन्द्रिय निग्रह नहीं कर सकता।"

और प्रभुने इस लोक और परलोक को जानकर पापोंसे सर्वथा निवृत्ति प्राप्त की थी ॥ २८ ॥

गुजराती अनुवाद–भगवान् महावीर प्रभु स्त्रीसंसर्ग अने स्त्रीनी पासेक रहेवाना पण कट्टर त्यागी हता, तेमणे नववाडविशुद्ध ब्रह्मचर्यनु पालन करवानुं कह्यु छे, जे स्थान पर स्त्री बेठी होय त्या ब्रह्मचारी एक कलाक सुधिनां नज बेसे, कारण के तेना अशुद्ध परमाणुओ सुशील पुरुषने हानिकर छे। एज ब्रह्मचारिणी माटे समजी लेवु ।

रात्रिभोजन त्यागी–

ते उपरान्त तेओ रात्रिभोजनना पण प्रत्यक्ष विरोधी हता, कारण के रात्रिभोजनथी त्रस जीवोनी हिंसा थाय छे, तेथी रात्रिमा भोजन करवानी मना करवामा आवी छे, हिंसा त्यागी रात्रिभोजन न ज करे जे जीव तीव्र राग भाव सहित होय छे, ते रात्रि भोजन करे छे. [illegible] कारणके जे जीवने भोजन पर आसक्ति होय छे ते रात्रिके दिवसे खातो पीतो ज रहेशे, ज्यां राग बन्धन होय छे त्यां प्रमत्तभाव जरूर रहे छे, अने प्रमत्तभावयुक्त प्राणी हिंसा अवश्य करे छे

पडे छे, जो जू आदि जीव भोजनमां खवाई जाय तो जलोदर जेवा रोगोनो थवानो संभव रहे छे, तेथी रात्रिभोजनना त्यागीओ उपरोक्त आपत्तिओथी बचीने दूर रही शके छे, ।

वनमाळा नामनी राजकन्याए पोताना पति लक्ष्मणजीने रात्रिभोजनना दोषना सोगन खवडाव्या हता । जैन रामायणमां लखेलुं छे के रामचन्द्रजी-लक्ष्मणजी अने सीतानी साथे दक्षिणमां फरता फरता कूबेरनगरमां आवी पहोंच्या, त्यां महीधर राजाए पोतानी वनमाळा नामे पुत्रीना लग्न लक्ष्मण साथे कर्या, थोडा दिवसो रह्या बाद त्यांथी ज्यारे त्रणेय विदाय थवा लाग्या त्यारे वनमाळा पण लक्ष्मणनी साथे चालवा लागी, त्यारे लक्ष्मणे तेम न करवा कह्युं । ते सांभळीने स्वामीना विरहथी दुःखी थता ते बोली के नाथ ! आप मने पाछा फरता लई जशो के केम, ते बाबतनो मने विश्वास न होवाथी हुं आपनी साथेज रहीश, लक्ष्मण तेने विश्वास देवा ते स्थानर प्राणातिपात जेवा पापनी भयंकर प्रतिज्ञा करी, त्यारे तेणे ते ते प्रतिज्ञाओ पर असन्तोष प्रगट करीने रात्रिभोजनना पापनी प्रतिज्ञा लेवडावी, लक्ष्मणे पण ते प्रतिज्ञा लीधी लीधी अने ते राम साथे गई मथ्या । ते समये रात्रिभोजननुं पाप चार प्रकारनी हत्याओथी पण वधु मानवामां आवतुं हतुं ।

कोईए कह्यु छे के–सुपात्र पुरुष दिवसे आवे छे, तेओ रात्रे आवता नथी, तेथी दिवस अस्त थतां तेमने आहार देवानु बनी शकतु नथी, तेथी दान दया कल्याणनी इच्छा पूर्ण राखनारा पुरुषो रात्र भोजन करवानो त्याग करे छे ।

पुरुषोना त्रण प्रकार–

उत्तम पुरुष [illegible] भोजन करे छे, मध्यम पुरुष [illegible] [illegible] परन्तु [illegible] अने [illegible] [illegible] दिवसे [illegible]

[illegible]

ते उपरान्त बीजा पण प्रकारो छे, जेम के आहारादि रात्रे ग्रहण करवाने रात्रे खावो, रात्रे ग्रहण करवो ने दिवसे खावो, दिवसे ग्रहण करवो ने रात्रे खावो, दिवसे ग्रहण करवो ने दिवसे खावो, आ चार प्रकारमांना पहेला त्रण साधुने माटे अशुद्ध अर्थात् अग्राह्य छे, ने छेवटनो प्रकार शुद्ध अने ग्राह्य छे ।

द्रव्य अने भावनी अपेक्षाए पण रात्रिभोजनना चार भांगा थाय छे, जेमके केवळ द्रव्यथी, केवळ भावथी, द्रव्य अने भाव बंनेथी, द्रव्य अने भावथी रहित, । सूर्योदय अथवा सूर्यास्तनो सन्देह पडवा छतां पण भोजन करवामां आवे छे, ते केवळ द्रव्यथी रात्रिभोजन छे, भावथी नहि, । "हुं रात्रे भोजन करीश" एवो विचार थाय, ते केवळ भावथी रात्रिभोजन छे, अने पछी कांइ खावु पीवुं न होय, जाणवा छतां पण रात्रे भोजन करवुं, ते द्रव्य अने भाव बनेथी छे, अने रात्रे भोजन न करवुं तेमज इच्छा पण न करवी, ते द्रव्य भाव बंनेथी रहित प्रकार छे ।

बौद्ध मतमां रात्रिभोजन वर्जित–

बुद्धना आठ उपदेशोमां रात्रिभोजन वर्ज्य गण्युं छे, जेमके–

(१) कोई प्राणधारीनो प्राण नहिं लेवानी हु प्रतिज्ञा करु छुं.

(२) अदत्तादान (चोरी) नो त्याग करुं छु

(३) सर्वे प्रकारना [illegible] त्यागनी प्रतिज्ञा करु छु

(४) सर्वे प्रकारना असत्य वचनथी विरमु छु

(५) कोई पण प्रकारना [illegible] प्रतिज्ञा [illegible]

[illegible]

बे उपवासनुं फळ प्राप्त करे छे, एम समजवुं। "रात्रिभोजन करनारने नीचे लख्या मुजब सामग्री प्राप्त थाय छे, रोग शोक अने कलह करनारी, राक्षसी माफक भय उपजावे तेवी स्त्री मळे छे, तेमज महापापथी पेदा थयेल अन्तराय दुःख देनारी कन्या प्राप्त थाय छे, व्यसनी तेमज काळा वानवी माफक बिहामणा पुत्र थाय छे, घरमां दरिद्रता तो सदा रयाज करे छे।" नीच जातिमां जन्म धरी नीच कर्मो करवां पडे छे, शील-निर्लोभपणुं-समभाव-आदि गुणो नो अभाव रहे छे, बीजानुं अनिष्ट करनार दुर्जननी माफक ते केटलीए जातनी व्याधिथी घेराएलो रहे छे, सर्व दोषोना समूहथी पीडायेलो आत्मामां अनेक दोषोनी उत्पत्ति थई जाय छे।

रात्रि भोजननो त्याग करनारने नीचे मुजब फळनी प्राप्ति थाय छे; कमळपत्रसमान आंखोवाळी, प्रियवचन बोलनारी, लक्ष्मीसमान सुन्दर स्त्री प्राप्त थाय, तेमज विद्या कलामां निपुण पुण्यनी पंक्ति माफक सुन्दर शरीर अने निर्मळ चरित्रवाली तेने कन्या प्राप्त थाय छे।" कोई पण जातना व्यसनथी रहित तेमज चन्द्रमाना जेवा पवित्र कर्म वाळा पुत्र मळे छे, इन्द्रना भवननी माफक उजासवाळु मणिरत्नोथी भरपूर सुशोभित मकान प्राप्त थाय छे,। स्थायी वैभव प्राप्त थाय छे, मनोवाछित फळ मळे छे, नीरोगी सुन्दर शरीरनी प्राप्ति थाय छे, ए प्रकारे बधी रीतथी सुख प्राप्त थाय छे।" "ते उपरान्त ज्ञान-दर्शन-चरित्रनी पण सम्पत्तिने पामे छे, आखा विश्वनो पूजनीय पति बने छे, रात्रिभोजनथी दूर रहेनार तेमज त्यागीओने आ समृद्धि प्राप्त थाय छे।" अने-"रात्रे आहार करवाथी भूण्डी-भोलडी-बादडी-माछली-गद्धामा रसोडी(गिल्लड)वाळी-रोहिणी-कुत्तरी-शोक-क्लेशवाळा तेन ज खोड खापणवाळा पुत्र जणनारी विधवा धनहीना एवी एवी अनेक कष्टकर योनि प्राप्त थाय छे।" "तेओ (रात्रि भोजननो त्याग करनारा) बन्धुगणमां पूजनीय मनाय छे, पुत्रो तेमनी सेवा करे छे, लज्जा अने संयमरूपी आभूषणथी युक्त रहे छे, शरीरे नीरोगी होय छे, लक्ष्मी जेवी अने बुद्धिमती तथा शरमाळ स्त्री मळे छे, तेमनो स्वभाव पण धर्मात्मा माफक होय छे, दिवसे भोजन करनारने आवा सुखनी प्राप्ति थाय छे।"

सं० टीका—अधुना श्रीसुधर्म्मस्वामी तीर्थंकरगुणान् प्रख्याय जम्बू-स्वामिनमाह, श्रुत्वा च, दुर्गतिधारणाद्धर्म्मं, श्रुतचारित्ररूपमर्हद्भाषितम-र्हत्कथितं, सम्यगाख्यातं=सुष्ठुप्रणिगदितं, चार्थपदैः, अर्थैः प्रयोजनैः कारणैरभिधेयैर्वा "अर्थो विषयार्थनयोर्धनकारणवस्तुषु, अभिधेये च शब्दानां निवृत्तौ च प्रयोजने इतिमेदिनी ।" अथवा, "अत्थो पयो-जने सद्दाभिधेय्ये वुद्धियं धने, इत्यभिधानप्पदीपिका ।" पदैर्वाचकैः शब्दैः, "पदं शब्दे च वाक्ये च व्यवसायप्रदर्शयोरिति । मेदिनी ।" निर्वाणैर्वा, "अप्पवग्गो-विरागो च पणीतं अच्चुतं पदं इत्यभिधानप्प-दीपिका ।" अथवा निमित्तैः, "निमित्तं कारणं ठाणं पद, इत्यभि-धानप्पदीपिका ।" वा परित्राणैः संसारादपक्रमणो वा. "पदं ठाने परित्ताणे निब्बाणम्हि च कारण इत्यभिधानप्पदीपिका ।" स्थैर्य्यैश्चिन्हैः स्थानैरुत्तमैः वाणैर्वाणसदृशैः शब्दैः सुप्तिङन्तरूपैः प्रदेशैः श्लोका-देर्वाः "पदो चरण च वा इत्यभिधानप्पदीपिका ।" उपशुद्ध चोपसा-मीप्येन शुद्ध सितं वा पूतं निर्म्मल, "सुद्धो केवलपूतेसु" "सुचि शुद्धे सिते पूते इत्यभिधानप्पदीपिका ।" वा प्रयोजनैरान्तराशयैर्वि-चिभिर्वा हेतुभिरभिलापैः शुद्धं दोषराहित्यमित्यर्थः । धर्म्मं श्रद्धाना जनास्तथाऽनुतिष्ठन्तो नरा अनायुषोऽपगतायुष्कर्मता युक्ता इति शेषः कर्मरहिताः सन्तः सिद्धा मोक्षगता भवेयुरिति भाव । साधुश्चेन्द्रा अहमिन्द्रा देवाधिपा आगमिष्यन्ति—त पद प्राप्स्यतीति भावः । इति शब्दो ब्रवीमीति ॥ २९ ॥

नाना निबन्धेभ्य सारमुद्धृत्य श्रीमत्सूत्रकृताङ्गसूत्रगतवीरस्तुति-नामाषष्ठाध्यायस्यातिविस्तृतगभीरदुरूहतत्त्वपदार्थं भक्तिभावावलेम्बाधाति-

असंख्य सुखसुरोंका आधिपत्य भोगनेके लिए इन्द्रपदको प्राप्त करते हैं, यह मैंने अर्हन् भगवान्से जैसा सुना है, वैसा तुझे कहकर सुनाया है* ।

---

* इस गाथामें 'अरहंत' यह प्राकृत भाषाका शब्द है जिसका संस्कृत अनुवाद 'अर्हत्' होता है, कोई २ 'अरहोन्तर' 'अरथान्त' पद भी बनाते हैं। यहां इन सबके अर्थोंपर यदि विचार किया जाय तो आशय वही निकलता है जो अर्थ 'अर्हत्' शब्दका होता है।

(१) 'अर्ह' धातुका अर्थ पूजा या योग्य अर्थ होता है, इस अर्थके अनुसार अतिशय वन्दनीय-सेवनीय-स्मरणीय होनेके कारण वे 'अर्हन्' (अरहंत) कहलाते हैं। क्योंकि इनके पांचों कल्याणकोंमें अनेक देवों और ६४ इन्द्रोंद्वारा अनेक विलक्षण सेवा सम्बन्धी घटनाएँ होती हैं, और वे मनुष्योंकी अपेक्षा अतिशययुक्त महापुरुष होते हैं, और अतिशायक होनेके कारण उनका यह 'अरहंत' नाम सार्थक तथा यथार्थ है। जैसा कि 'धवल' ग्रन्थमें भी कहा है कि-

अतिशयभावपूजाऽर्हत्वादर्हन्तः, स्वर्गावतरणजन्माभिषेकपरिनिष्क्रमणकेवलज्ञानोत्पत्तिपरिनिर्वाणेषु देवकृतानां पूजानां देवासुरमानवप्राप्तपूजाभ्योऽधिकत्वादतिशयादर्हत्वाद्योग्यत्वादर्हन्तः ।

(धवलसिद्धान्त)

अरिहंति वंदणनमंसणाणि अरिहंति पूयसक्कारं,
अरिहंति सिद्धिगमणं 'अरहंता' तेण उच्चंति ।

(मूलाचार)

भावार्थ—जो भाव पूजाके योग्य तथा अनुकरणीय महाआदर्शपुरुष हों उनको 'अर्हन्' कहते हैं। जिनके जीवनमें अनेक दिव्य घटनाएँ विलक्षण रूपसे परिघटित होती हैं, जैसेकि- स्वर्गसे अवतरण, जन्मोत्सव, परिनिष्क्रमण (दीक्षा ग्रहण), केवलज्ञानकी उत्पत्ति, मोक्षारोहण आदि घटनाओंके होते समय देव-असुर मानव इत्यादिके द्वारा महान् उत्सवका मनाना, या मनुष्योंको उनका अनुकरण करते हुए उनके समान आप्तमत एवं सर्वज्ञ होना, इत्यादि महाजनताके योग्य होनेसे वे 'अर्हन्' कहलाते हैं।

"अविद्यमानो रथः स्यन्दनः सकलपरिग्रहोपलक्षणभूतः, अन्तश्च विनाशो जराद्युपलक्षणभूतो येषां ते 'अरथान्ताः'

(भगवतीसूत्र)

भावार्थ—जिनका आत्मारूपी 'रथ' अप्रतिहत शक्तिवाला होनेसे कहीं रुक नहीं सकता, अर्थात् तीनलोक और अलोकको भी जानता है, अतः उनकी 'अरथान्त' संज्ञा इसी कारण सार्थक मानी गई है ।

(४) "अरहन्त" शब्दका यह अर्थभी निकलता है कि-"राग-द्वेषके कारणभूत-त्रिलोकवर्ती अनन्त पदार्थोंके ज्ञाता-द्रष्टा होनेपर भी जो किसी पदार्थमें आसक्ति नहीं रखता, वीतराग स्वभावशील है, इससे 'अरहन्त' कहलाते हैं । जैसे-

"क्वचिदप्यासक्तिमगच्छत्सु वीतरागत्वात् प्रकृष्टरागादिहेतुभूतमनोज्ञेतरविषयसम्पर्केऽपि वीतरागत्वादिकं स्व-स्वभावमत्यजन्तोऽर्हन्तः ।"

(भगवतीसूत्रम्)

इसके अतिरिक्त "अरिहत" पाठ भी प्रचलित है जिसके अनुसार यह अर्थ होता है कि अरि-कर्मशत्रुका नाश करनेसे अरिहत कहे जाते हैं, जैसे कहा है कि-

"अरिहननादरिहन्तृ (तः) नरकतिर्यग्मनुष्यप्रेतावासगताशेषदुःखप्राप्तिनिमित्तत्वादरिर्मोहस्तस्यारेर्हननादरिहन्ता ।"

(धवलसिद्धान्त)

"मोहरज-अंतराय-हणण गुणादो य णाम अरिहन्तो"

(मूलाचार)

भावार्थ—"([illegible]) [illegible] कारण 'अरहन्त' कहलाते हैं, [illegible] नरक [illegible] मनुष्य [illegible] महीमाडी [illegible] [illegible] [illegible] है अतः उनसे [illegible]

(४) "अरहंत" शब्दनो अर्थ एवो अर्थ पण नीकळे छे के "राग-द्वेषना कारणभूत त्रिलोकना अनन्त पदार्थोने जाणवा देखवा छतां कोई पदार्थनी आसक्ति नथी, एटले के वीतरागस्वभाव छोडता नथी, एटला माटे 'अरहंत' कहेवाय छे।"

"आ उपरान्त "अरिहंत" ए पाठ पण प्रचलित छे, जेना प्रमाणे आ अर्थ थाय छे, के—अरि=कर्मरूपी शत्रुनो नाश करवाथी 'अरिहंत' कहेवाय छे।" जेमके—

"राग-द्वेष कषाय-पांचे इन्द्रियोना २३ विषय, २२ परिषह, तेमज अनुकूल प्रतिकूल उपसर्गना विनाशथी पण 'अरिहंत' कहेवाय छे।"

"रज अर्थात् आवरणोनो नाश करवाथी पण 'अरिहंत' कहेवाय छे, केमके-ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीयकर्म रजनी माफक छे, बाह्य तेमज अन्तरंग त्रिकाळना समस्त विषय भूत अनन्त अर्थ पर्याय तेमज व्यंजन पर्याययुक्त वस्तुओना विषयमां लीन छे, ज्ञान तेमज दर्शनना ढांकणरूप बने छे, एटले रजनी माफक आत्मा ऊपर मेलना थर चडवाथी ज्ञान अने दर्शनना प्रकाश बहार नीकळवा देतो नथी, जेमके रजथी छवायेला मोंढावाळा लोकोमां मन्दता जणाई आवे छे, एवीज रीते मोहथी जेनो आत्मा घेराएलो छे, तेनामां आत्मोपयोगनी मन्दता याने कुटिलता नजरे पडे छे, आ कारणथी रजरूप ज्ञानावरणादि कर्मना अभावथीज 'अरिहंत' कहेवाय छे।"

"अथवा रहस्य-अन्तराय कर्मनु नाम छे, तेनो क्षय करवाथी पण 'अरिहंत' कहेवाय छे, अन्तराय कर्मना नाश साथ घाति कर्मोना नाशनी साथे [illegible] प्रमाण थाय छे [illegible] [illegible] अर्थ नीकळे छे के [illegible] घाति [illegible] 'अरिहंत' कहेवाय छे।"

[illegible] 'अरहं' [illegible] 'अर' [illegible] इति गुणवादानुवाद।

जातोऽत्र विषये, भुवि ख्याते सिन्धोर्विषमविषये कोऽपि न मुनिः ॥ ८ ॥ जिनाज्ञासक्तानामपि च न गतः कोऽपि *मुमुनिः, सहस्राब्देनापि विहरणममुत्र न यतेः । मुने. पुप्फेन्दोश्च गमनमभवत्र प्रथमं, तत. पूर्वनील्या दिशमपि सुडोल्यां च गुरुणा ॥ ९ ॥
विहारप्रदेशोऽपि गत्वा च पूर्वं, कृता धर्मशिक्षा विशेषेण तत्र ।
अयं चातिरम्यो विहारप्रदेशो, महावीरदेवस्य जन्मास्ति यत्र ॥ १० ॥
अयं गुप्तदेशोऽधुना ह्रासयुक्त , सदा राक्षसप्रायजातश्च यस्मात् ।
महाकालिकामन्दिरे यत्र हिंसा, सदा जायते प्राणिनां कोटिशश्च ॥ ११ ॥
शरांकांकचन्द्रे मिते वत्सरेऽस्मिन्महावीरतीर्थंकरस्य जयन्त्याम् ।
नदीदीर्घदामोदराख्या तटे च, समागत्य पुप्फेन्दुसंज्ञो हि भिक्षुः ॥ १२ ॥
अहिंसोपदेश †चन्द्रकाग्रिमाने, प्रदत्वा परात्तां श्रयं पूगपुगण, वधप्रस्थानमुत्पाद्य यः [illegible], सदा या प्रचार प्रशस्योऽस्ति यस्य संदेश बहून्यन्यकार्यं विधाय, प्रदेश प्रमत्तस्तनो याति नूनम् ॥ १३ ॥
यश्चात्र प्रथम गुरोरनुमये देशे शुभे वत्सरे, वन्हंकांकविधौ मि[illegible] च झरियाग्रामे कृत भिक्षुणा । चातुर्मास्यकृत ततश्च प्रथम 'बंगे' गुरो. सेवक., वेदांकांकविधौ गतं च गुरुणा [illegible] गत पुप्फकः ॥ १४ ॥
सर्वानन्दमये शुभे च नगरे 'काशीयकला'ऽभिधे, यत्राष्टादशगांव्य [illegible] जनका [illegible] मना श्रावका । चातुर्मास्यकृत [illegible] शुभतो आद्य मुने सेवका , [illegible] 'पोरबंद' की ॥ १५ । [illegible]
[illegible] । [illegible] मुनिरत्न

[illegible]

संनिततरं श्रेष्ठा महान्तो गुरुर्जैनाराध्यमुनिभ्योऽपि मतपरेभ्यश्चैवं गुणाः सन्ति च ॥ १६ ॥ जैनाः संघमुख्यकारिणो सभा यत्रास्ति नित्यं गुरुः । सभ्याःश्रावकेऽपि सन्ति सततं नेत्रेन्दुतुल्या गुणाः ॥ अत्रैवं मुनयः यतो नव मिते मासे निवासोऽभवत् । एवं चेन्मनुजो नैव विद्यते गर्भे मुहुर्जायते ॥ १७ ॥ सम्प्रदायस्य वादस्य पक्षपातस्य बन्धनम् । त्रोटयित्वा स्वयं जातः, स्वतन्त्रश्च सदा मुनिः ॥ १८ ॥ ज्ञातपुत्रमहावीरजैनतत्त्वे व्यवस्थितः । नीरक्षीरविभागार्हः, स्वयं तत्त्व-चर्चां ययौ ॥ १९ ॥ महावीरस्य च प्रभोः, स्तुतेष्टीका कृता वरा । दिवसे दीपमालायां, याता पूर्णा च सवति ॥ २० ॥ कलिकाताख्य-नगरे, वेदांकनवचन्द्रके । श्रीपुष्पचन्द्रमुनिना, शिवाशिरसांगुंफितः ॥ २१ ॥ मुनिभिः प्रार्थ्यते श्रमणमहावीरस्य शासने । स्वयं तन्मुनि-चर्यायां, मौनमाश्रित्य तिष्ठति । भवान् परिग्रहत्यागी, यद्यस्ति कथनी-दृशः ॥ २२ ॥ सम्प्रदायप्रवादस्य, परिग्रहरतः कथम् । सम्प्रदायप्र-वादस्य, पक्षं कृत्वा पुनः पुनः ॥ २३ ॥ भवन्तः स्वसमाजेन सह यान्ति रसातलम् । भवन्तोऽनन्तसंसारपापवृद्धिं कृता कथम् ! वर्ध-यित्वा च स्वस्यैव पतनं कथमिच्छतः ॥ २४ ॥

भुजङ्गप्रयातच्छन्दः ।

यदा जीवहिंसापरित्यागिनश्चेद्भवन्तस्तदा सम्प्रदायस्य जाले ।
जनान् सर्वतश्चात्र घोरे निमज्ज्य, कथं कुर्वते ज्ञानचारित्रनाशम् ॥२५॥
अनेनाथ देहेष्वनन्तानुबन्धि-कषायस्य बन्धः कृतः तत्र नूनम् ।
इह शृङ्खलाबद्धजीवा भवन्तः पतिष्यन्ति चैव ध्रुवं सर्वगर्ते ॥२६॥
विपक्षानुरोधे महामोह एव, भवान् स्थितः सर्वथा त्यागयोग्यः ।
सदा मैत्रभावस्य नाशं प्रयान्ति, भवद्भिश्च यत्त्यक्तं सम्प्रदायम् ॥ २७ ॥

परिशिष्ट नं० १ वीरस्तुति–गुर्जरगायन

कडखाकी–चाल

तार हो तार प्रभु मुझ सेवक भणी,
जगत्‌मां एटलुं सुजश लीजे।
दास अवगुण भर्यो जाणी पोता तणो,
दयानिधि दीनपर दया कीजे ॥ १ ॥

भावार्थ—किसी समय श्रीजिनागमके अभ्यास द्वारा संसार भ्रमण करते हुए, ज्ञानावरणादि आवरणोंसे ढके जानेपर भी अपनी अनन्त शक्तिको ज्ञान कर अनादि परभावानुषंगताके दोषसे उद्विग्न आत्मा अपनी साधक शक्तिको न देखकर परम निर्यामकके समान २४वें तीर्थंकर श्रीज्ञातृपुत्र-महावीर भगवान्‌के नामका शरण निर्धारित करता है, और श्रीवीरपरमात्माको अन्तरमें अनुभव करके प्रार्थना सहित विनति करता है और अपनेको प्रभुका दास निश्चित करके समझकर मानो पुकार पुकार कर कहता है कि–हे नाथ! हे दीनदयालो! हे प्रभो! मुझसा निर्बल तत्त्वसाधक आपकी आज्ञाओंके पालन करनेमें कहां समर्थ है, मुझे तो मात्र नामका सेवक समझ कर तार! तार! इस दुःख-रोधरूप दु मसे निस्तार! ओह प्रभो! तुम से प्रभुको छोड़कर और किसे कहूं! यह इतनासा सुयश आपही लीजिए और मुझे भवजलधिसे पार कीजिए! भगवन्! मुझे यह भी ज्ञात है कि–प्रभुको तो सुयशकी कुछ भी अभिलाषा नहीं है। परन्तु उत्कण्ठासे भक्तिवश आपके नाममें आतुर होकर यह सब कुछ कहकर मैं ही अपनी अज्ञानताका परिचय दे रहा हूं, यद्यपि मैं अपनेको आपका दास समझता हूं, मगर यह दास तो रागद्वेष-असंयम-अनुत्तमतांसादि दोष-एकान्ततादोष-अनादर आदि दोषरूप अवगुणसे भरा हुआ है। तो भी मैं वैसा ही कहलाता हूं। अत एव हे दयानिधे! भावकरुणासमुद्र! मैं दैव-दैव-आश्रय हूं [illegible] आवरित, तत्त्वमार्गका विशुद्ध-असमय [illegible] आपकी आज्ञासे विमुख-अनादिकालका [illegible], [illegible] अनेक दुर्गुणोंसे पूर्ण हूं। इसी हेतु मुझ दीन-हीन पर दया कीजिए। [illegible] आपकी। यद्यपि अर्हन्त प्रभु पूरा कृतकृत्य

अतः मुझे तार, तार! हे नाथ! दीनबन्धो! निष्कारण दयालो! मुझे तार भव दुःखसे बचा, बचा ॥ २ ॥

आदर्यो आचरण लोक उपचारथी,
शास्त्र-अभ्यास पण कोई कीधो।
शुद्ध श्रद्धान वळी आत्म-अवलम्ब विन,
तेहवो कार्य तेणे को न सीधो ॥ ३ ॥

भावार्थ—शायद कभी कोई यह कहे कि—आवश्यक करणादि आचरण बहुतवार स्वीकार किया है, मगर उस चारित्रको तो लोकोपचारसे ही किया था जिससे फिर वह आत्मामें विष तथा गरलके समान परिणत हुआ, क्योंकि अध्यात्म अनुष्ठानसे क्या हो सकता है, यदि भावधर्म नहीं हो तो उसके बिना सब कुछ वृथा है, और उसे उपचार-गतानुगतिकतासे अंगीकृत किया समझा जाता है। इसके उपरान्त कोई यह भी कहेगा कि—उच्चगोत्र-यशोनामकर्म आदिके विपाकसे ज्ञानावरणीयके क्षयोपशमके योगसे शास्त्रोंका पूर्ण अभ्यास भी तो किया है, शास्त्रोंका पठन-पाठन किया है, शास्त्रके मर्ममेंसे यथार्थ अर्थको निचोड़ कर जगत्में उसका दिव्य प्रचार किया है। तथा अध्यात्म-भावनासे स्पर्शज्ञानानुभवके बिना उस श्रुतका अभ्यास किया गया परन्तु शुद्ध और यथार्थ स्याद्वादी-भावधर्मके बिना शेष भावधर्मकी दृष्टिसे दान दयादिक जो पुरुषार्थ किया गया है उन सबको कारण समझना चाहिए परन्तु मूल धर्म नहीं। धर्म तो वस्तु स्वरूप है, और वह आत्माके अन्तर्गत-स्वरूपसे पारिणामिकताकी दशामें स्थित है। उसमें से जो धर्म प्रकट होता है, वह शुद्ध-श्रद्धान, शुद्धप्रतीति, तथा शुद्ध आत्माके स्वरूपको प्रकट करनेवाली रुचि तथा आत्माके स्वगुण-स्वरूपकी अवलम्बनके बिना जो आचरण किया जाता है तथा ज्ञानाभ्याससे यदि यह धर्म किया जाता है, जिस कारणसे आत्माका साध्य साधन होता है, ऐसे विपरीत [illegible] नहीं किया [illegible] नहीं किया। [illegible] [illegible] [illegible] प्रकट [illegible] [illegible] वह नहीं हुआ, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ३ ॥

भावार्थ–स्वामी अर्थात् शासनपति, अर्हन् प्रभु, श्रीमहावीर भगवान्के गुणोंको पहचान कर जो प्राणी अरिहंतको भजता है उनकी सेवा करता है, वह दर्शन अर्थात् सावरण केवलज्ञान सम्यक्त्व स्वरूपकी शुद्धी प्रकार प्राप्त करता है । उसे दर्शनकी निर्मलता होती है, यथार्थ आत्म ज्ञान भासता है, चरित्र स्वस्वरूपमें रमण करता है, तप तत्त्वकी एकाग्रताको प्राप्त करता है, वीर्य आत्मसामर्थ्यका उद्भव करता है, उसके उपायसे ज्ञानावरणादि कर्मोंको जीत (क्षय कर) ता हुआ मोक्ष-निरावरण रूप सम्पूर्णसिद्धतारूप अपुनरावृत्ति धाममें जाकर निवास करता है ॥ ५ ॥

जगत् वत्सल महावीर जिनवर सुणी,
चित्त प्रभु चरणने शरण वास्यो ।
तारजो बापजी ! बिरुद निज राखवा,
दासनी सेवना रखे जोशो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जगत् जय वत्सल (हितकारी) चौबीसवें महावीर जिनवरके गुणोंको सुनकर मेरा मन प्रभुके चरण (चरित्र) रूपी शरण (भवन) में बस गया है, अत हे प्रभो ! ओ परमेश्वर ! मेरा आत्मा पराया ... आत्मका समस्थापन करे, ऐसी शक्तिका उद्भव तो मुझमें नहीं दीख पड़ता, इसीलिए मात्र भक्तिका आश्रय लेकर कहता हूं कि बापू ! मुझ दासको आप ही तारकरना, और आप अपनी तारकताका बिरुद सुरक्षित रखोके लिए इस दासकी सेवना (भक्ति) के सामने मत देखना, जो आपकी आज्ञानुसार भक्ति करता है वह निस्सन्देह पार होता है परन्तु [illegible] मेरे लिए यह सब कुछ [illegible] और [illegible] और [illegible] है [illegible]

विनति मानजो शक्ति ए आपजो,
भाव स्याद्वादता शुद्ध भासे ।
साधी साधकदशा सिद्धता अनुभवी,
देवचन्द्र विमल प्रभुता प्रकाशे ॥ ७ ॥

वीरस्तुति—

वीर जिनेश्वर चरणे लागुं, वीरपणुं ते मागुं रे।
मिथ्यामोह तिमिर भय भागुं, जीत नगारुं वाग्युं रे ॥ १ ॥

शब्दार्थ—वीर जिनेश्वर=चौवीसवें वीर प्रभुको, चरणे लागुं=नमस्कार करताहूं, (और) वीरपणुं ते=उनके समान, वीरपणुं=शूरवीर भाव, मागुं रे=में उनके पाससे यांचा द्वारा मांग लेता हूं, (उनका वीरत्व ऐसाहै कि-जिसके सन्मुख) मिथ्यामोह=मिथ्यात्व मोहनीय रूप, तिमिर भय=अन्धकारका भय, भागुं=दूर भाग खडा हुआ है, और-जीत नगारुं,=जयका नगारा, वाग्युं=रे=बज रहा है।

भावार्थ—मैं चौवीसवें जिनेश्वर श्रीमहावीरस्वामीकी भाव वन्दना करता हूं, और कर्मरूप शत्रुओंको जीतनेके लिए उनमें जो योद्धापन अथवा जैसा श्रीवीर भगवान्में वीरत्व है, मैं भी अपनेलिए वैसाही चाहता हूं, और जिनमें मिथ्यात्व मोहनीय कर्मरूप अंधकारका भय नष्ट होगयाहै, और फिर जीतका डंका बजगया है।

परमार्थ—मैं श्रीवीरभगवान्‌की भावोंसे वन्दना करके अपने लिए वीरत्व पानेकी मांग पेश करता हूं, श्रीवीरभगवान् कैसे हैं, ? जिनका कि-मिथ्यात्वादि मोह दूर होगया है, तथा कर्मरूपी शत्रुओंको पराजय करनेसे जिनका जयडंका बजने लगा है, ऐसे श्रीभगवान्‌को नमस्कार करके मैं वीरता मांगता हूं ॥ १ ॥

छउमत्थ वीरज लेश्या संगे, अभिसंधिज मति अंगे रे,
सूक्ष्म थूल क्रियाने रंगे, योगी थयो उमंगे रे, वी० ॥ २ ॥

शब्दार्थ—छउमत्थ छद्मस्थ अवस्थाकी, वीरज लेश्या-क्षायोपशमिक वीर्यवाला, लेश्या-आत्म परिणामकी एक दशा, [illegible] संगे सयोगके द्वारा (तथा) [illegible] प्रयुक्त करनेकी [illegible] मति बुद्धि, (उसके) अंगे [illegible] कारण (तथा) सूक्ष्म [illegible] थूल-स्थूल [illegible], [illegible] क्रियाके [illegible] करनेके [illegible] (श्रीभगवान्) [illegible]

उत्कृष्टे वीरजने वेसे, योग क्रिया नवी पेसे रे,
योग तणी ध्रुवताने लेसे, आतमशक्ति न खेसे रे ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—(लेकिन) उत्कृष्टे वीरजने वेसे=उत्कृष्ट कार्यके आवेशमें-जब कि सबसे अधिक वीर्य उल्लास होता है तब, योगक्रिया=मन-वचन-कायरूपी योगका व्यापार, नवी पेसेरे=प्रवेश ही नहीं करता, होता ही नहीं, (क्योंकि उस समय) योगतणी=योगकी, ध्रुवताको=अचलताको, लेसे=लवलेशमात्र भी, आतमशक्ति=आत्मबल, न खेसेरे=डिगाता नहीं,—योग स्थिर हो जानेके कारण।

भावार्थ—जब आत्मामें सबसे अधिक वीर्य प्रगट होता है तब मन-वचन और कायका कर्म बंधनरूप कार्य प्रवेश ही नहीं करता, कारण यह है कि—उस समय आत्मबल है, उस योगके अचलत्वको लवलेश मात्र भी डिगा नहीं सकता, ॥ ५ ॥

परमार्थ—उपरोक्त कथनानुसार आत्मा योगकी शक्तिके अनुसार कर्म पुद्गलको ग्रहण करता है, परन्तु यदि आत्मामें उत्कृष्ट वीर्य प्रगट होगया हो तो फिर मन-वचन-कायके योग लगभग बंद हो जाते हैं, और कर्मबन्धन-रूप क्रियासे फिर आत्मामें कर्म-बंध नहीं होता।

योगकी ध्रुवताका लेश सब आत्माओंमें होता है, और उस लेशमात्रसे भी आत्माके आठ रुचक प्रदेश कर्मबन्धसे भिन्न (अलग) रहते हैं। यह दृष्टान्त है। अब एवं ज्यों ज्यों आत्मामें उत्कृष्ट वीर्य प्रगट होता रहता है, त्यों त्यों कर्मबन्ध भी कम हो जाते हैं, और अन्तमें सम्पूर्ण वीर्यके प्रगट होने पर वीरभगवानकी तरह समस्त कर्मबंधका नाश हो जाता है और इष्ट वीरत्वस्वरूप प्राप्त होता है, अतः हे भगवान! मुझे वीरता अर्पण करो! ॥ ५ ॥

काम वीर्य वशे जेम भोगी, तेम आत्मा थयो भोगीरे,
सूरपणे आतम उपयोगी, थाय तेह अयोगी रे ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—कामवीर्य वशे=अपनी मनकी इच्छा होने पर, भोगी यथा, जम-जिस प्रकार भोगी=भोग करने वाला होता है, तेम-इसी तरह, आत्मा थयो भोगीरे-आत्मा, (अपने वीर्य-बल द्वारा अपने गुणोंका) भोगी बनता है,

प्रमाणे=अपनी शक्तिके प्रमाणसे ध्यान और विज्ञानसे, निज=अपना, ध्रुवपद=(परिणामकी स्थिरताको पाकर) शांतिरूप अचल पद, पहिचाणे=पद जानने से।

भावार्थ—आत्मगुणस्थानपर चढ़तेसमय परिपूर्ण शूरवीरता होनी चाहिए जिसे मैं अब जान सका हूं, किसलिए ? आपकी वाणी द्वारा, अर्थात् आपके उपदेशसे, पुन: मेरी निजी शक्ति के अनुसार ध्यान और विज्ञानके साहाय्यसे भी कुछ जाना है, यानी ध्यान और विज्ञानका जितना बल होता है, उतना ही, अथवा उसी प्रमाणमें अपनी वीरताका स्थिरपद और इन निमित्तोंसे पहचान लेता है।

परमार्थ—भगवान के पाससे वीरताकी याचना का विचार करते समय भगवान्‌के प्रतिपादन किए हुए उपदेशका स्मरण हुआ, इससे स्वयं ही प्रसन्न होकर कहता है कि प्रभो ! मेरी जो जो भूल हुई हैं उनका मुझे भान हुआ, अब तक मैं आपसे यही विनति करता रहा था कि-मुझे वीरता अर्पण करें, परन्तु मांगनेसे पहिले आपने फर्माया है कि-समस्त आत्माएँ मेरे समान हैं। अत: जो वीरतामें पहले आपसे मांग रहा था, वही वीरता मुझमें भी है। परन्तु खेद है कि इस बातकी मुझे जानकारी भी खबर न थी, परन्तु आपकी वाणीसे आपके तत्त्वपूर्ण उपदेशमें मुझे विश्वास हुआ है कि यह वीरता मुझमें भी पर्याप्त और अखंड है।

तब यह प्रश्न होता है कि-जब आपके समान वीरता आपमें भी है तब तुम उसे क्यों नहीं जानते थे ? और भगवानने कहा है कि-इसके अतिरिक्त वीरता अपने आत्मामें है, इसका प्रत्यक्ष अनुभव हो सकता है, इसी प्रकार यह परमात्मा यदि यथार्थ ज्ञान प्राप्त हुआ हो तो उसका भी अनुभव हो सकता है [illegible]

[illegible]

शब्दार्थ—[पूर्ण वीर्योल्लासवे शूरवीर बन कर] आलंबन=असमर्थ दशामें लियाहुआ आश्रय, (तथा) साधन=समस्त साधन—उपकरण, (उनको) जो=जो महात्मा, त्यागे=छोड देते हैं, पर परिणति=आत्मासे अन्य-पुद्गलादिका स्वभाव (उससे), भागेरे=दूर होजाता है, (वह) अक्षय=जिसका क्षय न हो, ऐसे शाश्वत, दर्शनज्ञान वैरागे=ज्ञान-दर्शन और चरित्रके द्वारा, आनन्दघन=आनन्दसे भरपूर, प्रभु=परम समर्थ-परमात्मा-ईश्वर, (होकर) जागेरे=(सदैव) ज्ञानसे जागृत रहता है।

भावार्थ—सम्पूर्ण वीर्योल्लाससे शूर वीर होकर जो पुरुष असमर्थ दशामें पहले लिए हुए आलंबनों को और समस्त (अनावश्यक) उपकरणोंको भी छोड देताहै, उस आत्मासे पर जो पुद्गलादिका विभाव है वह दूर होजाता है, पुनः वह महात्मा पुरुष जिसका कभी क्षय न होने पावे, ऐसे शाश्वत ज्ञान-दर्शन और चरित्रसे, आनन्दपदसे भरपूर परमात्मारूप होकर सदैव ज्ञानपूर्वक जागता रहता है, अथवा 'आनन्दघन' कवि कहते हैं, कि-प्रभु-आत्मा जाग जाता है, मानों अनादिकी कथनीसे आत्मा जागृत हो जाता है अर्थात् विभावदशाको त्याग कर स्वयं परमानन्दरूपमें मग्न हो जाता है।

परमार्थ—आत्मा अनादिकालके पुद्गल सम्बन्धी आधारसे अपना कार्यकरना त्यागदेता है, तब आत्माका अखंड-शुद्ध-चैतन्यत्व सम्यग् ज्ञान-दर्शन और चरित्रद्वारा प्राप्त करता है। और अनादि-कालसे आत्मा जिस पुद्गलके संगमें पड़ा ऊंघ रहा है, उसीसमय जग कर स्वयं अपने स्वरूपको प्राप्त करता है अथवा 'आनन्दघन' कवि कहते हैं कि-यह आत्मा पर वस्तुका संग छोडदे और अपना निजी अवलम्ब रक्खे, तथा पराधीनपन छोडदे तो इस रत्नत्रय के आराधनसे यह आत्मा तुरन्त मोक्षको प्राप्त होता है, ॥ ७ ॥

गुजराती भावार्थ—चोवीसमा जिनेश्वर श्री महावीर स्वामीना चरणमां हु वन्दन करुं छुं अने कर्मरूपी शत्रुओने हणवाना जे योद्धापणुं, अथवा महावीर भगवाननुं स्वरूप छे, तेनुं वीरपणुं हु मागुं छुं, वळी जे प्रभुनो ज्ञान कर्मरूपी अन्धकार-मद नष्ट थयो छे, अने कर्मरूप शत्रुओनो पराजय जेमनो जयपताका वरतो छे, एवा श्रीमहावीरभगवानने पण नमस्कार करुं छुं. ॥ १ ॥

आ गाथानो भावार्थ मने बराबर समजायो नथी, माटे गुरुगमथी धारवो, तो पण यथामति लख्यो छे, छद्मस्थावस्थामां आत्मानुं क्षायोपशमिक वीर्य होय छे, अने तेनी साथे तेवीज लेश्या मळे छे, एटले चोडायेलुं वीर्य कर्म-ग्रहण करे छे, आ कर्म ग्रहण करवानी दशाने अभिसंधिज कहे छे, अने मति उपर्युक्त वीर्यने ग्रहण करे छे।

देहकम्पनरूप सूक्ष्म क्रिया अने शरीर संकोचवा रूप तेमज तेनो प्रसार करवारूप प्रसारणनी क्रियाने स्थूल क्रिया कहे छे, एटले ते मन-वचन अने कायना योगने पामे छे। ॥ २ ॥

जेनी संख्या न आवे ते असंख्य कहेवाय आत्माना अथवा बीजा द्रव्योना सूक्ष्ममां सूक्ष्म आकाशना विभागमां रहेलो जे भाग ते प्रदेश कहेवाय छे। आत्माना आवा असंख्य प्रदेशो छे, अने ते एके एक प्रदेशमां असंख्य वीर्य छे, तेथीज आत्मा मन-वचन-अने कायना असंख्य योगनी कांक्षा-अभिलाषा थाय छे, अर्थात् ते योगो साध्य-प्रगट करवाने समर्थ छे, अने ते हेतुथी पुद्गलनी जुदी जुदी वर्गणाओने विविध प्रकारनी लेश्याओथी शक्तियुक्त सुदिलेली रहे छे, अर्थात् एक पछी एक ग्रहण करीने मापती रहे छे ॥ ३ ॥

आत्मा योगनी शक्तिने अनुसारे कर्मपुद्गल ग्रहण करे छे। पण जो आत्मामां उत्कृष्ट वीर्य प्रगट थयुं होय तो पछी मन-वचन-कायना योग रूप मग बंध थाय छे, अने कर्मबांधवा रूप क्रिया थी आत्मामां कर्मबंध पडतो नथी।

योगनी धुवतानो लेश बधा आत्मामां होय छे, अने ते लेशमात्रथी पण आत्माना आठ रुचक प्रदेश कर्म बधथी विरक्त रहे छे, ए दृष्टान्त छे। माटे जेम जेम आत्मामां उत्कृष्ट वीर्य प्रगट थाय, तेम तेम कर्मबंध कमती थाय, अने छेवटे सम्पूर्ण वीर्यपण प्रगट थता वीर भगवान्‌नी पेठे समस्त कर्मबन्धनो नाश थाय, अने शुद्ध चैतन्यपणु प्रगट थाय तेवुं छे। माटे हे भगवान्! मने वीरत्व आपो' ॥ ४ ॥

जेम कामी पुरुषना वीर्यनो बधारो थता तेने प्रबल कामेच्छा थाय छे, तेथी पुरुष स्त्रीनी अने स्त्री पुरुषना इच्छा करे छे। अथवा काम एटले इच्छा, ते द्रव्यादिकनी इच्छावालो जेम द्रव्यनी इच्छा करे छे, अने परमात्माने कांडे

छे, तेम आत्मा पण स्व-स्वरूपना अज्ञानपणाथी पर जे पुद्गलादिक तेना भोगनी वाञ्छा करे छे ।

पण ज्यारे आत्मानां शूरापणुं अथवा वीरपणुं प्रगट थाय छे, त्यारे [illegible]मोनो क्षय थतां ते पोतानुं स्वरूप जाणे छे, तेथी पर वस्तुपरथी तेने अभाव [illegible]य छे, आत्मा पोतामां रमण करे छे, मन वचन अने कायना योगने स्थिर [illegible]ी नवां कर्मो बांधतो नथी, अने छेवटे अयोगी पण थाय छे । तेथी वीर्यपणुं [illegible]र थतां आत्मानुं कार्य थवानुं जाणी प्रभु पासे वीरपणुं माग्युं छे । ॥ ५ ॥

भगवान् पासे वीरपणुं मागवानुं विचार करतां भगवाने करेला उपदेशनुं [illegible] थयुं । तेथी पोतेज गुरुपदइने कहे छे के हे प्रभो ! मारी जे भूल छे, ते [illegible]नाई, अत्यार सुधी में आपने विनंति करी के मने वीरपणुं आपो, पण मारी [illegible]े पहला आपे कहेलुं छे के तमाम आत्मा मारा जेवा छे, एटले जे वीर-[illegible] आपनी पासे मागुं छुं, ते वीरपणुं मारामांज छे, पण ते वातनी मने [illegible]खबर न होती, परन्तु आपनी वाणी थी एटले आपना उपदेशथी मारी खात्री थई छे के ते वीरपणुं मारामां छे ।

त्यारे प्रश्न थाय छे के ज्यारे वीरपणुं तमारामां छे तो तमे केम न होता [illegible]जाणता ! अने भगवाने कयुं छे के ते विवाद वीरपणुं पोताना आत्मानां छे । ते जाणवाने कीडुं साधन छे के केम ! तेनो उत्तर कहे छे के ध्यान करवाथी वीरपणुं पोतामां उद्भव थाय छे, अने तेनो प्रत्यक्ष अनुभव थई शके छे तेमज गुरुचरणथी विशेष ज्ञान प्राप्त थयुं होय तो तेथी पण अनुभव थई शके छे, [illegible]ज्ञान अने ध्याननी जेम विशेषता थाय छे तेम आत्म अनुभवनी पण विशेषता [illegible]जाणवी, उत्कृष्ट ज्ञान अने ध्यानने गुरुगमथी जाणी आत्मअनुभव करवानां [illegible]शति करवी ए आ स्तवननुं रहस्य छे एम हुं धारुं छुं ।

आत्मा पुद्गलना आधारथी पोतानुं कार्य करवानुं त्यागे, अने पुद्गलनुं [illegible] जो छोडी दे तो अखंड शुद्ध चैतन्यपणुं सम्यग्ज्ञान-दर्शन अने [illegible] प्राप्त करे अने [illegible] आत्मा [illegible] [illegible]

[आनन्दघन]

वीरस्तुति–

धन धन जनक 'सिद्धारथ' राजा, धन त्रिशला देवी मात रे प्राणी।
ज्यां सुत जायो गोद खिलायो, वर्धमान विख्यात रे प्राणी,
श्रीमहावीर नमो 'वर णाणी,' शासन जेहनो जाण रे प्राणी,
प्रवचन सार विचार हिए में, कीजे अर्थ प्रमाण रे प्राणी, २
सूत्र–विनय–आचार–तपस्या–चार प्रकार समाधि रे प्राणी,
ते करिये भवसागर तरिये, आतम भाव आराधि रे प्राणी, ३
ज्यों कंचन तिहु काल कहीजे, भूषण नाम अनेक रे प्राणी,
त्यों जगजीव चराचर योनि, है चेतन गुण एक रे प्राणी, ४
अपणो आप विषे थिर आतम, सोऽहं हंस कहाय रे प्राणी,
केवल ब्रह्म पदारथ परिचय, पुद्गल भरम मिटाय रे प्राणी, ५
शब्द-रूप-रस गंध-न जामे, नहीं स्पर्श-तप-छांह रे प्राणी,
तिमिर-उद्योत-प्रभा-कछु नाहीं, आतम अनुभव मांहि रे प्राणी, ६
सुख-दु:ख जीवन मरण अवस्था, ए दशप्राण संगात रे प्राणी,
इणथी भिन्न विनयचंद रहिये, ज्यों जलमें जलजात रे प्राणी, ७

भावार्थ—'सिद्धार्थ' राजा और 'त्रिशला' देवी राणीको धन्यवाद है, जहां 'वर्धमान जैसे पुत्र उत्पन्न हुए, उन्होंने अपने अङ्कमें उनको खिला खिला कर अपनी हौंस पूरी की, और वर्धमान नामसे तो तीनों लोकमें विख्यात हुए, अपर नाम महावीर भगवन्! जो श्रेष्ठ और निर्मल केवलज्ञान युक्त हैं, जिनका इस समय शासन काल प्रचलित हो रहा है, और भावी कालमें भी १८५०० वर्ष तक चलेगा, उन्हें मेरा योग और करणकी शुद्धिसे नमस्कार है, जिनके प्रवचनका सार आत्मभाव और परमात्म विचार है। यदि उसका मनन और निदिध्यासन किया जाय तो यह आत्मा मोक्षकी पूर्ति शीघ्र ही कर सकता है।

ज्ञात-नन्दन महावीरप्रभुने 'सूत्र' 'विनय' 'आचार' और 'तपस्या' ये चार प्रकारकी समाधि भव्य प्राणिओंके कल्याणके अर्थ प्रतिपादन की है,

महातपस्वी तपस्या करता घोरने, सूर्य समुं दीपे छे तेनुं ज्ञान जो,
वैरोचनने सूर्यसमा ते बाळता, जगत् महिं जे व्याप्या सहु अज्ञान जो ६
स्वर्ग महींतो सहस्र देवो शोभता, रूपगुणमां सौथी शोभे इन्द्र जो,
सर्वलोकनी शोभा महीं ते शोभता, अतिप्रभावी ज्ञातपुत्र मुनीन्द्र जो।
ऋषभ आदि चौवीस तीर्थंकर थया, जेथी प्रसर्यो सर्व श्रेष्ठ जैन धर्मजो,
जैनधर्मनो नेता ते महावीर छे, काश्यप कुळमां थइने मांग्यो मर्म जो ७
महेरामणनो पार कदी नहीं आवतो, तेम प्रभुनी बुद्धिनो नहीं पार जो,
द्रव्यक्षेत्रने काल-भावना मापथी, अक्षयसागर वीर ज्ञान अपार जो।
निर्मल जळ तो महेरामणनुं दीपतुं, तेम प्रभुनी ज्ञानज्योत झळकाय जो,
कषायकापी कर्ममुक्त पाम्या थकी, देवाधिप ते इन्द्र समा लेखाय जो।८
वीर्यवानमां अनन्त वीर्ये शोभता, जे वीर्यनी जगमां छे नहि जोड जो,
गिरि वृन्दमां गिरि नहीं मेरु समो, मेरु सम जे शोभे जगमां श्रेष्ठ जो।
देव सकळतो मोज माणता मेरु थी, तेम प्रभुथी पामे सौ आनन्द जो,
रंग चंदने गुणो रम्य छे मेरुना, गुणो प्रभुना आपे परमानन्द जो ९
गिरिराज ते ऊंचो योजन लाख छे, पृथ्वी परथी सहस्र नवाणुं थाय जो,
पृथ्वी तलमां सहस योजन एक छे, अति मनोहर कंडक जेने होय जो।
ऊपर कंडके पडकवन विराजतुं, ते तो जाणे ध्वजा गिरिनी थाय जो,
गिरिराज ए व्यापक छे मध्यलोकमां, ज्ञान प्रभुना एवा व्यापक होयजो१०
गिरिराज ते गगन टोचने पहोंचतो, नीचे तो ते करे भूमिमां वास जो,
ऊर्ध्व अधोने तिर्यक् लोके व्याप्त छे, विमान ज्योतिष्क फरतु तेनी पासजो
गिरिराजनी ख्याति छे त्रिलोकमां, नन्दनवन तो आव्या तेमा चार जो
अनेक वनना क्रीडास्थल त्या शोभता, इन्द्रदेवनां क्रीडानो नहिं पारजो११
देव रमे त्या मुखविलसे विधविधना, मदरध्वनिओ आनन्दनी संभळायजो,

वृक्ष महिं तो शाल्मलीने जाणवुं, काननमां नहिं नन्दनवननी जोडजो,
शाल्मलीने नन्दनवनना आशरे, सुपर्ण सरखा देव करे प्रमोद जो
शाल्मलीने नन्दनवन तो क्यां मळे, अद्वितीय स्थानो लोक महिं पंकायजो,
शाल्मलीने नदनजेवा जंबूजी, वीर बुद्धिने ज्ञान चरित अंकाय जो १८
शब्दमहीं तो मेघशब्द क्यांथी मळे ! मेघतणु तो गंभीरगर्जन होय जो,
ग्रहोमहीं तो चंद्र सम छे ग्रह नहि, मनहर जेनी शीतळता प्रसराय जो;
सुगन्धिओमां मलयजसम छे वासक्या? लोकमहीं ए चंदन श्रेष्ठ गणायजो,
मेघ चद्रने मलयज जेवा जाणवा, मुनिवर्गमां वीरना विरक्त भाव जो १९
सिंधु महीं तो स्वयंभू रमण जाणवो, क्रीडा करता देवो ज्यां सहर्ष जो,
भवनवासीमां भव्य नागकुमार छे, भव्यरूपथी मनपामे उत्कर्ष जो;
सर्व रसोमा ईक्षुरसने जाणवो, मधुरताथी मनडुं शीतल थाय जो,
ईक्षु-स्वयंभू-देवनाग सम वीरला, वीरप्रभुना प्रधान तप जप होय जो २०
हस्ती महिं ऐरावत सम छे हस्ती नहिं, पशु महीं तो सिंहकेसरी एक जो,
निर्मळ जळमा गंगाजळने जाणवु, विहगोमा गरुड एक निशंक जो;
ऐरावत मनगमतीलक्ष्मी लावतो, लाव्या लक्ष्मी त्रिशला घर वीर जोध जो,
गरुड-गंगा-ऐरावतने हस्ती सम, मोक्षवादीमां वीरना मुक्ति बोध जो २१
योद्धाओमा वासुदेव बहादुर छे, प्रिय पुष्पमा पकज सम नव कोय जो,
क्षत्रीओमा चक्रवर्ती प्रधान छे, विरल गुणना विरला स्वामी होय जो;
वासु तणु बळ अष्टापद वीसलाखनु, पकजने छे नवली मीठी वास जो
वासु-कमळने चक्रवर्ती सम जाणवा, ऋषिवर्गमा वीर महर्षिख्यात जो २२
दान महीं तो अभयदानने जाणवु, सत्य महा तो 'निरवद्य' निश्चित जो,
सर्व तपो मा ब्रह्मचर्य विशिष्ट छे, आत्मबळनी जागे तेथी ज्योत जो,
अभयदानथी दूर जती हिंसा महा, निरवद्यथी परपीडा नवी थाय जो,

परिशिष्ट नं० २-प्राकृतस्तोत्रविभागे

(षड्भाषामयं वीरस्तोत्रम्)

विद्यानां जन्मकन्दस्त्रिभुवनभवनालोकनप्रत्यलोऽपि,
प्राप्तो दाक्षिण्यसिन्धुः पितृवचनवशात्सोत्सवं लेखशालाम् ।
जैनेन्द्रीं शब्दविद्यां पुरत उपदिशन् स्वामिनो देवतानां,
शब्दब्रह्मण्यमोघं स दिशतु भगवान् कौशलं त्रैशलेयः ॥१॥ (संस्कृतम्)

जो जोईसरपुंगवेहि हियए निच्चंपि उझाइज्जए,
जो सव्वेसु पुराणवेयपभिइग्गंथेसु गीइज्जए ।
जो हत्थट्ठियआमलं व सयलं लोकत्तयं जाणए,
तं वंदे तिजयग्गुरुं जिणवरं सिद्धत्थरायंगयं ॥ २ ॥ (प्राकृतम्)

देविंदाणवि वंदणिज्जचलणा सव्वेवि सव्वण्णुणो,
संजादा किर गोतमा अवि तया जस्सप्पसादा दुते ।
सो सिद्धत्थमिहाणभूवदिसदो जोगिंदचूडामणी,
भव्वाण भवदुक्खसल्लक्खदलणो दिज्जा सुहं मासदं ॥३॥ (शौरसेनी)

दुस्ठे संयमके युद्धे भयकले घोलोवसग्गावलिं,
कुव्वंतेवि न छोभमोशकलुशं येणं कदं माणसं,
हद्दे भत्तिरले ण केल वद्धल योगीशलक्कामणी,
से वीले पलमेशले दिशदु मे [illegible] ॥ ४ ॥ (मागधी)

[illegible],
[illegible] ।
[illegible],
[illegible] ॥५॥ (पैशाची)

(वीरस्य चतुस्त्रिंशदतिशयस्तवनम्)

थोस्सामि जिणवरिंदे, अब्भुअभूएहिं अइसयगुणेहिं, ते तिविहा साहाविय, कम्मक्खइआ सुरकया य ॥ १ ॥ देहे विमलसुगंधं, आमयपासेहिं वज्जिअ अरअं, रुहिरं गोक्खीरामं, निविस्सं पंडुरं मंसं ॥ २ ॥ आहारा नीहारा, अद्दिस्सा मंसचक्खुणो, सययं नीसासो अ सुगंधो, जम्मप्पभिई गुणा एए ॥ ३ ॥ खित्ते जोयणमित्ते, जं जियकोडीसहस्साओ माणं, सव्वसमामाणुसयं, वयणं धम्मावबोहकरं ॥ ४ ॥ पुव्वुप्पन्ना रोगा, पसमंती ईयवयरमारीओ, अइवुट्ठी-अणावुट्ठी, न होइ दुब्भिक्खडमरं वा ॥ ५ ॥ देहाणुमग्गलग्गं दीसइ, भामंडलं दिणयरामं, एए कम्मक्खइया, सुरभत्तिकया इमे अन्ने ॥ ६ ॥ चक्कं छत्तं रयणज्झओ अ, सेयवरचामरा पउमा, चउमुहपायारतियं सीहासण दुंदुही असोगो ॥ ७ ॥ कंटय हिट्ठा हुत्ता, ठायंति अवट्ठियं च नहरोमं, पंचेव इंदियत्था, मणोरमा हुंति छप्पिरिऊ ॥ ८ ॥ गंधोदगं च वास, वास कुसुमाण पंचवण्णाण, सउणा पयाहिणगई, पवणणुकूलो नमंति दुमा ॥ ९ ॥ भवणवइ वाणमंतर-जोइसवासी विमाणवासी-अ, चिट्ठंति समोसरणे, जहण्णय कोडिमित्त नु ॥ १० ॥ [illegible] जणेहिं, बोहिनिमित्त [illegible] मयाकाल ॥ ११ ॥ [illegible] देव नणिए [illegible] वण्णिआ [illegible] ॥ १२ ॥

([illegible]गुणस्तवनम्)

[illegible] भगवंतामयवरगुणकि[illegible] ॥ १ ॥ [illegible]गुणहिरनिग्गोम ? वम-

जियमोहमहावीरो चरमो 'तित्थंकरो' 'महावीरो' ।
असमसमो असमसमो निरंतरं कुणउ कल्लाणं ॥ १ ॥

श्रीवीरसप्तविंशतिभवस्तोत्रम्

तिसलासिद्धत्थसुअंसीहंकं सत्तहत्थ कणयनिहं, भवसत्तावीसकहणेणं, वद्धमाणं थुणामि जिणं ॥ नयसारो सुगामे पढमे १ वीर भवे पहु ! सुहम्मे २ । तइए मरिइ तिदंडी ३, विणिआइ चउत्थए बंभे ४ ॥ कुल्लागि कोसिअदिओ, पंचमि ५ संसारचउरच्छठ्ठभवे ६ । थूणाइ पूसमित्तो सत्तमि ७ सोहम्मि अठ्ठमए ८ ॥ नवमे अग्गिज्जोओ, चेइअगामम्मि ९ दसमि ईसाणे १० । इगदसमि अग्गिभूइ, मंदिरि ११ बारसमि सणकुमारो १२ ॥ तेरसमे १३ सेअबिआ, भारद्दाओ महिंद चउदसमे १४ ॥ रायगिहि थावरदिओ, पनरसमे १५, सोलसे बंभे १६ ॥ रायगिहि विस्सभूई, सत्तरसि १७ अट्ठारसे महासुक्के १८ । गुणवीसे पोअणपुरि, तिविट्ठु १९ वीसे तमतमाए २० ॥ पहु ! इगवीसे सीहो, २१ पंकाइ दुवीसमम्मि २२ तेवीसे । मूआपुरि पिअमित्तो चक्की २३, सोहम्मि चउवीसे २४ ॥ पणवीसे छत्तग्गाइ, नंदणो २५ पाणयम्मि छवीसे २६ । खत्तियकुंडग्गामे, सत्तावीसे महावीरो २७ ॥ मगसिरवइदसमि वय कत्तिअमावसि सिवं सिआसाढे, छट्ठि सुर विसाहदसमी नाणु भवो चित्ततेरसिए । इअसिरिवीरजिणंदो थुणिओ भत्तिब्भरनमिरदेविंदो, वरयम्मकित्तिविहि विज्झाणं देउ मह सिद्धिं ॥

श्रीमहावीरस्तोत्रम्

जइज्जा समणो भयवं, महावीरे जिणुत्तमे । लोगनाहे सयंबुद्धे, लोगंतिअनिबोहिए ॥ १ ॥ वच्छरं दिण्णदाणोहे सपूरियजिणासए । नागनयममाउच्चे, पुत्ते सिद्धत्थराइणो ॥ २ ॥ चिच्चा रज्जं च रट्ठं च,

नमाऽनाश्रितशर्मासु, नेहमन्ददयान्वित ।
तथा त्वत्तः सुरेश त्वं, केतुबोधिधियं हितः ॥ १९ ॥ [वज्रम्]
यस्तेऽष्टादशचित्रचक्रविमलं वीर ! स्तवं संश्रियं,
भवत्यैवं कुलमण्डनोऽतत महाज्ञानातनुश्रीशुभ !
मुक्तश्रीयुतचन्द्रशेखरगुरुप्राज्यप्रसादादमुं,
तं तातात वरः स शान्ततम शं मासा ततः सन्ततम् ॥ २० ॥
[परिधिकाव्यम्]

चक्राऽयोमुसलशूलशंखसहिते सुश्रीकरीचामरे,
सीरं भल्लशरासने असिलता शक्तयातपत्रे रथः ।
कुम्भार्धभ्रमपङ्कजानि च शरस्तस्मात् त्रिशूलाशनी,
चित्रैरेभिरभिष्टुतः शुभधियां वीर ! त्वमेधि श्रिये ॥ २१ ॥

इति वीरस्तवः

(अथ वीरस्तवनम्)

चित्रैः स्तोष्ये जिनं वीरं, चित्रकृत् चरितं मुदा ।
प्रतिलोमानुलोमाद्यैः, सन्नाद्यैश्चातिचारुभिः ॥ १ ॥
वन्देऽमन्ददमं देवं, प. शमाय यमाशय ।
नायेनध धना येनापाकृता ममताकृपा ॥ २ ॥
[प्रतिलोमानुलोमपाद]

दामना नव भागाग, न चेयायमनामम ।
समनामयया चेन गागाभावतता मदा ॥ ३ ॥ [अनुलोमप्रतिलोमः]
वरदानवरादिन्व न्वदिरावनदारव ।
याज्यदेव भयान्याम सन्याया भवदेज्यया ४॥ [अर्धप्रतिलोमानुलोमः]

मनल्पपापजनिर्भवान् स्तीयवचांस्युवाप । यतिप्रियः क्षितविश्वतापशिलं वचः शीततमं ललाप ॥ २ ॥ शुभा भवद्दृष्टिरितानुतापहेला जनं यं भगवन्नवाप । भवाशयः कोऽपि न हि प्रलापविपत्तिपत्तिस्त्रनरिस्तताप ॥ ३ ॥ जज्ञे भवान् वीर ! लसत्कलाप ! यस्याशये प्रीणितसत्कलाप । कृत्येष्वनेपद्धिवर्दीयलापतिग्मद्युतिस्त्वं प्रणताचलाप ! ॥ ४ ॥ इति मुदितमनस्को मूर्धगाधार्यनानाऽक्षरकमलनिबन्धैर्बन्धुरैः संस्तुतो यः । कमलविजयसङ्ख्याबद्धिनेयाणुरेणौ, स भवतु मयि देवो दत्तदृष्टिः सतुष्टिः ॥ ५ ॥ इति षोडशदलकमलबन्धबन्धुरं श्रीशासनाधीशवर्धमानजिनस्तवनम् ॥

अनवरतनमरनरवरमुतनतपदकमलयमल ! मलदलन ! अनपमद्-
मरणचयमय ! ततरभरधरणधवल ! जय ॥ १ ॥ जयसरसवचनवशा-
जन ! समघन ! सदवयवसरलकरचरण ! जलजदलनयन ! गतमल !
शशधरवरवदन ! गजगमन ॥२॥ जय सदय ! सनय ! भवदवकवलन
[शमन] नवजलदसमवसन ! अचलचल ! सकलभयहर ! शमदमल-
यभवन ! जगदवन ! ॥ ३ ॥ अदमतमकरणगजगणस्वरतरसरनखर-
नखरभवधरण ! अवतनतमसमनमघनयनपहर मम समयतपनपद !
॥ ४ ॥ हततततभवजगनचर मत कर लसदमय दहन कमनग !
अपनय मम नवरसमरनशरणजनशरण ! गतमरण ! ॥ ५ ॥ असदय-
वशभवदवकरगतरसदलपटलहरणखरपवन ! मम वचनमनसमहमह-
रवतर कनकनगवदतरल ॥ ६ ॥ जननयनमदनघननदफणधरगरल-
दरदमनपनगवर ! हतशकलनव मम जननजलगतलवमकणवदमलय
॥७॥ ननदमलनयनकजवनदशशतकरमहलगहनभवदहन ! अकरणगम-

मंडणां, विनय विवेक घी घाल ॥ ३० ॥ क्षमारूपी खाजला करो, वैराग्य घृत भरपूर, उपशम मौण घालने, शुद्धमन मोतीचूर ॥ ३१ ॥ भाव दिवाली इम करो, उतरो भवजल पार, जप तप सेवा भावसुं, लाहो ल्यो हुमलार ॥ ३२ ॥ दीवाली दिन जाणिने, धन्य निजघर माहीं, धर्मध्यान मनआदरो, अजर अमर पद पाही ॥ ३३ ॥ पूजे दिवाली ने दिने, बही लेखनी मसीपात, एम ज्ञानने पिण पूजजो, बाधे पुण्यना ठाठ ॥ ३४ ॥ पर्वे दिवाली जाणिने, उजलावे घर हाट, इम तुम मत उज्वालजो, दीपे अधिकी बात ॥ ३५ ॥ घर कुटुंब धन बालका, जिम बाल्हा लागे तोय, तैसो नेह करो धर्मसुं, ज्यों मुक्ति सुख होय ॥ ३६ ॥ जाग्या पछी सुखड़ा करे, तो बोलो अविरात, जो असंयति जागसी, करसी छ कायानीघात ॥ ३७ ॥ ध्यान स्वाध्याय मनी करो, सुणो बोल ने चाल, आजनो दिनछे मोटको, दीवालो मत घाल ॥ ३८ ॥ पर्वे दिवाली जाणने, सार पाशा मत कूट, धर्मध्यान ध्याओ सदा, नफो धर्म नो टट ॥ ३९ ॥ चैत्र सुदी तेरस दिने, जनम्यां श्री वर्धमान, कार्तिक वदी अमावस्यां, पाम्या मोक्ष निदान ॥ ४० ॥ मनुष्य जन्म छे दोहिलो, पाम्यो आरज खेत जोग मिल्यो साधां तणो, चेत सके तो चेत ॥ ४१ ॥ सेवाकरो सुगुरु तणी, गाओ ज्ञान धन घेर, दोय घड़ी शुद्ध भावसुं, नवकरवाली फेर ॥ ४२ ॥ अंग उपागने छेदमें, जीव दया मत पाल । ताले ऋषि जयमल कहे, इसी दिवालीने मान ॥ ४३ ॥

(महावीर स्तवन)

वीर जिनेन्द्र शासन धणी, जिन त्रिभुवनस्वामी । ज्यारे चरण कमल चित नित धर्म, प्रणमूं सिरनामी । सुर स्थिति नगरी पिता मात चिन्ह अवगाहना, वर्ण आयु पुनी कुमर पद तणका परमाना । चरित्र बल प्रभु गुण घणा है छद्मस्थ केवल ज्ञान, तीर्थ गणधर केवली जिन शासन परमाण ॥ १ ॥ देवलोक दशवे वीस सागर पूर्णस्थिति पाए, कुन्डनपुर नगरी में चवी थी जिनवर आए । पिता सिद्धार्थ पुत्र, मात त्रिशलादेवी नन्दा, जननी कुक्षिमें अवतरे श्रीवीर जिनन्दा । ज्यारे चरण लक्षण सिंहनाद अवगाहना कर सात, तन कचन वर्ण शोभता, त प्रणमू जगनाथ, ॥ २ ॥ बहुतर वर्षनो आउखो पायां सुखकारी, नामवर्धकंकल्पदे रचा अभिग्रह धारी । उपसर्ग परिषह सहन करत पुनी शमरस भीनो, अनन्तवली भगवन्त जान वार नाम जु दीनो,

चंदे राजु लोक भरे बाउदा कनियां, सबै जीवनी रोमराय नहीं करे गिणिया। एक बालु तप करे, गुण गण करे अत्यन्त, पूज्य प्रसाद श्री लालचंद कहे नहीं आवे अन्त। संवत् १८६२ एम्मास सु मृगशिर पेर। स्यामपुरे गुणगाविया, धन २ वीर जिणंद ॥ ११ ॥

वीरस्तुति-परिशिष्ट नं० ५
शान्तरसपूर्ण शान्तिप्रकाशः

प्रार्थनाष्टकम्-

प्रेमसहित वन्दों प्रथम, जिनपद कमल अनूप।
ताके सुमरत अधमनर, होवत शांत सरूप ॥ १ ॥
पूर्व नमामि सस्नेहं, जिनाङ्घ्रिकमलं शुभम्।
यस्य स्मृत्या नरा नीचा, जायन्ते शान्तिरूपकाः ॥ १ ॥
तुम शरणे आयो प्रभु, दास लेऊ निज टेक।
निर्विकल्प मम सिद्धजी, देयो विमल विवेक ॥ २ ॥
शरणं ते प्रभो! प्राप्त, संरक्ष्यो निजभावुकः।
कल्पनातीतसिद्धेश! बोध वितर निर्मलम् ॥ २ ॥
करूं वंदना भावयुत, त्रिविध योग थिर धार।
रतन! रतन दाम देय गुरु, ज्ञान अपाहर सार ॥ ३ ॥
कुर्वा वंदनं त्रियोगेन, सभाव प्रणमाम्यहम्।
देहि मे रत्न! विज्ञानं, रत्नतुल्यं शुभ परम् ॥ ३ ॥
उपाध्याय अध्ययन श्रुति, निशिदिन करत अभ्यास।
दीनबन्धु मुझ दीजिए, दास दया ज्ञानविलास ॥ ४ ॥
[illegible]
[illegible]
[illegible] कर्मजाल [illegible]
[illegible] पूर्णाम ॥ ५ ॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]

विकलोऽतीव दु:खेन, सुखं प्राप्नोमि न क्षणम् ।
अशुभेभ्यः शुभेभ्याऽहं, सिद्धिर्नोऽपि क्षणे कृतेः ॥ १२ ॥

यह सम्बन्ध भलो बन्यो, हम तुमसों सर्वज्ञ !
त्यागो ताहि न संग रखे, पिता पुत्र लखि मज्ञ ॥ १३ ॥
मया त्वया च सर्वज्ञ ! जातः सम्बन्ध सुशोभनः ।
नो त्याज्यश्च सदा रक्ष्यः, पित्रेवाज्ञोऽपि पुत्रकः ॥ १३ ॥

मेटहु कठिन कलेश तुम, परमातम परमेश ।
दीन जानिकर बकसिये, दिन दिन ज्ञान विशेष ॥ १४ ॥
परमात्मन्! परेश ! त्वं, क्लिष्टं क्लेशं विनाशय ।
दीनं ज्ञात्वा च देहि त्वं, नित्य ज्ञानं शुभं मम ॥ १४ ॥

कृपा करो निर्बुद्धि पै, लखुं जुं अनुभव रीति ।
अशुभ और शुभ देखके, करूं न कबहुं प्रीति ॥ १५ ॥
कुरु कृपां च निर्बुद्धौ, येनेक्षेऽनुभवक्रमम् ।
वीक्ष्याऽशुभं शुभं चैव, कुर्य्यां नो तत्र संरतिम् ॥ १५ ॥

सब प्रकार धनवन्त हो, सुनहु गरीब नियाज ।
भारत-चन्द्र कुरुयानने, बकसि बकसि महाराज ॥ १६ ॥
त्वम् त्व दीनबन्धोऽसि, सर्व्वैश्वर्य्यसंयुत ।
भारतीन्दुकुरुध्यानात्, मयो तारय मां प्रभो ! ॥ १६ ॥

धर्म शुक्ल ध्यावत रहूं, दोष ध्यान दुखकार ।
या जग ममता उदधि मे, दीजे पार उतार ॥ १७ ॥
ध्यायामि शुक्लं ध्यानं, धर्म्मं शुक्लं च नित्यशः ।
निस्तारय विभो ! मां तु, मोहमम्भोदसागरात् ॥ १७ ॥

करुणा करिके मेटिये, विषय वासना रोग ।
मैं दुखयी वेदन प्रबल, लखि मम जोग अजोग ॥ १८ ॥
दया धराय देव [illegible], विषयेच्छामय हर ।
[illegible] ॥ १८ ॥

मैं [illegible] [illegible], तुनिहो [illegible] प्रतिपाल ।
[illegible] दास को, यह [illegible] दीजे दाल ॥ १९ ॥

॥ अथ रागनिवारणाष्टकम् ॥

अरे जीव भव वन विषे, तेरा कवण सहाय ।
जाके कारण पचि रह्यो, ते सब तेरे नाय ॥ २६ ॥
भवारण्येऽत्र रे जिव ! सहायः कोऽस्ति ते वद ।
यदर्थं खिद्यसे नित्यं, तव ते सन्ति नो भुवि ॥ २६ ॥
संसारी को देखले, सुखी न एक लिगार ।
अब तो पीछा छोडदे, मत धर सिर पर भार ॥ २७ ॥
पश्य संसारिणं जीवं, न कोऽपि सुखभाग्भुवि ।
अनुभूतिं त्यजेदानीं, शीर्षे मा धर भारकम् ॥ २७ ॥
झूंठे जगके कारणे, तू मत कर्म बंधाय ।
तू तो रीता ही रहे, धन पेला ही खाय ॥ २८ ॥
मिथ्यासंसारमुद्दिश्य, कर्मबन्धं तु मा कुरु ।
रिक्तो यास्यसि जीव ! त्वं, मोक्ष्यन्ते हीतरे धनम् ॥ २८ ॥
तन धन संपत् पायके, मगन न हो मन मांय ।
कैसे सुखिया होयगा, खोयत *लाय लगाय ॥ २९ ॥
तनुं वित्तं विभूतिं च, लब्ध्वा हृष्टस्तु मा भव ।
वह्निं प्रज्वाल्य हर्षे किं, स्वायसि त्वं कथं सुखी ॥ २९ ॥
ठाठ देख भूले मति, यह पुद्गल पर्याय ।
देखत देखत नाहरे, आमी थिर न रहाय ॥ ३० ॥
भूतिं दृष्ट्वा प्रमाद्य त्वं, मेय जाता तु पुद्गलैः ।
नश्यति पश्यतस्ते वा, न स्थिरेयं कदाचि च ॥ ३० ॥
लूटेंगे ज्ञानादि धन, ठगराम यह संसार ।
मींठे वचन उचारिके, मोह फांसी गल डार ॥ ३१ ॥
जिव ज्ञानाद्यं धनं संहृत्य [illegible] ।
न [illegible] ॥ ३१ ॥
स्त्रियां भूत नारी लखा, कर न ममता विस्तार ।
ना मान तो परभव, ममता का संसार ॥ ३२ ॥

कटु तीक्ष्ण अति विषभरी, गाली शस्त्र समान ।
अशुभकर्म गुम्मड भिदो, यों जिय सुलटी आन ॥ ५२ ॥
कटुतीक्ष्णा विशेषेण, शस्त्रतुल्या हि गालिका ।
क्षुधेति तां विजानीहि, स्फोटो भिन्नः कुकर्मणः ॥ ५२ ॥

कटुक वचन कोऊ कह दिया, लगे जु दिलमें तीर ।
समदृष्टि यों समझले, मोय जान्यो अतिवीर ॥ ५३ ॥
कटूक्तिः परसम्प्रोक्ता, बाणवद्भिनत्ति या ।
समदृष्टिर्विजानीयाज्ज्ञातोऽहं वीरपुरुषकः ॥ ५३ ॥

वैरी होता तो कबहु, नहीं कहता कटु बात ।
सज्जन दीसत माहरो, तब लखि कटुक सुहात ॥ ५४ ॥
अभविष्यदयं शत्रुर्नावदिष्यत्तदा कटुः ।
सज्जनो दृश्यते मेऽय, कटूरायति रोगहृत् ॥ ५४ ॥

अवगुण सुनिके आपणां, रे मन ! सुलटी धार ।
मो गरीवको जानिके, लीना बोझ उतार ॥ ५५ ॥
आत्मनो दोषमाकर्ण्य, सत्यं धारय हे मनः ।
ज्ञात्वाऽनेन तु मां दीनं, तीर्णोद्भारोऽवतारितः ॥ ५५ ॥

मैं भूल्यो शुभ राहको, इतने दई बताय ।
दुर्जन आनि परे नहीं, सज्जन गो दरसाय ॥ ५६ ॥
शुभार्गो विस्मृतो नूनं, मया चाय प्रबोधयत् ।
ज्ञायते दुर्जनो नाय, सज्जनस्तु विलक्ष्यते ॥ ५६ ॥

ज्ञान अम्ल गुरज हुआ, मैं भूल्यो निजस्वाद ।
निन्दा रूप मसालके, इने दिखाइ राह ॥ ५७ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ५७ ॥

सुनि निन्दकके वचनको, जिन मति करे उचाट ।
[illegible] ॥ ५८ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ५८ ॥

निजगुणमें जिय ठहर तू, परगुण पद मति धार।
पर रमणीसे राचि करि, मत कहलावे जार ॥ ७९ ॥

तिष्ठात्मनो गुणे जीव! मा धत्स्वान्यगुणे पदम्।
परस्त्रियामनुरक्तः सन्, भव मा जारशब्दभाक् ॥ ७९ ॥

तम रजनी नाशे नहीं, दीपककी कही बात।
पूरण ज्ञान उद्योत बिन, हृदय भरम नहीं जात ॥ ८० ॥

प्रोक्ता वार्ता प्रदीपस्य, नश्यति किं निशातमः।
पूर्णज्ञानविभाभेन, विना नो याति सम्भ्रमः ॥ ८० ॥

यथालाभ सन्तोष कर, चहे न कछु दिल बीच।
या विधि सुख अति अनुभवे, ज्यों न फँसे दुःख कीच ८१

यो यथालाभसन्तुष्टो, वाञ्छा चित्ते न यस्य वै,
दुःखार्ते न समो यः, सोऽतिसौख्यं लभेद्ध्रुवम् ॥ ८१ ॥

मोह जनित दुःख विकल्प घन, अथवा सुखको रूप।
गिने दुहूं सम धीर धर, तो न परे भवकूप ॥ ८२ ॥

मोहजदुःखवैकल्प्य, यद्वा तत्सुख रूपि।
मन्यते यः समं धीरो, भवकूपे न मज्जति ॥ ८२ ॥

अपने अपने गुणनमें, थिर हैं सब ही वस्तु।
तू पुनि थिर कर आपमें, तो सुख लहे समस्त ॥ ८३ ॥

सर्वाण्येव हि वस्तूनि, स्थिराण्यात्मगुणेषु च।
स्थिरं कुर्वात्मनात्मानं, लभेथाः सर्वसौख्यकम् ॥ ८३ ॥

सुखदुःख दोनों जिनस हैं, धूप छांह ज्यों मीत।
हर्ष शोक क्यों करहिं मन! धीरज धार नचीत ॥ ८४ ॥

[illegible]
[illegible]

[illegible] नहीं [illegible] नाहिं [illegible]।
[illegible] ॥ ८५ ॥
[illegible]
[illegible]

चाह किए कछु ना मिले, फरिके जहँ तहँ देख ।
चाह छांडि धीरज धरहु, पद पद मिलत विशेष ॥ ८६ ॥
इच्छयाऽऽप्नोति नो किंचित्परय कृत्वा तु मानव ।
विहायेच्छां कृते धैर्ये, विशेषाप्तिः पदे पदे ॥ ८६ ॥

सुनि उझले मति रे जिया! कर विचार चुप साध ।
यही अमोलिक औषधि, मेटे भय दुःख व्याध ॥ ८७ ॥
श्रुत्वोत्पत मनो मा त्वं, मौनं धृत्वा विचारय ।
अमूल्यमौषधं ह्येतद्भवतापाऽऽमयाऽपहम् ॥ ८७ ॥

रे चेतन ! संसार लखि, दृढ कर नेक विचार ।
जैसी दे तैसी मिले, कूपकी गुंजार ॥ ८८ ॥
चेतन ! वीक्ष्य संसारं, कुरु धृत्वा विचारणाम् ।
लभ्यतेऽत्र यथादत्तं, कूपप्रतिध्वनिर्यदा ॥ ८८ ॥

चञ्चलताकौं छांडीकै, काट मोह गल फांश ।
सम दम यम दृढता किये, निज गुण होय प्रकाश ॥८९
त्यक्त्वा चापल्यमाच्छिन्धि, गलपाशं च मोहजम् ।
शमे दमे यमे दार्ढ्यं, कृते स्वगुणभासनम् ॥ ८९ ॥

अभिलाषाकौं त्यागिकै, मनकौं रख मजबूत ।
तब कुछ सूझे अगमकी, यह सांची करतूत ॥ ९० ॥
अभिलाष परित्यज्य, मानसं कुरु निश्चलम् ।
तदायत्तानुकर्तव्यं, दृश्यते च यथार्थतः ॥ ९० ॥

वो तो यहां ही वस्तु है, जाकी तेरे चाय ।
क्षण इक धीरज धारले, सहजे ही मिलजाय ॥ ९१ ॥
अभिलाषोऽस्ति ते यस्य, तद्वस्त्वत्रैव विद्यते ।
क्षणं धैर्यं कुरु स्वान्ते, विनाऽऽयासेन लभ्यते ॥ ९१ ॥

तजकर परगुणमें रमण, ज्यौं न लगे गल तोष ।
अचल रह निज गुणनमें, आपही होगी मोक्ष ॥ ९२ ॥
त्वाऽन्यगुणे मा त्वं येन दोषो भवेत्तव ।
अचल. स्वगुणे भूया स्त्वं निर्वाणमवाप्स्यसे ॥ ९२ ॥

निश्चलतासुं होयगा, रे जिय! ब्रह्म समान।
तृण का ही घृत होत है, गाय चरे पय पान ॥ ९३ ॥
स्थैर्येण भविता जीव! ब्रह्मतुल्यो ह्यसंशयम्।
सर्पिस्तेन तृणं खादन्गौर्धरति जलेन च ॥ ९३ ॥
जो तू चाहे अमर पद, करि दृढता असवार।
बाल न बांका होयगा, जीवत ही मनमार ॥ ९४ ॥
यद्यमरपदेच्छा ते, धैर्यमश्वीकुरुष्व वै।
जहि मनस्तु जीवन्हा, नैवं केशस्य वक्रता ॥ ९४ ॥
धीरज गुण धारण किये, सब ही दुःख कट जाय।
जैसे ठंडे लोहसे, तत्ता लोह कटाय ॥ ९५ ॥
धृतधैर्य्यगुणे सर्वं, दुःखं नश्यति सत्वरम्।
यथा शीतेन लोहेन, तप्तोऽयश्छिद्यते ध्रुवम् ॥ ९५ ॥
जल जिम निर्मल मधुर मृदु, करत तासको अन्त।
इम धीरज गुण धार लखि, करो ग्रहण बुधवन्त ॥९६॥
निर्मलं मधुरं वारि, मृदुपाषाणविनाशनम्।
एवं बहुगुणं धैर्यं, धीरश्च गृह्णीत वै बुधाः ॥ ९६ ॥
कला घटत अरु बढ़त है, नहीं शशिमण्डल जान।
जन्म मरण गति देहकी, यों लखि धीरज ठान ॥ ९७ ॥
हानिवृद्धी कलायाश्च, नहीन्दुमण्डलस्य वा।
देहस्यैव गति जन्म, मृत्यु धीरश्च नेति धा ॥ ९७ ॥
सुखदुःख दोनों एकसे, है समझणको फेर।
एक शब्द दो अर्थ ज्यों, लाख टकेकी सेर ॥ ९८ ॥
सुखदुःखे समे तु [illegible]।
[illegible] ॥ ९८ ॥

* [illegible]

भोगानां वासनायां चेत्त्वं त्वमुत्सुकोऽसि मते ।
यद्विषयविरक्तचेतसः, यद्यपि इच्छसे सुखम् ॥ १११ ॥

जो तू चाहे ज्ञान सुख, तो विषियन मनफेर ।
और ठौर भटके मती, अपने ही में हेर ॥ ११२ ॥

त्वमर्थेव मनो भोगदोषपूर्णं त्वं वर्त्स्यति ।
रे रे! त्वं भ्रम माऽन्यत्र, स्वात्मन्येव च मार्गेय ॥ ११३ ॥

ज्ञानरूप दीपक बने, न बचे कर्म पतङ्ग ।
जो रहे तो दोनोनमें, झूठो एक प्रसङ्ग ॥ ११४ ॥

ज्ञानदीपे प्रज्वलिते, नो कर्मशलभः स्थिरः ।
तिष्ठतो यदि तौ द्वौ वा, मिथ्यैव प्रथमः ॥ ११४ ॥

ज्ञान सञ्चरे जिहि समै, न रहे कर्म समाज ।
और न पंछी उड सके, जहां पसेरा बाज ॥ ११५ ॥

यदा सञ्चरति ज्ञानं, कर्मजालं तु नो तदा ।
श्येनवासो भवेद्यत्र, तत्र तिष्ठन्ति नो खगाः ॥ ११५ ॥

घर नहि छूट्यो एकसौं, छूट्यो कर्म कुढंग ।
ज्ञान तणे सत्सङ्गथी, देखो ठाणायंग ॥ ११६ ॥

गृहं त्यक्तं न चैकेन, त्यक्तं कर्म तु कुत्सितम् ।
सत्सङ्गेनात्मबोधेन, पश्य स्थानाङ्गसूत्रकम् ॥ ११६ ॥

क्षण इक ज्ञान विचारले, विषय दृष्टि कौं फेर ।
मेरी मेरी त्यागदे, यों होवे सुरझेर ॥ ११७ ॥

भोगदृष्टिं परावृत्य, क्षणं चिन्तय बोधकम् ।
त्यज सदा ममत्वं च, एवं सम्यग्भविष्यति ॥ ११७ ॥

आठ पहर ढिग राखले, ज्ञान सरूपी ढाल ।
मोह अरीके विषय शर, लगे न ताकी भाल ॥ ११८ ॥

अष्टयामेषु यामेषु ज्ञानरूपं तु चर्मकम् ।
विषयेषुर्मोहारिक्षिप्तः न लगिष्यति ॥ ११८ ॥

माया मोह निवारके, विषयनसौं मनखींच
जो सुख चाहे आपणा, तो रहो ज्ञानके बीच ॥ ११९ ॥

मायामोहं निवार्य्यैवं विषयेभ्यो मनो हर ।
यान्छस्यात्मसुखं चेद्धि, ज्ञाने स्थिर मे सखे ! ॥ ११९ ॥

भेद लहे विन ज्ञानके, मत भूंसे जिम स्वान ।
लोग गडरिया चाल तज, आपनपो पहिचान ॥ १२० ॥

मा कुरु भषणं श्वेव, ज्ञानभेदाद्विभिन्नता ।
लोकमेषीगतिं त्यक्त्वा, स्वात्मानं परिशोधय ॥ १२० ॥

कामधेनु अरु कल्पतरु, इण भव सुख दातार ।
इणभव परभव दुहुनमें, ज्ञान करत निस्तार ॥ १२१ ॥

कल्पद्रुः कामधेनुश्च, लोकेऽत्रैव सुखप्रदौ ।
निस्तारयति बोधस्तु, जगत्यत्र परत्र च ॥ १२१ ॥

जगत् मोह फांसी प्रबल, कटे न और उपाय ।
सत्सङ्गति कर ज्ञानकी, सहज मुक्ति हो जाय ॥ १२२ ॥

मोहपाशो दृढो लोके, छिद्यते नान्ययत्नतः ।
कुरु बोधस्य सत्सङ्गं, मुक्तिः स्यात्स्वयमेव हि ॥ १२२ ॥

बिच पारस अरु ज्ञानके, अन्तर जान महन्त ।
वह लोहा कञ्चन करत, यह गुण देय अनन्त ॥ १२३ ॥

पारसमणिबोधे च जानीहि महदन्तरम् ।
लोहं स्वर्णं करोत्येष, स त्वनन्तगुणप्रदः ॥ १२३ ॥

प्रथम ज्ञान पीछे दया, यह जिनमतको सार ।
ज्ञान सहित किरिया करूं, तव उतरूं भव पार ॥ १२४ ॥

जैनसिद्धान्तसारोऽयं, पूर्वं ज्ञानं ततो दया ।
सज्ञाना सत्क्रिया कुर्वन्, तदा स्यां भवपारगः ॥ १२४ ॥

अथात्मद्वार

धनि आतम परमातिको, अक्षरात्म शुद्ध नाम ।
ज्ञानोदय कदु ना बने किम सुधरे शुद्ध काम ॥ १२५ ॥

[illegible]
[illegible] ॥ १२५ ॥

दर्शन पुनि निश्चल नहीं, नहिं निश्चल चरित्र।
मन भ्रमतो निशिदिन रहे, नहिं ठहरे एकत्र ॥ १२६ ॥
[illegible]म्यक्त्वं निश्चलं मे नो, चारित्रमपि नैव च।
[illegible]नलं भ्राम्यति चित्तं तु, तदेकत्र न तिष्ठति ॥ १२६ ॥
ऐसी करी विचारणा, रे जिय! अबतो चेत।
चार वरण गुरु 'रतनजी', ऐसो करि सङ्केत ॥ १२७ ॥
एवं जावे विचारे तु, चेत जीव! किलाधुना।
चतुर्वर्णगुरु 'रतनजी', सङ्केतं कृतवानिमम् ॥ १२७ ॥
चार वर्ण गुरु 'रतनजी', तास भेद चौवीस।
तामें भेद जु तेरवें, करी ज्ञान बकसीस ॥ १२८ ॥
चातुर्वर्ण्यगुरु 'रतनजी', तद्भेदा युगविंशतिः।
त्रयोदशे तु भेदे च, ज्ञानदानं व्यधादसौ ॥ १२८ ॥
ज्ञान पाय तुलसी मती, शुक्ला छट मधुमास।
संवत् रर्स अग्नि के भू, रच्यो शान्ति परकाश ॥ १२९ ॥
ज्ञानं प्राप्य मतिर्हृष्टा, रसाऽग्न्यइन्दुरब्दके।
तिथे षष्ठ्यां मधौ "शान्तिप्रकाशो" रचितो मया ॥ १२९ ॥

आशिर्वचनम्

अरिहंत-सिद्ध-गण-ईशजी, उपाध्याय सब साध।
पंच परमगुरु दीजिये, निर्मल ज्ञान समाध ॥ १३० ॥
अर्हन्सिद्धोऽथवाऽऽचार्य, उपाध्यायो मुनिस्तथा।
पंचैते गुरवो दद्युः, शुद्धबोधसमाधिकं ॥ १३० ॥
श्रीमज्ञ्ज्ञानाचार्यभट्टारककृतशान्तिप्रकाशः समाप्तः ॥
"सुसंस्कृतानुवादस्तु, कृतः पुष्पेन्दुभिक्षुणा
शान्ते वीररसं प्राप्य, मोक्षः सञ्जायते ध्रुवम्"

———

आकाशादिस्थले यच्च, ज्ञानं मिथ्यामय च तत् ॥ ११२ ॥ प्रणामिमार्गेथि-यिणो, देवचन्द्रादयो मुहु । स्वसम्प्रदायके नित्यं, निजानन्दमतं जगुः ॥ ११३ ॥ दृष्ट्याऽनया दर्शनेन, भारतेऽत्र सुधर्मिणाम् । जनानामात्ममतस्वस्य, सिद्धान्तप्राप्तये मुदा ॥ ११४ ॥ माहम्मदोऽपि वदति, मतेऽस्मिन्यत्प्रदीपते । चैतन्यमेव तत्सर्व्वं, नान्यत्किञ्चिद्विभाव्यते ॥ ११५ ॥ सुदा निरञ्जनः साक्षी, निराकारोऽतिशक्तिमान् । तेजोमयो ह्यनन्तश्च, सर्वज्ञ इति निश्चयः ॥ ११६ ॥ मोमिनाख्यश्च सततं, कृपालुं स्वसमीपगम् । पश्यत्येवं सुदाऽहं च, सुता-र्थोऽयं निजात्मनः ॥ ११७ ॥ जिसिसख्राइष्टमतं, तद्वचतुर्याकारूपतो । मिसुर्विराजते स हि, भक्तात्मा परिकीर्तित ॥ ११८ ॥ भक्ताश्च तं प्रवदन्ति, तथा भूमण्डलेऽखिले । विख्यातकीर्तिर्बुद्धोऽपि, स्पष्ट ममुक्तवानिति ॥ ११९ ॥ "प्रेमेयात्मा" जगत्यस्मिन्, प्रत्येकं प्राणिनो मुदे । स्थापनीय च प्रेमेणाभेदभाव-समाश्रयैः ॥ १२० ॥ तत्वज्ञानस्य दृष्ट्या तु, दर्शनेन प्रतीयते । जैनो वेदान्त-योगी च, साङ्ख्यबौद्धौ तथा पुन ॥ १२१ ॥ अनुपमं चैकतायाः, कुर्व-न्तीति विभावय । नेतुं वै चैकतायास्तु, तथानन्दसिद्धये ॥ १२२ ॥ भिन्न च साधनं कर्तुं, भिन्नधर्मस्तथा पुनः । भिन्नो देशस्तथा कालो, विभिन्ना पद्धति पुन ॥ १२३ ॥ मीमांसकैर्विनिर्दिष्टा, विभिन्नं सर्वसाधनम् । अत एव महिर्दृष्टा, ज्ञायते मतकर्मणाम् ॥ १२४ ॥ भेदाभेदक्रिया सर्वा, तथापि तत्क्रियान्वयन । कुर्यात्स्वभेदभाव च, भजते प्रेमभावत ॥ १२५ ॥ जैनाश्च-हुर्मदमा, यौद्धाम्नायशीलकम् । *योगे पञ्चात्मक प्राह, यम शमदमादिकम् ॥ १२६ ॥ वेदान्ते प्रवर्तनीयो, नियमोऽपि महात्मभि । प्रत्येक धर्मनीतिर्हि, दयापरोपकारता ॥ १२७ ॥ प्रेमादिसामान्यमिति, सर्वसामान्यनिर्णये । नियमाऽपि गृहस्थाना, तथा धर्म समानता ॥ १२८ ॥ उभयोर्गीयोरभोगश्च, कुर्वन्तीति [illegible] । वैराग्यलक्षणं [illegible] तुल्यमेव च ॥ १२९ ॥ सर्वत्र प्राय [illegible] मुहु । [illegible] सर्वे [illegible], जैनाना [illegible] भाग-[illegible] ॥ १३१ ॥ [illegible]

[illegible] ॥ अहिंसा सत्य

[illegible] ॥ [illegible] भूतानि सर्वतो ॥ यजुर्वेद १८-३ ॥

अलौकिक विश्वके सुरम्य और सौन्दर्यपूर्ण हृदयकी ओर दृष्टि फैलानेपर स्पष्टतया नजर आता है कि अखिल विश्व आनन्दसे परिपूर्ण है। अर्थात् अखिल विश्वमें आनन्दकी अपेक्षासे एकता है । जगत्से उसके धर्म भिन्न नहीं हैं, विश्वके प्रत्येक प्राणी आनन्दमय हैं, उन्हें आनन्द ही प्रिय है अतः उसीकी इच्छामें तन्मय हैं। इस आनन्दको प्राप्त करनेके लिये साधन रूप ही विश्वके धर्म हैं, और उन धर्मोंको प्राणियोंने अपने 'आनन्द' के लिये ही उत्पन्न किये हैं, और आनन्दकी अपेक्षा जगत्के सब प्राणी समान हैं। तथापि व्यक्तिकी अपेक्षासे यदि देखा जाय तो मनुष्य एक उत्कृष्ट प्राणी है, और वह आनन्दकी अभिवृद्धिके लिये अनेक आकर्षण एवं सुरम्य उपायोंकी रचना करता रहता है । मनुष्यके रचे हुए आत्मानन्दकी अभिवृद्धिके उपायोंमें धर्म ही एक सर्वोत्कृष्ट उपाय है। प्रत्येक प्राणीके अन्तर्गत आनन्दका स्वरूप समान है। प्रत्येक प्राणीके आत्माका सामर्थ्य समान है। प्रत्येक प्राणीका वास्तविक स्वरूप भी समान है। तब तो इस अपेक्षासे साधन रूप धर्मोंका होना भी समान ही ठीक है, और उसके अनुसार सम्पूर्ण समान ही हैं। मनुष्य कुछ ऐसा प्राणी है कि वह आत्मानन्दकी अभिवृद्धि बहुत जल्दी कर सकता है। इतना ही नहीं बल्कि जो जो मनुष्य आत्मानन्दका अनन्त अनुभव प्राप्त कर चुके हैं वे वे मनुष्य अपने पीछेकी अर्थात् भविष्यकी मनुष्य जातिके लिये पाया हुआ आत्मीय साधन रूप धर्म भूतलवासी मनुष्य जातिके लिये स्मारक रूपसे छोड़ गये हैं। उस धर्म रूपी उपकरण या साधन द्वारा इतर मनुष्य आत्मानन्दके अलौकिक आनन्दत्वको प्राप्त कर सकते हैं। जगत्के अन्य प्राणी इस प्रकार विश्वकी अलौकिक प्रभासे आनन्दित होते हैं । परन्तु मनुष्य संज्ञाक प्राणी तो स्वयं निजानन्दमय बन कर उस अपने आनन्द द्वारा अखिल विश्वके अप्रतिम आनन्दमें मुख्य तथा उपादेयकी अभिवृद्धि कर सकता है। मनुष्योंका जो धर्म है वही अलौकिक आनन्दकी अभिवृद्धि करनेवाला है। यह सृष्टि अनन्त कालसे अनन्तानन्तके क्रमसे ज्योंकी त्यों चली आ रही है, और पुन क्रमसे अनन्त तत्त्वमय अनन्त तत्त्व क्रमसे अलौकिक स्वरूपमें अनन्त काल तक शाश्वत स्वरूपमें ही-सत्य स्वरूपमें ही अलौकिक आनन्द रूपसे स्थिर और नित्य रहेगी। डाक्टर नौलानक शास्त्री भी यही कथन करते

है कि यह सृष्टि अलौकिक वस्तु है, और यह नित्य तथा शाश्वत है। इस सृष्टिके अलौकिक सामर्थ्योंसे भरपूर अलंकारोंमें धर्म ही एक सर्वोत्कृष्ट अलंकार है। जगत्में अनेक धर्मनीमांसक हो गये हैं, और वे अलौकिक अलंकार रूपसे अपने धर्मविचाररूप प्रसादोंसे इस भूतलको अलंकृत कर गये हैं। इन अलौकिक प्रसादियोंमें इस समय वेदान्त, जैन, बौद्ध, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा, शैव, वैष्णव, स्वामी-नारायण, मुस्लिम, इसाई, यहूदी, पारसी आदि मुख्यतासे दृष्टिगोचर होते हैं। इनका तथा इनके अतिरिक्त और और अनेक धर्मालंकारोंका हेतु केवल आत्मानन्दको ही प्राप्त करनेका है। सर्व धर्मका हेतु एक होकर उनके साधन भी एक ही हो जाते हैं, और वे अलग अलग देश काल पर आधार रखकर अलग अलग रूपोंमें प्रवृत्त हो रहे हैं। जैनका हेतु केवल आत्माको पहचानना और उसे मोक्ष तक ले जाना ही है। वेदान्तिक, वैष्णव, स्वामीनारायण, तथा योगीजन भी यही कहते हैं। जिनमें जैन कहते हैं कि—'एगं जाणइ से सव्वं जाणइ' जो एकको जानता है वह सबको जानता है। वेदान्तकी भगवती श्रुति भी कहती है—'आत्मनि विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति।' एक आत्माके जाननेसे यह सब कुछ जाना जा सकता है। जैन कहते हैं कि—"अप्पा सो परमप्पा" आत्मा ही परमात्मा है। तब वेदान्त कहता है कि—'अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, प्रज्ञानं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म।" 'मैं ब्रह्म अर्थात् परमात्मा हूँ' 'तू भी वही है' प्रकर्ष तथा सम्यग्ज्ञान ही ब्रह्म है' 'यह आत्मा ब्रह्म है'। वेदके चार खंड हैं, इन चारों खंडोंमें एक एक महावाक्य है। 'प्रज्ञानं ब्रह्म' यह ऋग्वेदका, 'अहं ब्रह्मास्मि' यह यजुर्वेदका, 'अयमात्मा ब्रह्म' यह अथर्ववेदका-और 'तत्त्वमसि' यह सामवेदके छान्दोग्योपनिषद्का महावाक्य है। जैन सिद्धान्तका लिखना है कि—"नाणे पुण नियमा आया।" 'ज्ञानमें नियमसे आत्मा है' वेदान्त भी यही कहता है कि—"प्रज्ञानं ब्रह्म" 'प्रज्ञान ही आत्मा है' जैन कहते हैं कि—जन्ममृत्यु रूपक संसृति कर्मके द्वारा चलती है, और वे कर्म जड है। इन कर्मोंका नियामक आत्मा है। यानी आत्मा कर्मजन्य सृष्टिका अधिष्ठान है। वेदान्त कहता है कि—मायाके द्वारा ये जन्मादि हैं और इसका नियामक आत्मारूप ईश्वर है। जैन कहते हैं कि—कर्मो-

पाधिका प्रलय होनेपर आत्माका मोक्ष होता है। वेदान्त कहता है कि मायोपाधिका प्रलय होनेपर आत्माका मोक्ष है। जैन कहते हैं कि—आत्माका मोक्ष होनेपर 'अपुणरावित्ति' संसारमें पुनरागमन नहीं होता अर्थात् आत्माको फिरसे जन्म मरणके चक्रमें नहीं आना पड़ता। वेदांत कहता है कि—"न पुनरावर्तते" आत्माकी पुनरावृत्ति नहीं होती। गीताजीमें श्री कृष्णचन्द्रजीने कहा है कि—"यद्गत्वा न निवर्तन्ते, तद्धाम परमं मम" 'जहां गये बाद फिर आना नहीं पड़ता' वही मेरा परमधाम है। अर्थात् परमात्माके धामको परमधाम कहते हैं या मोक्ष कहते हैं। वहां जानेपर फिर वापस नहीं आना होता। जैन कहते हैं कि—'एगे आया' आत्मा द्रव्य गुण पर्यायकी दृष्टिसे एक है। वेदान्त कहता है कि "एकोऽहम्" मैं एक हूं। जैन कहते हैं कि—"तक्का जत्थ ण विज्जइ, मइ तत्थ ण गाहिया" तर्क आत्माके स्वरूप तक नहीं पहुंच सकता, और मति उस आत्माके स्वरूपको ग्रहण नहीं कर सकती। वेदान्त कहता है कि—"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" जहांसे वाणी वापस फिर जाती है वह आत्म स्वरूप मन द्वारा अप्राप्य है। भावार्थ यह है कि—मन और वाणी उस आत्मा का वर्णन नहीं कर सकते। जैन कहते हैं कि—आत्माको सम्पूर्ण या अखण्ड रूपमें जानने वाले मनुष्य कैवल्य ज्ञानको पाते हैं। वेदान्त कहता है कि—"कैवल्यपदमश्नुते" आत्मा कैवल्य पदका अनुभव करता है। वेदान्त कहता है कि—अखिल विश्वमें सचिदानन्द परब्रह्म सर्वव्यापक है। जैन कहते हैं कि—अखिल विश्वमें मारनेसे मरता नहीं, जलानेसे जलता नहीं, काटनेसे कटता नहीं, भेदन करनेसे भेदित नहीं होता, और चर्मचक्षु द्वारा दीख नहीं सकता, ऐसा सच्चिदानन्द स्वरूप जीव समाविकालसे सघन रूपमें भरे पड़े हैं। आकाश, पर्वत, पृथ्वी, नक्षत्र आदि कोई भी स्थान जीवसे खाली नहीं है। अर्थात् चैतन्यलक्षणयुक्त जीवकी दृष्टिसे देखनेपर चैतन्यदेव समस्त लोकमें भरपूर है। वेदान्त कहता है कि आत्मा स्वयं सर्वज्ञ है, जैन भी यही कहते हैं कि आत्मा अनन्त ज्ञानमय है। वेदान्त कहता है कि ब्रह्म सनातन है। जैन कहते हैं कि आत्मा स्वयं शुद्ध-बुद्ध आनन्द स्वरूप है और सर्वज्ञ तथा सर्वदर्शी है। वेदान्त और सांख्यादि भी यही कहते हैं। वल्लभाचार्य मतप्रवर्तक कहते हैं कि—निर्दोष-

पूर्णगुणविग्रह आत्मतन्त्रो, निश्चेतनात्मकशरीरगुणैश्च हीनः। आन-
न्दमात्रकरपादमुखोदरादिः सर्वत्र च त्रिविधभेदविवर्जितात्मा॥
आत्मतन्त्र अर्थात् मात्र आत्म-स्वरूप निर्दोष है। पूर्णगुण विग्रह है। पुनः
जडात्मक शरीर और गुणसे भिन्न है। इस आत्म स्वरूपके हाथ, पैर, मुख,
उदर इत्यादि अवयवोंकी कल्पना करने पर मात्र आनन्द ही है अर्थात् सम्पूर्ण
आनन्दमय भेद मात्र रहित है। आत्म-तत्वके अवयवोंसे लोकमें की गई कल्प-
नामें केवल आनन्द ही इसके अवयव हैं। यह स्पष्टतासे समझमें आ जाता है।
इस आत्म-स्वरूपमें जन्म, जरा और मृत्यु रूपी भेद नहीं है। उत्पत्ति,
स्थिति, प्रलय रूप त्रिविध भेदसे यह आत्म-स्वरूप भिन्न है। जैन कहता
है कि—निश्चय नयसे तो आत्मा अकर्ता ही है। सांख्य शास्त्र कहता है कि—
"अहंकारः कर्ता न पुरुषः।" कर्ता, धर्ता अहंकार है पुरुष नहीं, अर्थात्
आत्मा कुछ नहीं कर्ता, प्रत्युत अकर्ता है। जैन कहता है कि—"ईश्वर सर्वज्ञ
होता है, तथा उसमें राग द्वेष आदि कुछ भी नहीं है। योग शास्त्र कहता
है कि—"क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।"
क्लेश, कर्म, विपाकके आशयोंके साथ असंस्पृष्ट-अलिप्त है, वही पुरुष
विशेष पुरुषोत्तम और ईश्वर है यानी ईश्वरको राग द्वेष क्लेश कर्मविपाक
नहीं छू सकते। 'तत्र सर्वज्ञबीजं" उस ईश्वरमें सर्वज्ञत्व होता है।
आत्मा अनन्त तत्त्व रूप है। वेदान्त कहता है कि—"सत्यं ज्ञान-
मनन्तं ब्रह्म।" ब्रह्म स्वरूपमें पाप, पुण्य, सुख या दुःख नहीं है। पुनः
वेदान्त कहता है कि—"न पापं न पुण्यं न दुःखं सुखं न। चिदान-
न्दरूपं शिवोऽहं शिवोऽहं॥ "मेरा आत्म-स्वरूप शिव है, और उस
शिवस्वरूप आत्मामें पाप, पुण्य, सुख दुःख नहीं है, क्योंकि वह
सच्चिदानन्द रूप है। जैन कहते हैं कि—केवलज्ञानी यहां ही मोक्षका
अनुभव करते हैं। इसीसे मिलता जुलता स्वामीनारायण मत प्रवर्तक
श्री सहजानन्द स्वामीका भी यही मत है कि—'अक्षर धाम यही
है [illegible] स्वरूप है। जो आत्माको यहांके लिये
[illegible] समझते हैं उनका समझना [illegible] है, और जो अक्षरधामको
सिर्फ [illegible] समझते हैं उनका समझना मिथ्या है।
[illegible] अर्थात् [illegible] प्रवर्तक [illegible] देवचन्द्र[illegible]
[illegible]

अपनी सम्प्रदायको निजानन्द सम्प्रदाय कहते हैं। इस दृष्टिसे देखनेपर पता चलता है कि भारतके धर्मात्मा पुरुषोंका सिद्धान्त आत्मानन्दके पानेका ही है। **मुहम्मद साहब** भी यही कहते हैं कि जगत्में जो भी कुछ चैतन्य प्रतीत होता है वह खुदाकी रवानी है, खुदा निरंजन, निराकार, तेजोमय और सर्वशक्तिमान् तथा सर्वज्ञ है। **मोमिन** तो हमेश खुदाको अपने पास ही देखते हैं। खुदाका अर्थ भी खुद ही होता है। **जिसिसक्राइस्टका** भी यही उपदेश है कि चौथे आसमानपर प्रभु विराजमान हैं। वह प्रभु भक्तोंका आत्मा है, और परम भक्त उस प्रभुको प्राप्त करते हैं। अखिल भूमण्डलमें सर्वोत्कृष्ट कीर्तिको पानेवाले बुद्धदेव भी स्पष्ट कह गये हैं कि प्रेम ही आत्मा है। अतः जगत्के प्रत्येक प्राणीमें अभेद प्रेम रक्खो। तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे देखा जाय तो जैन, वेदान्त योग, सांख्य, बौद्ध आदि सब एकताका ही अनुभव करते हैं। एकता पानेके लिये अर्थात् आत्मानन्दमें अभिवृद्धि करनेके लिये साधनोंको भिन्न भिन्न धर्म मीमांसकोंने भिन्न भिन्न देश कालमें भिन्न-भिन्न पद्धतिसे समझाया है। अतएव बहिर्दृष्टिसे देखा जानेपर उन मतोंकी क्रियाओंमें भेद जान पड़ता है। तथापि उन क्रियाओंका समन्वय किया जाय तो वे भेद भी अभेद भाव भजने लगते हैं। जैन जिसे पाँच महाव्रत कहते हैं, बौद्ध उन्हें पांच शील कहते हैं, और योगी उन्हें पांच यम कहते हैं। वेदान्तके शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान भी ऐसे ही हैं। परमहंसोंके वर्तन करने योग्य नियम भी अन्तमें एक ही हैं। प्रत्येक धर्मके नीति, दया, परोपकार, प्रेम आदिके सामान्य और सर्वमान्य नियम भी गृहस्थ धर्ममें समानता तथा उपयोगिताका उपभोग करते हैं। ममतादि वैराग्यके लक्षण भी सबमें समान रूपसे ही पाये जाते हैं। ज्ञानी पुरुषोंके वर्तावकी ओर दृष्टि डालते हुए जैनोंका बर्ताव **"मित्ति मे सव्व भूयेसु"** सब प्राणिओंके साथ मित्रता अर्थात् समान भाव रखना चाहिये न्यूनाधिक न होना चाहिये। वेद भी कहता है कि— **"मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।"** 'सबको मित्रकी दृष्टिसे देखना चाहिये।' **'आत्मवत्सर्वभूतेषु'** ज्ञानी पुरुष अपनी आत्माके समान सब जीवोंको देखते हैं। वेद भाष्यकारों [illegible] दृष्टि डालनेपर जैन मुख्य-

प्राप्यते नाऽपि गौणेन, लभ्यते स्वादनं ततः ॥ १५८ ॥ तदेदमपि ज्ञातव्यं, गौणतोपाधिकारणम् । पुद्गलस्यैव सम्बन्धाज्जायते न च वस्तुतः ॥ १५९ ॥ सच्चित्सुखे तु गौणत्वमेतदर्थमपेक्ष्यते । यदानादिस्वभावेन, बहिरात्मत्वमेव हि अन्तरात्मत्वदृष्ट्या तु, केवलानन्दरूपकः ॥ १६० ॥ आत्मानन्तकार्मणवर्गणा सन्चितो भवेत् । 'गुणविकाराः पर्यायाः' पर्यायेण समन्वितः ॥ १६१ ॥ कार्मणवस्तु सर्वत्र, सर्वदा परिवर्तते । परिवर्तनं परं साताऽसातानुकूलमिदं भवेत् ॥ १६२ ॥ तत्रेष्टाऽनिष्टयोर्योगश्चान्योऽन्यं मिश्रितः स्थितः । प्रकृतेरात्मन्यतः संविभावादेव दुःखकः ॥ १६३ ॥ सम्यक्त्वदर्शनमात्राभिव्यक्तिः स्वस्य भावना । कार्यं करोति सर्वत्र, ह्येयं सत्रं विचारतः ॥ १६४ ॥ सच्चिदानन्दकन्दस्य, प्रसादायेति बोधनम् । सुगमत्वेन संविदेद्विपर्ययेऽखिलभ्रान्तिता ॥ १६५ ॥ अनुमानोपमानस्य, करणं जायते ततः । परिणामस्य यस्यास्ति, निष्फलत्वं ततः स्फुटम् ॥ १६६ ॥ अतो यस्मिंश्च कार्मणवर्गणानामबाधतः । अत्यन्ताभाव एव स्याद्विशुद्धं भगवत्पदम् ॥ १६७ ॥ लभ्यते तद्धि परमं, नान्यथा कोटियत्नतः । परं यत्र नृदेहेन, सहितो भगवत्यपि ॥ १६८ ॥ चतुष्टयमनन्तं च, भाति तद्भगवत्पदम् । अर्थान्सर्वाननतीतादीन्, ज्ञानव्योऽवयमेव च ॥ १६९ ॥ यस्मिन्नैश्वर्यवीर्ये च, यशो धर्मश्च ज्ञानकम् । श्रीर्वैराग्यं तथा मोक्ष, इमे षट्संख्यका गुणाः ॥ १७० ॥ समुदायस्य शास्त्रेषु, 'भगसंज्ञा' प्रकीर्तिता । भगवच्छब्दकस्याऽस्य, लक्षणं समुदाहृतम् ॥ १७१ ॥ कुण्डिनेशनरेशस्य,

सिद्धार्थनन्दनेन च । त्रिशलाङ्गजवीरेण, त्रिजगद्गुरुणा मुहुः ॥ १७२ ॥

सम्पूर्णरीत्या विज्ञातमेवेन तथास्ति लक्षणम् । इति विवेचनेनैव "वीरस्तु भगवान् स्वयम्" ॥ १७३ ॥ इत्यस्याक्षरशश्चार्थो, भविष्यति समर्थनम् । निरूपणं तथा तस्य, भविष्यति विचारतः ॥ १७४ ॥ **"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य"** इत्यस्यार्थोऽनुवृत्तः । भगवद्वीरदेवस्य, जन्मकालात्ततो मुहुः ॥ १७५ ॥ निर्वाणपदपर्यन्तं, जन्मकालादनुक्रमात् । निखिलस्यैतिह्यस्य, ग्रन्थेऽत्र लघुभावतः ॥ १७६ ॥ सिद्धोऽस्मीति महावीरो, भगवानतिदूरतः । सम्प्राप्य पूर्णरूपेण, चतुष्टयमनन्तकम् ॥ १७७ ॥ अनन्तज्ञानयोगेन, सर्वैश्वर्यं तथाप्तवान् । अनन्तैश्वर्यमद्भुतं, प्रथमपादस्थया मुदा ॥ १७८ ॥ सकलैश्वर्यप्रभावेन, गुणधारी(?) शामय । स्वर्गजात्कल्पपर्यायपुञ्जे कृ ... नाकन ॥ १७९ ॥ स्वर्गस्थेषु देवेषु, शरीर ... तथा । एवमाद्यागमपूता, कृत्वा ... मुकुलितः

द्दिष्टं, रम्यं नयप्रमाणकम् । तत्त्वनिक्षेपपर्यन्तं वै, गभीरत्वं महत्त्वकम् ॥ २०१ ॥ परिपूर्णं तदाऽप्यासीचल्लघुत्वमहत्त्वयोः । चतुरस्रेण वै तद्वद्व्याख्याने केवले तथा ॥ २०२ ॥ वर्णनं क्वचिदस्तीह, ज्ञेयमन्यद्विचारणात् । स्थालीपुलाकन्यायेन, प्रत्येकं लघुभावतः ॥ २०३ ॥ किञ्चिन्मुख्यमन्यभावेन, दिग्दर्शनमतोऽकरोत् । निगद्यते पुनः स्पष्टं, भगवद्वीरस्वामिनः ॥ २०४ ॥ निर्वाणं परमार्थेन, सह व्यवहारिकी दशा । कियदुन्नतिरूपेण, तथा पुष्कलभावतः ॥ २०५ ॥ आसीद्यतः सहस्रेषु, जगत्सम्यन्धमात्रतः । गार्हस्थ्यजीवनं येषां, सत्तुल्यं तयाऽस्ति चेत् ॥ २०६ ॥ तत्प्रमाणाग्रभूतं हि, उपासकदशाङ्गके । सूत्रेऽपि विद्यते तावद्धीमता तत्र दृश्यताम् ॥ २०७ ॥ गृहाश्रमे बहुविधे, कार्यादर्शकरूपिणि । कुर्वन् परिणत स्वासीत्स्वयं तच निशामय ॥ २०८ ॥ (1) 'वीरस्तु भगवान् प्रभु', पितरावभितः प्रति । पूर्वं गर्भाशये मातुर्जनकस्य च सेवनम् ॥ कृत्वाऽथ दर्शनायैवं, ज्ञानानुभवतस्तथा ॥ २०९ ॥ स्वयं प्रतिज्ञां कृतवान्, यावन्मे जननी पिता । जीवतस्तावदत्यन्तमर्हद्दीक्षां सुसंयमम् । योगाभ्यासं न चाहं वै, स्वीकरोमि कदापि हि ॥ २१० ॥ यतो मे जनको माता, मोहदृष्ट्याऽनुरागवान् । न तु समतया दृष्ट्या, इति चिन्तापरोऽभवत् ॥ यतोऽहमनयोस्मत्वे, संन्यासं संयमं मतम् ॥ २११ ॥ चरिष्यामि प्रसंगेऽपि, न हेयोऽप्यनयोर्नयः । हृदये पुनरायातः, स्यान्महानिति मे मति ॥ २१२ ॥ दुःसाध्यं च भवेत्तस्मात्सहनं चेतसा कुत । जीवनस्याऽनया रीत्या,, समारसार्वदेशिकी ॥ २१३ ॥ घटनयाऽनया शिक्षा लभ्यते नो निशामय । पित्रोराज्ञा विना तद्वदौदासीन्यं न कर्हिचित् ॥ २१४ ॥ कोऽपि त्यक्त्वा गृहारम्भं, मुनिचर्या न धारयेत् । घटनयाऽनया तेषां, सदाज्ञापालनं तयोः ॥ २१५ ॥ विज्ञायावश्यकत्वेन, सेवायाश्च कियत्फलम् । समाप्य दर्शनं तस्य, मौलिकं च विभावयेत् ॥ २१६ ॥ तीर्थङ्करोऽपि भगवान्, प्रथमे जीवनेऽपि यत् । सेवाधर्मस्थापनं वै, कुरुते धिषभावनः ॥ २१७ ॥ कथ्यतां किं च वीरस्य, स्वामिनश्चेरमङ्गलम् । आदर्शरूपं सेवाया, पितॄणां किमनल्पकम् ॥ २१८ ॥ महत्वं विश्वथास्ति, सूक्ष्मदृष्ट्याऽवलोकयताम् । प्रतिज्येष्ठ भ्रातरं च, अत्युमोदारशीलता ॥ २१९ ॥ नन्दीवर्धननामानं, भ्रातरं भगवान् रह । एकस्मिन् दिवसेऽब्रोचत्, महीयोऽभिग्रहोऽधुना । समाप्तोऽभूत्तनश्चाद्य, भवदाज्ञा प्रगृह्य च ॥ २२० ॥ दीक्षितोऽहं करोम्यद्य, तदा ज्येष्ठोऽब्रवीद्वच । निर्मोहं च प्रभुं ज्ञात्वा, स्वयं तु मोहपीडितः

देवस्य, गुप्तो निर्भयो भवेत् ॥ ३६३ ॥ अनार्य्यमतिना सम्यक्‌रोगानां वीरस्वामिनः । धर्मेऽप्यनादिमद्वेऽपि, गत्वा च प्रचरेदिति ॥ ३६४ ॥ तत्रावीत नराश्चद्दम्भेस्वकर्म्मवर्धिता । प्राणिनो ये च तत्रापि, धर्मोऽनैकान्तिकस्य हि ॥ ३६५ ॥ संस्थापितो मूल्नरस्तोऽथ श्रीवीरस्वामिनः । सुधर्मस्याप्यनुगामिन-श्चलवान्स दयापरः ॥ ३६६ ॥ इत्यादिदमहं वक्ष्ये, मदीया मुनिभ्रातरः न दत्तं ध्यानमथापि, कदापि न हि सम्मतम् ॥ ३६७ ॥ भूत्वा प्रभुनदेशस्य ग्रामस्य नगरस्य च । पिण्डोलको मोहवशो, ममतायां प्रमादके ॥ ३६८ ॥ कृत्वा कल्मिहितं स्वं च, नोचितं म्लानतां गतम् । तथैतत्कारणं ज्ञेयं, प्रार्थनाः मुनेरिदम् ॥ ३६९ ॥ वाराणसीति पार्श्वस्य, क्षेत्रं भगवतः परम् । वीरस्य कुण्डिनपुरी विख्यातं मगधे पुनः ॥ ३७० ॥ विहारचारीकृतार्थस्य, मण्डले वर्तते च या । पुष्कलत्वेन नायातं, मुनिभिरागमिनेरपि ॥ ३७१ ॥ धर्मप्रचारः श्रवणे, नायातश्च यदानये । भगवतो वीरदेवस्य, चैकविंशतिदशकम् ॥ ३७२ ॥ शासनस्य प्रचारः स्यात्तदा किं कारणं वद । तच्छासनसमुद्धारार्थं, नास्ति तस्य च पूज्यवान् । प्रख्याता ये जनाधार्मस्तज्जन्मभुवि मानवाः ॥ ३७३ ॥ तेषु धर्मप्रचारोऽपि, न भवेदिति चिन्तने । शोचनीया मुनार्वेयं, सद्गाग्रगण्य-भ्रातरः । एतदुपस्थितकालेऽपि, भवन्तश्चेन्मतं परम् । जैनं तस्य नोदनार्थं, यद्यस्ति परिचयो महान् ॥ ३७४ ॥ ज्ञातव्यं भवता नाम, सनयपति गजेन्द्रवत् । अतो हि विदुषां तद्वत्कियाऽऽपभमुनीनपि ॥ ३७५ ॥ बुधरान-प्रसिद्धानां, वक्तॄणां सर्वसम्मते । व्याख्यानवाचस्पतीनां, सन्यासधारिणां तथा ॥ ३७६ ॥ चिन्तयामि सदा सम्यक्त्वप्रचारस्य क्षेत्रकम् । भगवता वीरदेवेन, समं कुरु विशालकम् ॥ ३७७ ॥ जैनधर्म्मं तथा शब्दद्विलव्यासं तथा कुरु । भवन्तो वेऽपि चास्यैव, रोगस्य परिमार्जकाः ॥ ३७८ ॥ सन्त्यौष-धिकराश्चात्र, न वा चेति विचार्यताम् । अथ भक्तःगृहस्थान्प्रति—स्वभक्तान्गृ-हस्थान्प्रति जीर्णक-मौक्तिकादिकम् ॥ ३७९ ॥ पूणयन्ति स्वधर्म्मे च, इडधेवि वितृष्णकः । सरल्व तथा चसीतन्प्रशमा च वाणिना ॥ ३८० ॥ जार्णस्य भक्ति-भावना, पूणान्स्य सामायिकम् । नुर्वन्तु पूनिकाति, मद्वास्ति जीविका पुनः ॥ ३८१ ॥ सामायिकं पवित्रं च, मारकस्याऽप्यणुव्रतम् । जैन समारकन्यान्तं, न हि नाऽस्मरिष्यति ॥ ३८२ ॥ इतोऽतिरिक्तं तस्यास्ति, शुभागमनसूचना ।

यातनातो धर्मचण्डाचलितान्विविधिगयते । कस्मिंश्चित्समये राजगृहाधीशः श्रेणिकः ॥ ४४४ ॥ तनयस्तस्य चैकोऽस्ति, मेघकुमारनामकः । श्रुत्वोपदेशं वीरस्य, संवेगात्प्रतिजगृहे ॥ ४४५ ॥ दीक्षोत्तमा तदा तस्य, दीक्षितस्य नवस्य च । सर्वमुनीनां पश्चात्तु, तदाऽऽसनमवेशयत् ॥ ४४६ ॥ परन्त्वावश्यकं धर्मं, कर्तुमायान्ति यान्ति च । मुनयोऽनुश्रयोपस्थाभिशायाः समयस्तथा ॥ ४४७ ॥ तेषामीर्याभङ्गवशात्पादस्पर्शो मुहुर्मुहुः । जातस्ततः पराभूय, व्याकुलोऽभून्महामनाः ॥ ४४८ ॥ निद्राऽभावसमापन्नो, विचारे तत्परोऽभवत् । किं मेघायुर्मदीयं च, पादप्रहरणाद्गतम् ॥ ४४९ ॥ प्रातश्चैवं व्यतीत स्याम्प्रेतास्मै मुनिर्नवः । प्रातरेव हि दास्येदं, धर्मोपकरणं मुदा । गत्वा च जननीं स्वां च, मिलिष्यामि मुदेप्सतः ॥ ४५० ॥ शापुरश्चैव सम्भूय, दर्शितः पादलग्नतः । नेत्थं विनिर्दिष्टेऽपाय, प्रष्टुं पूर्वमेव तत् ॥ ४५१ ॥ सदा चायाति भक्त्यैव, तदाऽस्यादरतोऽवदत् । अथ भूत्वा मुर्मयमथाथ जानन्ति कथंचन ॥ ४५२ [न जानन्ति कथं चात्र, किमाश्चर्यमतः परम्] निशान्तरस्य प्रातर्हि, मुनिर्मेघकुमारकः । वीरस्य चरणाम्भोजवन्दनार्थं समागतः ॥ ४५३ ॥ गुरोः प्रष्टुं समुत्पन्ना, क्षमा तस्य मुनेरद । नतं शिरश्चचरणत्, कुमारः क्षत्रियस्य च ॥ ४५४ ॥ स त्वन्तेवासी भूत्वा च, तस्य च मङ्गलाधय । संसारतारको वीरो, निशावृत्तं च ज्ञातवान् ॥ ४५५ ॥ सर्वज्ञेन निशावृत्तं, जिगद पुनरुक्तवान् । रात्रौ वत्स ! मुनीनां च, पादप्रहारतस्त्वया ॥ ४५६ ॥ लब्धा निद्रा न स्वान्ते, तेनाते ध्यानमागतम् । अतो निद्रा सुविच्छिन्ना, निशाऽतीताऽतिकष्टदा ॥ ४५७ ॥ परं चित्तैकतान्याने, मार्गमस्य समागतः । तदा स्यात्पूर्वकं ज्ञानं, जन्म पाशविकं तव ॥ ४५८ ॥ तत्र दृष्टं महान्तं वा, निशापादप्रहारकम् । एतावन्त प्रतिभुन्य, मेघनाम्नो मुनेस्तदा ॥ ४५९ जातिस्मरोऽभवत्पूर्वजन्मद्वयगतस्य च । तिर्यग्भावगतां वार्त्तां, समालब्धा स्मृतेः पथम् ॥ ४६० ॥ पूर्वमंशदिनी तद्दृष्ट्वा जातेयमद्भुता । तदा योगी पुनर्मार्गे, [illegible] ॥ ४६१ ॥ तथैवमागतस्यैवं, दृष्टा यत्नेन्यता गुरो । अन्ते [illegible] ॥ ४६२ ॥ [illegible] धम, [illegible] । भगवान्वीरस्तथ [illegible] ॥ ४६३ ॥ [illegible] । [illegible] ॥ ४६४ ॥ [illegible] च कथ्यते ॥ ४६५ ॥ अथ सादर प्रति [illegible] । [illegible]

गायन्ति ? च तद्गुणान् । शुद्धकल्या जनाश्चापि, बहवः स्वमुखेन वै ॥ ४८९ ॥ ज्ञातपुत्रमहावीरस्त्वदनन्तचरित्रकम् । मुक्तकण्ठेन तस्यापि, सर्व्वज्ञत्वं प्रशंसिरे ॥ ४९० ॥ आध्यात्मिकस्य तत्त्वस्य, पदार्थे तत्त्वचिन्तकाः । ये ये प्रसिद्धा लोकेऽस्मिन्महानुभावभाविताः ॥ ४९१ ॥ यान् यान्साहित्यविषये, अन्यान्प्रति सुधीमतः । भगवन्महावीरस्यादर्शजीवनरूपकम् ॥ ४९२ ॥ चरितोपदेशकानां यः, प्रभाव. पतितो भुवि । सूचीपत्रविनिर्मातुं, सर्व्वथा तदसम्भवः ॥ ४९३ ॥ एतावदेव सङ्क्षेपात्कथितं च महोदयैः । एतादृशो जनः श्रेष्ठस्तया साहित्यतत्त्ववित् ॥४९४॥ संसारे विरलश्चास्ति, ज्ञात्वाऽज्ञात्वा विशेषतः । भगवन्महावीरस्य, जिनस्य प्रतिवासरम् ॥ ४९५ ॥ अनेकान्तवादतत्त्वस्य, सेतिहासोपदेशकैः । लाभो नोन्यःपितो लोकैर्ज्ञायतो परमार्थतः ॥ ४९६ ॥ यत्र श्रीवर्धमानस्य, जिनस्य न हि दृश्यते । चिन्हं किञ्चिन्मत्सत्यं, सर्वत्रैवं विचारय ॥ ४९७ ॥ साधारणान्मनुष्यैर्नो, महत्त्व न वचस्स्वपि । परं भारतवर्षस्य, यावन्तश्चेतिहासके ॥ ४९८ ॥ महान्तो मनुजा जातास्तेऽवश्यं वीरस्वामिनम् । येन केन प्रकारेण, स्मृतवन्तो मुहुर्मुहुः ॥ ४९९ ॥ इति वार्तातिरिक्तं च, सिद्धं जातमिति स्फुटम् । विद्वांसः पूर्वगा लीना, वर्धमानजिनस्य च ॥५००॥ चरिते स्याद्वादकस्य, सिद्धान्तस्य प्रशंसनम् । पतितं परमाधिकस्य, नानाख्यानान्वितं पुनः ॥ ५०१ ॥ पठनाचस्य संसारे, शाम्यन्तीति विशेषतः । पाश्चात्यैर्निखिलैर्लेखैर्नामिगुणमनस्य दृश्यते ॥ ५०२ ॥ तथापि महावीरस्य, चरित्रे जीवनस्य हि । तथा सदुपदेशस्य, शिशुरेनो लघुर्ध्रुवम् ॥ ५०३ ॥ तदा किमियमाशा वै, न वर्त्तुं शक्यते मया । पाश्चात्यभाविनि भवे, वीरस्य विश्वव्यापिनः ॥ ५०४ ॥ प्रभावोऽगणनानुया, ज्ञानरूपाश्च या शुभा । प्रत्युतानन्तप्रख्यानप्रकारत्वेन संस्फुटम् ॥ ५०५ ॥ सुपाश्चात्यैर्जनैर्विश्वे, वर्णितं मुक्तकण्ठतः । भगवन्त श्रेष्ठतम मन्यन्ते स्वानुभावतः ॥ ५०६ ॥ सुनाफर्यमिड नम्म **समग्रयशसः परम** । [illegible] च महावीरे परिपूर्णमनन्वय ॥ ५०७ ॥ **श्रिय समग्रायाः** —[illegible] भगवान्वीरो, जन्मजन्मान्तरानुग । [illegible] ॥ [illegible] ॥ त्रिपदाम-र्वविज्ञप्त, [illegible] च ॥५०९॥ [illegible] सुवि [illegible] ॥ ५१० ॥ [illegible] । [illegible] ॥ ५११ ॥ [illegible] । कि

लब्धवानूनं, पदं महात्मनां ध्रुवम् ॥ ६६ ॥ "गोत्रामपुल" संभूतश्चेन्मुक्तः मुनि-पुङ्गवैः । नराश्रयोऽयं विज्ञेयश्चाण्डालकुलसंभवः ॥ ६७ ॥ हरिकेशी मुनिर्जातः, सर्वोच्चैः पदवीं गतः । उत्तराध्ययने प्रोक्तं, "सक्खं खु [चेति] दिस्सई" ॥६८॥ तदर्थोऽयं च विज्ञेयो, योगमाहात्म्यमुत्तमम् । प्रत्यक्षं दृश्यते यत्र, नास्ति जाति-विचारणा ॥ ६९ ॥ हरिकेशी योगी चाण्डालो, जात्या चासीद्विशेषत । परन्तु योगवृक्षोऽसौ, सर्वेनैत्रं पिनष्टि च ॥ ७० ॥ तामसीवृत्तियुक्तात्मा, योगसिद्धिः कदा-चन । भवितुं शक्यते तस्माद्योगी योगविजानताम् ॥ ७१ ॥ दुग्धक्षीरादिकं मिश्रं, भोजनं सात्त्विकं वरम् । भगवता कृष्णचन्द्रेण, गीतायामुपमीदृशम् ॥ ७२ ॥ सात्त्विकानां जनानां तु, रसयुक्तं मृदु स्थिरम् । हृद्यं भोजनमास्थानं, सात्त्विकं प्रियमात्मन ॥ ७३ ॥ आयुष्यबलबुद्धीनां, वर्द्धनं जायते यतः । परन्त्वतिमिर्ति-क्तानां तैलादीनां न कारयेत् ॥ ७४ ॥ तामसानां पदार्थानामुपयोगं करोति न । नात्यन्तं च कटुं तीक्ष्णं, न चाम्लं तिक्तभोजनम् ॥ ७५ ॥ परिहरेद्द्वरतो योगी, नाम संयोगसाधने ॥ ७६ ॥ स्वल्पावश्यकत्वे हि, नाधिकं वचनं वदेत् । प्रयोजनं विना योगी, मौनमेव समाश्रयेत् ॥ ७७ ॥ अन्यथा वाग्व्यये जाते, विघ्नत्वं प्रपद्यते । योगे विचारतो भूयादिति योगविदो विदुः ॥ ७८ ॥ योगसाधननि-ष्ठानां, पुरुषाणां महात्मनाम् । सकलशास्त्रसर्वक्रियां ज्ञात्वा, तथा तत्रालिखितं वदेः ॥ ७९ ॥ योगसिद्ध्यै पवित्रे च, तथैकान्ते विनिर्जने । देशे योगक्रिया विशेषतया गिरिगह्वरे ॥ ८० ॥ एकान्तातिरिक्ते च, स्थाने नैव प्रसिध्यति । अतः प्राचीन-कालीनाः, पुरुषा बहवो मुदु ॥ ८१ ॥ यत्रारण्यस्थालिका वृक्षा, लतागुल्मादिसं-वृताः । पर्वतास्तद्गुहाश्चापि, तथा सुखकरा पुन ॥ ८२ ॥ नराभ्यस्तवन्नत्वे, योगसाधनिकारियाम् । यथानिशान्त्विता शश्वद्वनस्पत्याद्यस्तथा ॥ ८३ ॥ महा-त्मना शुद्धस्य रणिका पतिता भुवि । वातावरणके चैव, तत्र स्थाने प्रकल्पयेत् ॥ ८४ ॥ तत्र स्थले निवसता, चञ्चलत्वं विहाय च । मनः शान्तं भवेन्नित्यं, सर्वत्र समता नृणाम् ॥ ८५ ॥ अनन्तस्थानिक नैरन्तर्यमनुकूल सदा प्रियम् । प्रत्युत राजभवनं समीयुक्तं तथा पुन ॥ ८६ ॥ स्वर्गेऽपि नास्त्यत्र नाभ्यत्र तान्यत्र कर्हि-चित । आनन्दानुभव कुत्रचित्तदिव्यदेशके ॥ ८७ ॥ स्मरणार्थं हिमागार गमनं यत्र उच्यते । तस्यिस्थाने कदापि स्यादानन्दानुभवस्य ॥ ८८ ॥ योगिनःसिद्धि-लब्धेन, स्थानेषु वसनं वरम् । कारणेन कस्यचिद्वान स्थान नावलम्ब्यते ॥८९॥ तदा ध्यानगारस्यैव, यान्यो रमणीयकं । वनस्पतिसमायुक्ते तम्लभ्य च शुचिस्थले ॥९०॥

भ्यतेऽनेकक्रियाविशेषा ॥ १११ ॥ त्रिधागतं दृष्टिजिनार्थमेवमनन्यमानस्यक्रमुले-भावात् । दृष्टेर्जयस्येदमवेहि लक्षणं, नेत्रापिधानं न भवेद्धि पूर्णम् ॥ ११२ ॥ निमेषमेषैर्भवतीह दृष्टिस्तेनैव योगस्य फलं प्रदिष्टम् । योगेऽस्ति यत्राटकसंज्ञकं च, सूत्रेष्वपि प्रोक्तमथेनतस्य ॥ ११३ ॥ उन्मेषमेषादतिरिक्तभावे, प्रमाणमात्रं तमवेहि मुहुश्च । संसिद्धये त्राटकमुद्यतार्थ, जितार्थमीदृक् खलु दृष्टिपुष्टेः ॥ ११४ ॥ प्रातर्दिनान्ते च मुनिश्च साधकः, स्थित्वाऽऽसने प्रोक्षयेत्त्रगाधनम् । स्तनः सदा तल्प-रतलयान्तरे, निर्माय तूल्य मृदुलं सगोलम् । संस्थापनीयं परितो वयेत्तम् ॥११५॥ विनासनेनेति च योगसिद्धिं, योग विना नाऽऽसनसिद्धिमेति । द्वयोः श्वासवृत्ति-निरोधनं स्याद्वृत्तेर्निरोधात्तु समाधिसिद्धिः ॥ ११६ ॥ समाधिना आत्मसुलोपल-ब्धिस्ततो मुमुक्षु समुपैति मुक्तिम् । मुक्तो सदा ब्रह्मणि लीनभावे, जगद्विलीने च विभाति योगी ॥ ११७ ॥ तद्गोलके दृष्टिरुपासनीया, कियच्च काले हि यदाश्रु-पातः । नेत्राद्विनिर्गच्छति चेत्तदाश्रुपातो यदाऽऽरम्भविकल्पकाले ॥ ११८ ॥ तदा त्राटकं मोचयेत्तत्र्यकाले, यदा स स्थिरत्वं भवेत्क्षयमध्ये । सदैव मनः शान्तभावं प्रयाति, मुनेर्योगतो वाऽचला बुद्धिरेका ॥ ११९ ॥ चतुर्दिनान्तेऽष्टदिनान्तराले, सम्प्रोक्षयेदश्रुकलानिपातम् । न लोपनीय किल त्राटकं च, श्रमो विधेयश्च सदे-दृशोऽपि ॥ १२० ॥ न स्यात्कदाचिन्नयने पिधाने, कृते प्रयासे यथा शान्तिदस्य । समृद्धिर्भवेदनुदिनं चेत्तदा स्थापनीय, प्रवृत्तिर्यथा स्यात्सुयोगे मुनीनाम् ॥ १२१ ॥ यदैका घटीनोऽधिक्य पक्ष्म पङ्क्तिर्निरुद्धा भवेच्चेत्तदा नूतनानाम् । महाश्चर्यरूपं सुवार्तान्वितानां, दरीदृश्यते योगिवर्यैर्मुनीन्द्रैः ॥ १२२ ॥ यदा यदैव च प्रयाति वृद्धिस्तदा तदा तस्य च साधकस्य । सदानन्दप्राप्तिर्भवेदशक्तेऽपि, विचार्य महद्भिः सदैव विरागे. ॥ १२३ ॥ यदा यदा जेष्यति दृष्टिपातं, ततस्ततस्तन्मनसोऽपि शान्ति । सञ्जायते दृष्टिजये मनोऽपि शान्त जयश्चापि भवेद्धि तस्य ॥ १२४ ॥ नेत्रान्तरे पक्ष्मपङ्क्तौ नितान्त, सुसम्स्थापयेद्दृष्टिरेव विचारात् । अत सर्वसूत्रे प्रयुक्त च तद्वन्मुहु पुद्गले दृष्टिपातो विधेय ॥ १२५ ॥ शुभ त्राटकं यस्य जातं स योगी, सुसम्यक्त्ववत्त्वे विलीनो विभाति । निरस्ताखिला भावना पौद्गलीया, सदा प्राणिना धारणा विधेय ॥ १२६ ॥ सुदेश क्रिया ध्यानयोगस्य नित्य, सदापुण्यतः शिक्षणीया प्रयत्नात् । सुदृष्टेर्जयाभ्यासमेत्यंक घटासुपर्यन्तमन्यत्र समाधकानाम् ॥ १२७ ॥ दिनस्यादिभागे ।परे कस्यचिद्वा जनोऽप्यूर्ध्वभागेऽथवा स्थापनीया । सुदृष्टिर्निशाया शशाङ्के नितस्य, तु जन्याथ तारासु सस्थापनीया

द्वाभ्यन्तरीयामेवं पूर्वं समाश्रयेत् । प्रयाणे चैकदैकान्, शान्तिः सन्दृश्यते रतः ॥ १४७ ॥ आभ्यन्तरीयाऽऽनन्दस्य, स्यादुद्विग्नोत्तरोत्तरा । मिलिनाऽऽत्मनैव चैतन्यविरालसाम्यसङ्गमम् ॥ १४८ ॥ यद् ध्यानं च तया चाद्यन्ध्यानोत्तमाय जायते । तेपूरयोगमन्तरा, श्वासो नैवोऽपि हारयेत् ॥ १४९ ॥ 'सोऽहं' जाग्रते जाते, वृत्तिः सस्थीयते स्वयम् । तत्र श्वासे विनाऽऽयासं, सहमेवं मिलितया ॥ १५० ॥ श्वासकस्यात्मनोरैक्यं च, ध्याने सिद्धे मुमाधकः । हृदयमध्ये मध्यगतो, कुर्वे धैर्यापयेन्मुहुः ॥ १५१ ॥ प्रयासोऽपि प्रकर्तव्य, इति योगविदो क्रिया । हान्त्या योगिवृन्दैश्च, यतः स्यादचला क्रिया ॥ १५२ ॥ स्थिरैव सा यदा हृतिर्द्वरन्याऽऽप्यलौकिकम् । शान्त्यायोनः प्रवहति, हृदब्जेभ्यः समन्ततः ॥ १५३ ॥ यत्र शान्तिमयस्याशु, साधकस्यावगाननः । इतोपि पूर्वं कस्यापि, सविधानुभवस्तथा । न जातश्च तया ध्यानं, सिद्धं वा हृदयं पुनः ॥ १५४ ॥ नाभ्येकदेशेऽपि विधारणीया, वृत्तिश्च तत्रत्यसुसिद्धिभावे । जाते पुनस्तद्धृदये च नीत्वा, कण्ठस्थलेऽपि तथा समाप्य, तस्याग्रेनैव विचारणात्र ॥ १५५ ॥ नाभ्यां हृदिस्थे च सुकण्ठगे वा, ततस्त्रिकुट्यां परिधारणीया । वृत्तिश्च सर्वत्र मुमाधकेन (संस्थापनीया), ततश्च शान्तिर्मनसाखिलेश्याम् ॥ १५६ ॥ ध्याने च सिद्धे स्थिरताभिरेवं, जाता तदा तत्र मसूरसूपवत् । स्याद्बिन्दुसाक्षात्करणं ततश्च, तद्बिन्दुतेजोऽस्य प्रयाति च ॥ १५७ ॥ तद्दर्शने साधकयोगवेत्तुरपारमानन्दसुखं प्रयाति । ततश्च तद्बिन्दुप्रदर्शनेन, योगेन योगामृतसेवकानाम् ॥ १५८ ॥ तदा कपालेऽखिलविश्वदर्शनं, सञ्जायते कारणमस्ति तत्र । यत्र स्थिते वर्तुलबिन्दुदर्शनं, योगी जनः पश्यति सर्वदेश्यम् ॥ १५९ ॥ तदा त्रिकुट्यां शाखिलपृष्ठेन, द्वौरेव बिन्दोरवलोकनं स्यात् । तद्दर्शनानन्तरसाधकानां, भवत्यपूर्वा किल बोधिलब्धिः ॥ १६० ॥ जनैर्जरास्तु विनाशनस्य, भवेन्मुकल्पास्थितिरत्रबोध्या । बिन्दोश्च सन्दर्शनमेव यत्र, श्रीशङ्करानन्दतृतीयनेत्रम् ॥ १६१ ॥ आत्माऽखिल. शङ्कर एव नान्यस्तत्सदृश नेत्रद्वयं यतोऽस्ति । बिन्दोश्च सन्दर्शनरूपममुम, ज्ञानात्मक चक्षुरिय तृतीयम् ॥ १६२ ॥ जाते सुबिन्दोरवलोकने च, मृत्योर्भय नास्ति मुमाधकानाम् । तथैव संसारशल्यनाशो, भवेच्च योगामृतसेवकानाम् ॥ १६३ ॥ एतस्य बोधार्थमिद वदन्ति, शुद्धाटन शम्भुतृतीयनेत्रम् । तदा जगत्संशयशल्यरूप, लय व्रजेत्सर्वमिद प्रधार्य्यम् ॥ १६४ ॥ बिन्दोस्त्रिकुट्यामवलोकनान्तरं यथा यथा साधकसज्जनानाम् ॥ स्यात्प्रकाशो हि विशेषतो मुदा, तथा तथा बिन्दुविशेषता च, विकाशते सर्वमयी चिदां

ऽलौकिकानन्दमेव च ॥ १८५ ॥ योगिनोऽनुभवन्तीत्थं, वर्द्धते तदहर्निशम् । यत्र योगात्मनो लीना, भवन्त्यधिकतो मुहुः ॥ १८६ ॥ अपूर्वोऽऽनन्दसन्दोहोऽनुभवो वर्द्धते स्वयम् । आशरीरे (अमिले) स्वयं तस्य, प्रसारो जायतेऽमहत् ॥ १८७ ॥ अमर्यादानन्दसन्दोहः, स्वयं सर्वात्मकेऽगहर । अलौकिकाऽऽनन्दरूपं, स्वयं स्फूर्त्या विभाव्यते ॥ १८८ ॥ अवस्थयाऽनया यो हि, स्वं साधकतत्त्वम् । विहाय योगी सिद्धश्च, विदेहोऽपि तथा पुनः ॥ १८९ ॥ महात्मा जीवन्मुक्तः, कथ्यते योगवित्तमैः । महात्मनश्चेदृशस्य, देहादृष्टिर्यदा स्थले ॥ १९० ॥ यत्र यत्र प्रसरति, तत्र तथाऽप्यलौकिकम् । दिव्यानन्दानुभवन, करोति साधकोऽनघ ॥ १९१ ॥ जनपदे जले स्थले, तथा वसुमती स्थले । राजस्थले पट्टमये, गगनादिमुखस्थले ॥ १९२ ॥ एतत्स्थानेषु साधूनां, दृष्टिर्याति महात्मनाम् । तत्र तत्र स्थले नित्यमानन्दानुभवात्मकम् ॥ १९३ ॥ सर्वत्राऽभेददृष्ट्या च, तथाऽनुभवतः सदा । द्वैतभावस्य भ्रान्तेश्च, जातेऽभावे स कथ्यते ॥ १९४ ॥ तादृशो वीतरागश्च, योगी भवति निश्चलः । कृतकृत्योऽपि सिद्धश्च, ज्ञायते आत्मतत्त्वतः ॥ १९५ ॥ योगिनामीदृशानां च, दर्शनं लोकपावनम् । कुरुते सतत योगदर्शे चैव निशाम्यताम् ॥ १९६ ॥ यथाऽभ्यन्तरवृत्तीनां, द्वारेणापि प्रयोगतः । सम्बन्धे ज्ञायते तद्वृत्त्या स बाह्यभावतः ॥ १९७ ॥ नाभेरुपरिभागे च, स्थापनीयो विशेषतः । यदा तत्र प्रयासे तु, चतुरो नाभिमध्यगे ॥ १९८ ॥ अत्युज्ज्वलसमं तेजो, दृश्यते चानुरूपतः । तदा नाभिगतां दृष्टिं, विहाय वक्षसोर्मुहुः । स्थापनीया प्रयत्नेन, मध्यभागे सुभावतः ॥ १९९ ॥ तत्तेजो नासिकारन्ध्रे, स्थापनीयं च ध्यानतः । नासिकाग्रविमुक्त्या तु, ततो भ्रमरगह्वरे ॥ २०० ॥ अजरामरवर्त्तस्य, सिद्धाः सिद्धशिलासु च । ततोऽप्यनुभवे गच्छेत्तन्मार्गे च प्रवर्तते ॥ २०१ ॥ भक्तेरेवं महत्त्वं च, साधने जन्यते परम् । भक्त्या चोत्पद्यते प्रेम, तेनैवात्मा प्रदृश्यते ॥ २०२ ॥ कस्यचिच्छास्त्रतत्त्वस्य श्लोकस्योपरि विचारणम् । कुर्वन्कुर्वन् गम्भीरार्थं योत्तीर्यते पुन ॥ २०२ ॥ तद्वारा [illegible] वर्तते [illegible] । एतदस्ति रीतिरीदृशी, यत्र पद्मासने स्थित ॥ २०३ ॥ विचारयति यन्निर्विघ्नघटे स्थित्वा प्रपश्यतु । परन्तु तावदेवार्यो, विचारा शोभना यते ॥ २०४ ॥ अध्यात्मकल्पनायां, स्वय शान्तिर्भवेत्पुन । विचारधारा चायन्नमन्दैव प्रशाम्यति ॥ २०५ ॥ विचारशान्तितः पश्चादात्मनामलौकिकम् । आनन्दानुभवा यान्ति ततोऽखिलभयापरि ॥ २०६ ॥ प्रसन्नार्थवित्रात्मा [illegible] । स्थापय त्वं योगात्मा,

मता । तथा बन्धत्रयं प्रोक्तं, योगसाधनकर्म्मणि ॥ २२९ ॥ खेचरीति महामुद्रा, महाबन्धपरी तथा । वज्रमुद्रेति विख्याता, मुद्राः प्रोक्ताः सुखावहैः ॥ २३० ॥ ताश्च मुद्रा महायोगी, गुरुदेवप्रसादतः । ज्ञातुं शक्नोति योगात्मा, नान्यथा सिध्यति स्फुटम् ॥ २३१ ॥ प्राणायामविचारेऽपि, सर्व्वतेऽशुभशान्मुदा । बहूनीमानि योगेऽस्मिन्, ज्ञातव्यानि विशेषतः ॥ २३२ ॥ अतो महात्मनामन्ते, स्थिर्व शिक्षादिका. क्रियाः । संसारे योगतो नान्यः, पंथा मोक्षाय विद्यते ॥ २३३ ॥ **यो योगं कुरुते नित्यं, स याति परमास्पदम् । निर्भयं कर्मबन्धाच्च मुच्यते नात्र संशयः** ॥ २३४ ॥ इत्युपदेशानुसारेण, ज्ञातव्यं मोक्षकांक्षिभिः । अत्रानेके जना. काले, बहूपायकरा भवे ॥ २३५ ॥ दृश्यन्ते च तथाऽन्येऽपि, कथं तेषां सुखोदय । सुपुण्यरूपं तेद्यसं, बीज पूर्वं तनश्च ह ॥ २३६ ॥ सुखात्मकं फल शश्वद्भुञ्जन्ते तेन ज्ञायताम् । परन्त्वत्र च जीवेभ्यो, दत्वा दुःखं निरन्तरम् ॥ २३७ ॥ वपन्ति दु.खबीजं ते, भविष्यन्ति सुखेतराः । फलं दुःखमयं तेषामन्ते स्यान्नात्र संशयः ॥ २३८ ॥ इत्थं यश्च सुखी भूत्वा, पापिष्ठोऽपि भवे भवान् । पापानुबन्धिपुण्यात्मा, ज्ञायतां जगतीतले ॥ २३९ ॥ तदत्र वर्तते हेतुः, पूर्वपुण्यप्रसङ्गतः । जायन्ते सुखिनः पश्चाद् खिनोऽपि भवन्त्यतः ॥ २४० ॥ वर्तमाने पापयोगात्तापिनोऽपि ततः परम् । दृश्यन्ते सुखिनोऽप्येवं, ज्ञातव्यं तत्वनिश्चये ॥ २४१ ॥ धर्मात्मानो जना. केचित्सन्ति लोके सुखार्थिन. । कियन्तो दु.खभोक्तार., पापपुञ्जप्रभावत. ॥ २४२ ॥ कियन्तश्च सुखाकाराः, पुण्योदयप्रभावत. । एवं दुःखसमाप्तौ च, सुखोदर्कः प्रजायते ॥ सुखभोगसमाप्तौ तु, दुःखोदर्कः प्रपद्यते ॥ २४३ ॥ अतस्ते सुखिनश्चाग्रे, भविष्यन्ति नरास्ततः । ईदृशान्मनुजान् शास्त्रे, पुण्यानुबन्धिपापिनः ॥ २४४ ॥ कथयन्ति जगत्यस्मिन्पूर्वपापप्रभावत । भुञ्जन्ति तेऽत्र पापौघ, वर्तमाने तथा पुन. ॥ २४५ ॥ पुण्योदयवशात्ते च, भविष्ये सुखभोगिनः । ज्ञातव्यं दुःखभोक्तॄणां, तथा सुखभुजां भुवि ॥२४६॥ तत किं कथयन्त्यत्र, वर्तमाने च पापिन. । भविष्येऽपि तथा सन्ति, नियमोऽप्यस्ति किमीदृश ॥ नियमोऽप्येतादृशश्चापि, जनाश्च बहवो भुवि । पूर्वपापवशात्त्र, दुःखिना जीवन्ति सदा ॥ २४७ ॥ तेऽप्यग्रजन्मन्यन्ते च, दुःखिनो मनुजाः पुन । तथेदृशजनानान्तु, का सञ्ज्ञेति वदन्तु न ॥ २४८ ॥ **पापानुबन्धिपापिनो**, ज्ञातव्य शास्त्रमानत । पूर्वजन्मार्जितानां च, दुःखानां भोगिनोऽधुना ॥ २४९ ॥ **इदानीं कुरुते** पाप तद्भोक्ताऽग्रे भविष्यति । किंवैतादृशो नियम , शास्त्रेऽप्यस्ति प्रमाणत. ॥ वर्तमाने सुख भुङ्क्ते, भविष्येऽपि पुन सुखम्

॥ २५० ॥ योगोऽनघो महत्तत्त्वप्रापकोऽस्त्यमरद्रुमः । तस्य सेवनमात्रेण, याति योगी परम्पदम् ॥ २५१ ॥ भवितुं शक्यते चेत्थं, भूतकाले च ये नराः । प्राणिनां सुखदातारो, बन्धयित्वाऽतिपुण्यकम् ॥ २५२ ॥ तेनात्र सुखसम्पन्नाः, पुण्यमेवाप्नुवन्ति ते । भविष्येऽपि पुनस्तद्वत्पुण्यस्यैवानुबन्धनम् ॥ २५३ ॥ एतां दशाजनस्तत्र, धत्ते पुण्यानुबन्धकृत् । पुण्यदान्कथ्यते लोके, पूर्वपुण्यप्रभावतः ॥ २५४ ॥ सुखी भूत्वा स चेदानीं, वर्तमाने करोति चेत् । पुण्यं भविष्यत्कालेऽपि, पश्चादपि सुखी भवेत् ॥ २५५ ॥ कर्मणां चतुष्टयं चेत्यनुबन्धं भवत्यदः । विशेषश्चानुबन्धार्थो, बन्धनं फलसन्ततम् ॥ २५६ ॥ भुंक्ते च तत्फलं पश्चात्, शुभाशुभानुबन्धनैः । अस्त्येवं च सुखीदानीमग्रेतन च दुःखभाक् ॥ २५७ ॥ पापानुबन्धिपापश्च, पापानुबन्धिपुण्यकृत् । पुण्यानुबन्धिपापश्च, पुण्यानुबन्धिपुण्यवान् ॥ २५८ ॥ चतुर्विधं सुविज्ञेयमनुबन्धस्य साधकैः । सन्तदेऽत्र सुखं पश्चादग्रेऽपि सुखप्रापकम् ॥ २५९ ॥ इत्थं धर्मफलं दुःखमथवा सुखसंभवः । परन्त्वध्यात्मिनोऽस्य, सुखस्यापि कदाचन ॥ २६० ॥ तस्मात्तेन भवेच्चैव अध्यात्मिकसुखाशये । ध्यानिके सुखभोगश्च, हेयं सर्वत्र सर्वदा ॥ २६१ ॥ जपादिपुण्यपापानां, क्षयं नीत्वाऽऽत्मरूपके । स्थातव्यो मनसाऽपि च, कीदृशोऽप्यनुबन्धनम् [न बन्धनीयो हेयश्च, नयविद्भिरिहोच्यते] ॥ २६२ ॥ यथानुभूतात्मतत्त्वेऽभूतं हि, योगी जनस्तिष्ठति प्रध्यानतः । तेनैव तृप्तिश्च तथा विमुक्तिः, सदात्मयोगिजनस्य नित्यम् ॥ २६३ ॥ बन्धयोऽस्त्यनुबन्धश्चेत्पुण्यस्यैवानुबन्धनम् । पापानुबन्धं नो कुर्याच्छ्रेय एवास्ति सर्वदा ॥ २६४ ॥ कुतः पुण्यानुबन्धस्य, यत्तदेवं फलं भवेत् । ततः स्यात्कर्मनिर्जरा, न पुनः कर्मसम्भवः ॥ २६५ ॥ स्वतन्त्रतायाश्चैतद्धि, द्वितीयं द्वारमिष्यते । ज्ञात्वैवं च विवेकेन, साध्यो योगश्च साधकैः ॥ २६६ ॥ योगात्कोऽस्त्यपरः कश्चिन्मुक्तिसिद्धिकरोऽधुना । तस्माद्योगमुपाश्रित्य, याति योगी परम्पदम् ॥ २६७ ॥ योगः कल्पतरुर्विपत्तिगरलनिरसनतत्त्वशोधनो, येन स्याद्वराऽपमृत्युहरणे योगार्थिनां दुःसहा । कीर्तिः स्यादचलाऽऽत्मनि प्रथितते यस्मान्तत निर्मल्य, योगे निर्मलचेतना हृदि मुहुर्मुक्तिश्च वा प्राप्यते ॥ २६८ ॥ योगो हि निर्मलादर्शो, यत्रात्मा च प्रदृश्यते । लोकस्यान्तर्गतं वस्तु, निशामय गुरोर्मुखात् ॥ ॥ २६९ ॥

इति वीरयोगतरङ्गः समाप्तः ॥

भावार्थः—प्रत्येक प्राणी सुखकी इच्छा प्रकट करता है, इतना ही नहीं बल्कि सुखकी प्राप्तिके लिये अनेक उपाय करता है। उन उपायोंसे जब वह सफलीभूत होता है और अनन्त सुखको पाता है तब वह सर्वथा कृतकृत्य हुआ समझा जाता है। सुखको पानेके लिये अनेक साधनोंमें धर्म सबसे मुख्य साधन है। वर्तमान समयमें अनेक मत, पंथ, वाड़ाबंदी सम्प्रदाय, संघाड़ा, गच्छ, टोला, पार्टीबाजी आदि जो धर्मके नामपर चलकर अमर शहीद बनने जा रही हैं, वे सब सुखके साधनसे विमुख बनकर अपने शिष्योंको सुखका साधन प्राप्त करानेमें असमर्थसे ही हैं। मात्र अपनी सम्प्रदाय और टोलेको निभानेके लिये अमुक अमुक क्रियाएँ रच डाली हैं। उन्हींको परम्पराके अनुसार अपने शिष्योंको भी बताते रहते हैं, और वे शिष्य भी उस परम्पराके अरघट्ट चक्रके अनुसार उन क्रियाओंको उनके इशारेपर नाच-नाचकर करते रहते हैं। ऐसी स्थितिमें जो क्वचित् कचित् सुखकी इच्छावाले प्राणी हैं उनको सन्तोष नहीं होता। सन्तोष न होनेसे ऐसे भद्रपरिणामवाले जीवोंको सुखके साधनके लिये खून पसीना एक करना पड़ता है। बहुत कुछ धूल खाक टटानेपर भी सुखके सच्चे साधन समयपर मिलते हैं और नहीं भी मिलते। इस प्रकार उनकी दयनीय स्थितिपर स्पष्ट समझा जा सकता है कि स्थायी सुखके वास्तविक और सच्चे साधनोंके प्रचार करनेकी जगत्‌के लिये पूरी आवश्यकता है।

सुखके साधनोंमें योग सबसे भारी और अद्वितीय चमत्कारिक तथा सर्वमान्य साधन है। यदि इन साधनोंका गुरुगम द्वारा उपयोग किया जाय तो अवश्यमेव अल्प समयमें सनातन अखंड सुखकी प्राप्ति हो सकती है। योग एक ऐसी वस्तु है कि वह अपने आप नहीं सीखा जा सकता, अतः किसी महात्मा, योगनिष्ठ, आत्मवित् पुरुषके द्वारा उसे सीखना चाहिये। आजकल योगी पुरुष इस भारतमें सब जगह नहीं मिलते अतः सतत प्रयास द्वारा योगियोंकी खोज करनी पड़ेगी, परन्तु नकली योगियोंसे तो सावधान ही नहीं बल्कि दूर रहना चाहिये और किसी सच्चे योगीको खोजकर साध्यकी साधना करनी चाहिये। एवं इतना स्मरण रहे कि योगकी साधनाके बिना सत्य सुखको कोई भी नहीं प्राप्त कर सकता परन्तु वह सत्य सुख अपने पास और अपनी आत्मामें ही है, और योग अन्तर्दृष्टिके अभ्यास द्वारा उसे बता

सकता है। जिस मनुष्यको सनातन सुख अभीष्ट हो उसे योगकी साधनामें लगना चाहिये। योग और योगीकी महत्ता बड़ी ही ऊंची है। श्री कीन भगवद्गीतामें श्रीकृष्णचन्द्रने कहा है कि—

तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद्योगी भवार्जुन॥
(अध्याय ६, श्लोक ४७)

भावार्थ—उपवासादिक अनेक प्रकारके लम्बे-लम्बे तप करनेवालोंसे योगी बड़ा है। नय, निक्षेप, देवादिकी आयुष्यके भंग (भांगे) तथा जीवादिकी संख्याकी गणना करनेवाले वाचाल ज्ञानियोंसे भी योगी बड़ा है, आवश्यकादि कार्य करनेवालेसे भी योगी बहुत बड़ा है। अतः हे अर्जुन! तू योगी बन।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा, विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा, कुर्वन्नपि न लिप्यते॥
(गीता अध्याय ५, श्लोक ५)

भावार्थ—आत्मविजेता, इन्द्रियविजेता और सब भूतोंपर समभाव रखनेवाला योगी पुरुष कर्म करनेपर भी निष्कर्म बनता जाता है। अर्थात् कर्म लेपसे लिप्त नहीं होता।

इसी प्रकार जैन-दर्शनमें भी कहा है कि—

"अग्गं च मूलं विर्लं च विगिं च धीरे।
पलिच्छिन्दियाणं णिकम्मदंसी॥"
(आचारांग)

अग्रकर्म और मूलकर्मके भेदको समझ कर विवेक द्वारा कर्म कर। [illegible] कर्म करनेपर भी [illegible] निष्कर्मी कहलाता है।

अकम्मस्स ववहारो ण विज्जइ। कम्मुणा उवाहि जायइ॥
(आचारांग ३-१-३)

भावार्थ—[illegible] नहीं [illegible]। इसी [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] शरीर [illegible] अनेक वाहन होते हैं, इत्यादि

यह योग अनादि कालसे चला आ रहा है, और इसके आदि प्रवर्तक आदिनाथ अर्थात् आदि तीर्थंकर श्रीऋषभदेवजी जिनराज हो गये हैं। उन्होंने मनो निग्रहका आदेश सर्व प्रथम देकर यह फर्माया है कि अधिकतर बहुतसे जीवोंका जगत्के सन्मुख दृष्टि द्वारा क्षोभ प्राप्त मन अनुरूप होकर आत्माके सन्मुख प्रवर्तित होता है, और वह फिर अनन्त सुखका साक्षात्कार पाकर उसका अनुभव करता है अतः मनका निरोध करना ही योग है। भगवान् पतञ्जलिने भी योगका यही लक्षण बताया है।

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।" 'चित्तवृत्तिका निरोध करना योग है।'

इस अत्युत्तम योगके पात्र स्त्री पुरुष या चारों वर्णके लोक हैं। योग साधनामें जाति भेदकी कोई आवश्यकता नहीं है। चाण्डाल जाति भी योगी महात्मा हो सकता है। २५०० वर्ष पूर्व हरिकेशी मुनि जातिके चाण्डाल थे तथापि योगके द्वारा महात्मा पदको पा गये। यथा—

सोवागकुलसंभूओ, गुणुत्तरधरो मुणि। (उत्तराध्ययन)

भावार्थ—चाण्डाल कुलमें जन्म लेनेपर भी हरिकेशी मुनि उच्च गुणके धारणकरनेवाले मुनि थे, पुनश्च।

सक्खं खु दीसइ तवोविसेसो, न दीसई जाइ विसेस कोई।
सोवागपुत्तं हरिएससाहुं, जस्सेरिसा इड्ढि महाणुभागा॥
(३७, उत्तराध्ययन १२)

"योगका महात्म्य आगमों और ग्रन्थोंमें दीख पड़ रहा है जिसमें [illegible] कोई आवश्यकता विशेष नहीं है। हरिकेशयोगी चाण्डाल जाति है। [illegible] इसके योग [illegible] भोजन [illegible] आम [illegible]।

[illegible] योग [illegible] आयु [illegible] सात्त्विक आहा[illegible] [illegible] [illegible]

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धना
रस्या स्निग्धा स्थिरा हृद्या आहारा सात्त्विक प्रिया।
([illegible] अध्याय [illegible])

[illegible] सात्त्विक [illegible] प्रिय है,
[illegible] है।"

दर्भासनके अभावमें कंबलासन बिछाना चाहिये। दर्भासनके ऊपर कंबलासन बिछाकर उसपर पद्मासनसे मन पसंद आसन लगा कर तथा स्थिर होकर पूर्व या उत्तरमें मुख करके बैठना चाहिये। सूत्रोंमें पद्मासन लगाकर पूर्वमें मुख करना बताया है।

"पुरत्थाभिमुहे' सपलियंकनिसण्णे"

पर्यंकासन या पद्मासनसे बैठकर पूर्वमें मुख रखे। पद्मासन लगाकर बायें हाथकी हथेलीपर दाहिना हाथ सीधा रखकर, कमर, गर्दन, मस्तकको एक पंक्तिमें रखकर बैठना चाहिये, और दाढ़ीको हंसलीसे चार तसुके अन्तरपर रहने दे। इस आसनसे सवेरे, सांझ या मध्याह्नमें तथा रात्रिके पहले और पिछले पहरमें सतत अभ्यास करना चाहिये। एक पहर यदि आसनसे स्थिर होकर बैठ सके तब समझो कि आसनपर विजय प्राप्तकर ली गई है। आसनपर विजय पानेके बाद प्राण और शरीर तथा दृष्टिपर विजय पाना चाहिये। परन्तु आसनपर विजय पाये बिना योग सिद्ध नहीं हो सकता। इसके बिना आत्म साक्षात्कार अर्थात् सच्चतत्त्वकी प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः सतत प्रयास द्वारा गुरुगमसे पाई हुई युक्तिके अनुसार आसनपर जय पा लेना चाहिये। आसनके जयमें यम और नियमपर जीत प्राप्त करनी चाहिये।

आसनको जीतनेके पश्चात् साधकगण अनेक प्रकारकी क्रियाएं सीख सकता है। परन्तु आसनको जीतकर [illegible] आसनकी पूर्ण आवश्यकता है। इस अवस्था पहला लक्षण आसनका न [illegible] है। इससे [illegible] हो [illegible] है। सूत्रोंमें भी [illegible] [illegible] कई जगह प्रमाण मिलते हैं।

[illegible]

कई नवीन बातोंके अचरज साधकपुरुष स्वयं देखने लगेगा, और ज्यों ज्यों इससे भी अगाड़ी बढ़ेगा त्यों त्यों उस साधकको अलौकिक आनन्दकी अंश अंशमें प्राप्ति होगी। ज्यों ज्यों दृष्टिको जीतता जायगा त्यों त्यों उसका मन शांत होता जायगा और दृष्टिके जयमें मनका भी जय होता है। अधिकतर आंखकी भवोंपर दृष्टि रखना इसीलिये सूत्रोंमें भी बताया है।

"एग पोग्गलनिविट्ठदिट्ठि।" 'एक पुद्गलपर दृष्टिकी स्थापना करे।"

इस प्रकार ध्यानकी प्रक्रियाएँ महात्मा पुरुषोंके पास सीखनी चाहिये। जब एक घंटा तक दृष्टिविजयका अभ्यास हो जाय तदनन्तर साधकको चाहिये कि दिनके पहले भागमें किसी सुन्दर पहाड़के शिखरपर या वृक्षकी चोटीपर दृष्टि जमाना चाहिये। रात्रिमें चान्द या शुक्र तथा मंगल तारेपर नजरको जमाना चाहिये। यह प्रयास ज्यों ज्यों बढ़ेगा त्यों त्यों प्रकृतिके प्रत्येक पदार्थकी ओर पवित्र प्रेम उत्पन्न होगा, और सृष्टिके प्रत्येक अंशमें वीतरागताका प्रकटीकरण होगा। परन्तु यह प्रयास भी एक घंटा तक रखना चाहिये इसके अनन्तर सृष्टिके चाहे जिस भागपर दृष्टि डालोगे तब एकदम वह वहीं स्थिर हो जायगी, और शरीरके कोमडेमेंसे दुःख निकल कर भागेगा, इस कक्षापर पहुंचनेपर साधकको तुरन्त प्रभु नामका भावना नामक जाप परम प्रेम पूर्वक शुरू कर देना चाहिये। जापमें इच्छानुसार शब्दोच्चार या 'नमो अरिहंताणं' जपना चाहिये। परन्तु कुछ समयके पश्चात् नमो पद आपसे आप छूट जायगा, और आत्मा अर्हत् प्रभुमें एकाकार हो जायगा। प्रति समय यथावसर पाकर हिलते, चलते, उठते, बैठते, सोते, जागते वह ध्यान दिमागसे न निकल सकेगा। सांझ, सवेरे, मध्यान्ह और रात्रिमें योगकी क्रियाका आरम्भ रखकर जाप जपते रहना आवश्यक है। एक ओरसे योग क्रिया द्वारा सद्भावनाकी दृढता और दूसरी ओरसे जाप, इन दो साधनोंके मिलनेसे मन एकदम शान्त हो जायगा। क्योंकि—**"मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो।"** मनरूपा घोड़ा साहसिक और भयंकर दुष्ट है। **"इन्दिय चवल तुरंगो"** इन्द्रियोंके घोड़े अधिक बलवान् होते हैं, परन्तु इस प्रयासमें उनकी मस्ती निकल जाती है, और वे शान्तिमय हो जाते हैं। इस प्रकारके प्रयोगोंमें साधकको विवेक दृष्टिमें अत्यन्त स्थिरदृष्टि हो जायगी तथा साथ-साथ आनन्दकी वृद्धि भी। यह साधना सन्तोष जनक होनेपर साधकको अपने योगकी

दिशा बदल देनी चाहिये। अर्थात् जो साधक बहिर्दृष्टिका किया जाता था उसके स्थानपर अन्तर्दृष्टिका साधक करना चाहिये। प्रथम श्वासोच्छ्वासमें दृष्टि रखनी चाहिये। और जो श्वास बाहर आता है तब 'सो' और अन्दर जाते समय 'हं' का कुदरती ही उच्चार होता है। तब दोनों मिलकर "सोऽहं" अजपाजाप बिना ही जपे होता रहता है उसपर ध्यान देना चाहिये। अर्थात् श्वास जहांसे उठता है और जहां जाकर समा जाता है वहां तक उसके अन्दर दृष्टि रखनी चाहिये। इस प्रयोगसे एकदम शान्ति होने लगेगी, और अन्तरके आनन्दमें उत्तरोत्तर वृद्धि होगी। दिनरातमें सामान्य रीतिसे २१६०० श्वासोच्छ्वास चलते हैं। उनमेंसे उपयोग बिनाका एक श्वास भी न जाने देना चाहिये। "सोऽहं" के जापका सतत प्रवाह होनेके पश्चात् एकाग्र-वृत्ति ध्यानमें रहने लगती है। आत्मामें इस प्रकार श्वासका ध्यान सिद्ध होनेपर साधकको हृदयके मध्य भागकी वृत्ति स्थिर करनेका प्रयास करना चाहिये। जब हृदयकी वृत्ति स्थिर होगी तब हृदयमेंसे अलौकिकशान्तिका स्रोत प्रकट हो जायगा। जिस शान्तिका साधकको अब तक इससे पहले किसीके साथ अनुभव नहीं हुआ था। जब हृदयका ध्यान सिद्ध होता है तब नाभीके एक देशमें वृत्तिको स्थापन करे। वहांकी सिद्धि होनेपर उसे पुनः हृदयमें ले आना चाहिये, और वहांसे कंठके मध्यमें ला छोडे। नाभि, हृदय और कंठमें शान्तिका अनुभव होनेपर मनोवृत्तिको त्रिकुटी भवनमें स्थापन करे। त्रिकुटी स्थानका प्रयास होनेपर और वहांकी स्थिरवृत्ति होनेपर साधुकी हाल जिसने एक बिन्दुका साक्षात्कार होता है, और वह बिन्दु अतिशय चमकदार होता है। बिन्दुके दर्शन होनेपर साधकको अपार आनन्द मिलता है। उस सारबिन्दुके दर्शन होनेपर सिद्धियां भी साधककी सेवामें उपस्थित हो जाती हैं। कालमें अखिल विश्वकी झांकी हो जाती है। इसका कारण यह है कि उस साकार त्रिकुटीमें गोल बिन्दुके दर्शन ही हैं, और वह चांदकी निशानी द्वारा बिन्दु दर्शनके रूपमें समझाया गया है। बिन्दु दर्शन होनेपर साधकको अलौकिक ज्ञानकी प्राप्ति होती है, और जन्म जरा मृत्युके विनाशकी तैयारी हो जाती है। बिन्दु दर्शन ही ... (...) तीसरा नेत्र है। प्रत्येक ... ... ही है, ... है ..., और तीसरा बिन्दु दर्शन ... ... है, किन्तु ... पश्चात् योगीको

मृत्युका भय नहीं हो सकता, और साधकके संशय शल्योंका नाश हो जाता है। इसीको समझानेके लिये कहा जाता है कि शंकरका तीसरा नेत्र उघड़ जाता है। तब संशय शल्यरूप विश्वका प्रलय हो जाता है।

त्रिकुटीमें बिन्दु दर्शन होनेपर साधक ज्यों-ज्यों विशेष प्रयास करता है त्यों-त्यों वह बिन्दु विशेष प्रकाशित होने लगता है, और अन्तमें साधक उस बिन्दुमें इतना विलीन हो जाता है कि उस शान्तिमें उसे नादका अनुभव होने लगता है। तब बिन्दुकी अपेक्षा नादमें विशेष आनन्द आनेसे बिन्दु गौण होने लगजाता है, और नाद विशेषातिविशेष श्रवणगोचर होता है। नाद भी अनेक तरहका सुनाई पड़ने लगता है, और वह चकी, सितार, सरंगी और नौबतखानेसे भी अधिक और उत्कृष्ट होता है। मेघकी गर्जनासे भी अधिक गर्जना सुनाई देने लगती है। अन्तमें दिव्य नादका अनुभव होनेपर साधक उस नादमें अत्यधिक लीन हो जाता है। इस ध्वनिका अनुभव इतना अधिक बढ़ जाता है कि साधककी हिलने, चलने, उठने, बैठने आदिकी क्रियाओंमें भी नादका अनुसन्धान रहा करता है। **नादके अनुभवसे ही जगत्‌में संगीतका प्रचार योगी लोकोंने किया है।** जिस प्रकार नाद साधकको प्रिय है उसी भांति जगत्‌कोभी संगीत प्रिय है। अतः संगीत (गुणगान) द्वारा मनको एकाग्र बनाकर साधकजन आगे बढ़ सकते हैं। वास्तवमें संगीत बाह्य नाद हो गया है, और इस बाह्य नाद द्वारा अभ्यन्तर नादको मिलाकर पाया जा सकता है। साधक जब नादमें और भी आगे बढ़ता है तब उसको नादका अनुभव जहां होता है वह समय गुरुके ऊपर अंगुष्ठ आकारका एक पीला प्रकाश होगा, और उस पीलके शिखरपर एक महान प्रकाशवाले पदार्थका अनुभव होगा। यह प्रकाशमान पदार्थ नासिकार और उसके छत्रके आकारको लेकर जान पड़ेगा। उस छत्राकार [illegible] कमल सिद्धशिला रूप अजरामर चक्र शिखर अग्रभागमें [illegible] अग्रभागपर है। इस अजरामर चक्रमें उसके विलीन होनेपर साधकको अत्यन्त आनन्दका अनुभव वास्तविक रूप होता है। वह आनन्द बढ़ता भी इतना और है कि साधक योगी उसमें एकदम लीन हो जाता है और अलौकिक आनन्दका अनुभव अपने उस समस्त शरीरमें प्राप्त करता है अर्थात् स्वयं जो आनन्दरूप है उस अलौकिक आनन्द स्वरूपको स्वयं स्वतः ही अनुभव करने

"पापानुबंधी पुण्यवान्" समझा जाता है। इसीलिये कि इस समय पूर्वपुण्यके कारण सुखी है और वर्तमान् पापके कारण भविष्यमें दुःखी होगा।

कितनेक मनुष्य धर्मी होते हैं, अच्छे कार्य करते हैं, पुण्य भी करते हैं, तथापि दुःखित क्यों है?

इसका कारण यह है कि पहले उन जीवोंने पाप किये थे, अतः वर्तमानमें दुःख भोगते हैं, इतनेपर भी शुभ कार्य करते हुए इस समय पुण्य बांध रहे हैं। अतः वे आगे सुखी होंगे। ऐसे मनुष्योंको शास्त्रमें 'पुण्यानुबंधी पापी' कहा है। इसीलिये कि भूतकालके पापके कारण दुःख भोग रहे हैं, परन्तु वे वर्तमानके पुण्य कार्यके द्वारा भविष्यमें सुख भोगेंगे।

तब क्या वर्तमान कालमें कोई मनुष्य दुःखको भोगता हो और उसे भविष्यमें भी दुःख भोगना पड़े क्या ऐसा भी कोई नियम है?

हां हां क्यों नहीं, बहुतसे मनुष्य पूर्वके पापके कारण इस समय दुःखोंको भोगते हैं इतनेपर भी इस समय अन्य जीवोंको दुःख देते हैं तो वे अगले जन्मोंमें भी दुःखी ही होंगे।

ऐसे मनुष्योंकी शास्त्रमें क्या संज्ञा बताई है?

वे 'पापानुबंधी पापी' अर्थात् पूर्वजन्ममें पाप किया था उसका फल भी भोग रहे हैं, और इस समय पाप करते हैं अगाड़ी उसका दुःखरूप फल भी भोगेंगे।

तब क्या यह भी हो सकता है कि इस समय सुखी हो और आगे भी सुखी ही रहे?

हां यह भी हो सकता है, भूतकालमें जीवने अन्य प्राणियोंको सुख देकर पुण्य बांधा है वे अब सुखी हैं, और अब पुण्य बांधकर भविष्यमें भी [illegible]

[illegible] है?

[illegible] "पुण्यानुबंधी पुण्यवान" [illegible] पुण्य [illegible] आगे भी सुख [illegible]

[illegible] अनुबंध [illegible] अनुबंध होनेसे

आगामी कर्मोका उपभोग करेगा। अशुभ अनुबंध हो तो आगामी दुःख भोगना पड़ेगा।

(१) 'पापानुबंधी पाप' इस समय दुःख और पीछे भी दुःख।
(२) 'पापानुबंधी पुण्य' इस समय सुख और पीछे दुःख।
(३) 'पुण्यानुबंधी पाप' इस समय दुःख और फिर सुख।
(४) 'पुण्यानुबंधी पुण्य' इस समय सुख और फिर भी सुख।

इस प्रकारके कर्मोंसे या तो दुःख मिलता है या सुख मिलता है, परन्तु मोक्षके अव्याबाध सुख जो कि कभी समाप्त नहीं होवे, ऐसा आत्मिक सुख पानेके अर्थ सांसारिक कर्मोंका भोग छोड़ना चाहिये। अर्थात् पाप पुण्यका क्षय करके आत्मस्वरूपमें रहना सीखिये, और किसी भी प्रकारका अनुबंध न बांधना चाहिये। यदि अनुबंध डालना हो तो पुण्यका ही बांधना चाहिये। पापका अनुबंध तो बिलकुल ही न डालना चाहिये क्योंकि पुण्यके अनुबंधसे [illegible] ऐसा बल प्राप्त करता है कि जिससे कर्मोंका क्षय भी कर सकता है।

॥ अथाऽऽलोचनापुष्पाञ्जली योगस्य पुष्टये ॥

वीतरागोऽसि निःशल्यो गुरुवरोऽसि त्वम्। गुणाब्धिरोऽसि देवेश! [illegible]ता मन्यादने रतः ॥ १ ॥ त्वं वै [illegible], नरा यान्ति भवाम्बुधेः। [illegible] सुरेन्द्र धीवीर! नान्योपायोऽस्ति भूतले ॥ २ ॥ सुखाऽऽनन्दस्य केलिस्त्वं, [illegible]तत्वद्दं जिन! सुरासुरनरैस्त्वं हि, सेव्योऽस्यचलितगजैः ॥ ३ ॥ त्वदीये [illegible]मन्नोऽहं, नतिमें स्यादथातः। सर्वज्ञोऽसि सर्वदर्शी, त्वं संसार-[illegible] ॥ ४ ॥ महोदधि [illegible] [illegible]स्तंदुःखभञ्जकः ॥ ५ ॥ वेद्यो लोकत्रयस्यैव, [illegible] आधारस्त्वाऽनव-[illegible] जिनवरोऽसि त्वं, कृपाकर! दयानिधे! [illegible] ॥ ६ ॥ [illegible] प्रभो! [illegible] आतनवंश! [illegible] ॥ ७ ॥ [illegible] ॥ १० ॥ [illegible] ॥ ११ ॥ [illegible]

श्रुत्वापि नो भयम् । संसारतारकं श्रुत्वा, ज्ञातं नो कारणं मया ॥ ३५ ॥ स्वाङ्गस्य मयि नो मालो, आतेश्च सुमनोरमः । गुणौघश्च मयि स्वामिन्! विमला नो रतेः कस्य ॥ ३६ ॥ प्रभुत्वं न च मे जातं, स्वप्नेऽपि दृश्यतां प्रभो! तथापि गर्वसंवेशात्करिष्येऽहं कथं हितम् ॥ ३७ ॥ प्रतिक्षणनायुर्हसते, मनस्तापो न चालसो । दुःखदा च जराऽवस्था, सम्पन्ना विपयादरात् ॥ ३८ ॥ निवर्तते न चाद्यापि, तस्मात्त्वच्छरणागतः । भेपजेच्छा मदीयाऽस्ति, धर्मवृत्तौ न मे मतिः ॥ ३९ ॥ मोहरूपमहाविष्टो, न दिष्टः कोऽपि चाधुना । चैतन्येन समाविष्टो, लभते पदमव्ययम् ॥ ४० ॥ इत्यायमन्दमानोऽहं, गुरो! रक्षां मयि कुरु । सम्मुखे त्वं मदीये हि, स्थितो दैन्यविमोचकः ॥ ४१ ॥ तथापि दीनवाक्यानि, शृणोमि तव सन्निधौ । धिक्कारं मे दयागार! मुधा मे जननं भवे ॥ ४२ ॥ जिनसेवा कृता नैव, सविधिगृहसेवनम् । तथा धर्मं कृतं धर्मपालनं न कदाचित्कृतम् ॥ ४३ ॥ दत्तं नो दानमत्युग्रं, न चित्ते स्मरणं तव । केवलं त्वयि संलग्नो, दयायोग्यं निधानद ॥ ४४ ॥ नृदेहं दुर्लभं प्राप्य, तन्नाशश्च मया कृतः । यथैषकारी नरोऽरण्ये, रोरवीति मुधा तथा ॥ ४५ ॥ प्रत्यक्षफलदातृत्वादम्लं जैनं शुभं मतम् । तत्र जाता च नो प्रीतिर्निर्धीया दुःखनाशिनी ॥ ४६ ॥ महानौकल्पं च मे पश्य, यतो जातं भयं मुहुः । कल्पवृक्षं तथा कामदुघा प्राप्य हृतं मया ॥ ४७ ॥ सहसा दुःखसमूहं च, सहमानेन नाशितम् । दुर्लभं जन्म प्राप्याशु, न मया साधितं तपः ॥ ४८ ॥ रोगदुःखे निरुद्धे नो, हर्षे च सुखभोगकः । इति मे स्वरवापं च, क्षमस्व कृपया गुरो! ॥ ४९ ॥ अधमन्युभवासक्तिनाशार्थं न कृतं कश्चित् । कान्ताजनसमासक्तो, धनादेः सङ्ग्रहः कृतः ॥ ५० ॥ कारागृहसमा नारी, नरकागारस्थलमहा । तन्नाशकमनाथाहं, न जिनं ध्यातवान् पुनः ॥ ५१ ॥ नो साधितं च साधुत्वं, सत्कृतिर्नो धृता मया । अतुल्य नार्जिता कीर्तिर्न परेषु दया कृता ॥ ५२ ॥ परदुःखं प्रहातिच्छत, तथा दीनजने दया । स्वप्नेऽपि नोरकाय कृतं न गुरुसेवनम् ॥ ५३ ॥ रसकल्पं [illegible] सदा । नष्टं जातं मुधा विद्वन्! [illegible] गुरो! ॥ ५४ ॥ वैराग्ये च समायाते, [illegible] न जायते । [illegible] दुर्जनस्य, [illegible] ॥ ५५ ॥ [illegible] च [illegible] च, [illegible] । [illegible] न [illegible] । [illegible] ॥ [illegible] ॥ [illegible] करोमि, [illegible] ॥

कष्टं न स्यात्कथं न हि । चोत्तमो यो भवारण्ये, नष्टः सोऽपि प्रजायते ॥५८॥ चरित्रं चानेकविधं, कथं ज्ञेयं मयाऽनघ । मदीयमधमयं वृत्तं, न गुप्तं ते महाप्रभो ! ॥ ५९ ॥ जगत्त्रयस्वरूपस्त्वं, प्रजानासि प्रभो ! ध्रुवम् । मार्गदर्शयिता त्वं हि, मनोऽभिप्रायवित्तया ॥ ६० ॥ त्वत्समो नास्ति हे नाथ ! परो दुःखप्रणाशकः । दुरवस्थामहं प्राप्य, नो याचेऽन्यत्क्रमादपि ॥ ६१ ॥ अर्हन्बोधात्मकं ज्ञानं, याचे त्वत्तो भवाप्यहम् । त्रिवदो जगतामीश ! प्रार्थनैका प्रणाघय ॥ ६२ ॥ गर्वदुःखान्तरायं च, हर ! ज्ञानं प्रदीयताम् । कस्मिंश्चिद्दिवसे चित्ते, समुत्पन्नं ध्रुवगुरौ ॥ ६३ ॥ कलकत्ताऽभिधे रम्ये, मतिर्मे सुलभा भवेत् । यतो जगज्जलाम्भोधे, पारं यास्यामि यत्नतः ॥ ६४ ॥ समितो सज्जनानां च, चित्तवृत्त प्रमोदत । प्रकट करोमि सर्वज्ञ ! येनाप्यालोचना भवेत् ॥ ६५ ॥ यथा चित्तप्रसादः स्यात्तथा कुरु महाभवे ! शब्दज्ञानं न मे चास्ति, तथा पिङ्गलछन्दगाम् ॥ ६६ ॥ हंसकल्पो नरो यश्च, स पठेद्धितकाम्यया । येऽहंऽहंकृत्यगाढ्ये, बम्बरे निर्मिता त्वियम् ॥ ६७ ॥ वीरस्तुतेरप्यायस्य, टीका च गुणभिद्गुणा । रचिता चेयममला, वीरगच्छस्य तुष्टये ॥ ६८ ॥ गुरुर्मदीपोऽस्ति फकीरचन्द्रो, ज्ञानं मया लब्धमिदं यतश्च । योग्यं च लब्ध्या शुश्रियां करोमि, ततोऽ*मरत्वं च भवेत्स्फुटं मे ॥ ६९ ॥

इति श्रीमज्ज्ञातपुत्रमहावीरजैनसङ्घीयमुनिश्रीफकीरचन्द्रजिच्छिष्यपुप्फभिक्षुविरचिताऽपूर्वशान्तिदाऽऽलोचना पुष्पाञ्जली समाप्ता ।

भगवान महावीरकी वैराग्य भावना

[illegible]

वेरागको अरागतमें लाया नहीं जाता, कुन् फ़रफ़ुनीसी उसे पाया नहीं जाता। इन्सान मगर रूहकी इल्मोंसे गया है, हर शैको फ़कत इल्मने मालूम किया है ॥ ३४ ॥ होशो गिरदो इल्म फ़कत रूह की है ज़ात, कुन् रूह सिवा और को हासिल नहीं ये बात। छिपती हैं अज़लसे जो उसे चंदकी आफ़ात, इनके ही सबब बहती हुई फिरती हैं दिन रात। फिर भी सिफ़्ते ज़ात फ़नी जा नहीं सकती, वे होशको होश और गिरद आ नहीं सकती ॥ ३५ ॥ सब जड़ हैं मगर आत्मा है ज्ञानका भंडार, जो ज्ञान है और इल्म है चेतनका चमत्कार। खुद इल्म भीमालून व वादोंसे ख़बरदार, इस ज़ातमें मुमकिन ही नहीं दारको अग्यार। पुद्गलने मगर ज्ञानको आवरण किया है, खुद भूलसे अपनी ये गिरफ़्तारे बला है ॥ ३६ ॥ इक बार अगर भूल कोई इसकी मिटादे, शह आइनेमें इसको कोई उसको दिखादे। खुद ज़ातका इसकी इसे दीदार करादे, यह बंद अमल काटके फिर दममें उड़ादे। ज़ाहिदनो मुरदनकी बला इक आनमें टलजाए, आज़ाद हो जू इल्मकी बंदिशसे निकल जाए ॥ ३७ ॥ दुनिया है अजब चमन फ़रेब आइना ख़ाना, नौ यार यहां मिलके छुटा ऐसो ज़माना। यार ऐसे वफ़ादार के बेमिस्लो यगाना, यह हुस्नके जिस हुस्नका मुश्ताक़ ज़माना। मिल जायँ यह आसान है दुश्वार नहीं है, मुश्किल तो फ़कत ज़ातका अपनी ही मर्ज़ी है ॥ ३८ ॥ **रूहानियत या सिफ़्ते ज़ाति [धर्म]** कहते हैं जिसे धर्म वह कुछ और नहीं है, बस ज़ातका अपनी ही फ़कत इल्मोनज़्मी है। त्रैरंग है इसमें न चुना और चुनी है, सच ऐसा के रोशन सिफ़्ते नेहरेनर्मी है। भटकी है जो अपनेसे वही रुह है नाशाद, और ख़ुदसे पकड़ाइसे है ग़ैरकी बरबाद ॥ ३९ ॥ **परिणाम**—यह राज़की सूरत थी जो पाबन्द हुआ थी, अब उठ गया पर्दा तो वही जल्वानुमा थी। गो इल्म शरीरोंकी अभी जू न छिपा थी, लेकिन वरके दहरकी तफ़सीर तो वा थी। देखा तो इस ओरत पे यह साफ़ लिखा है, भूला है जो अपनेको वह कर्मोंसे बंधा है ॥ ४० ॥ **भगवान् विचार**—भगवान् महावीर थे हर अमल महावीर मति-श्रुति-अवधिज्ञानको थी म्हने मनवीर। पढ़के हो यह मर्मसे वरके दहरको तहरीर, है भूल खुद अपनी सबब जिस्नो तहदार। [illegible] के अब इस मोहको निर्मूल करूं [illegible] फिर [illegible] न हूं जिसमें वह चारित्र धरूं ॥ ४१ ॥ हूं [illegible] [illegible] बेहोश का पाबन्द न हूंगा। आज़ाद है [illegible] बनूंगा

[सिद्धपरमेष्ठी] ॐ सहचरमसमीचीनचार्वीत्रयविचारगोचरोचित-हिताहितप्रविभागस्य, अत एव परनिरपेक्षतया स्वयंभुवः सलिलान्मु-क्ताफलमिव उपलादिव च कीचनमदेवात्मनः कारणविशेषोपसर्ग-वशादाविर्भूतमखिलमलविलयलब्धात्मस्वभावमसमसहायकममवगीरित-न्यसनिधित्र्यनयानमनवधिमयत्नसाध्यमवसिनातिशयमीमानमात्मस्वरूपै-कनिबन्धनमन्तःप्रकाशमभ्यासितमन्तमनन्तदर्शनवैशद्यविशेषमाक्षान्त-तसकलवस्तुसर्वस्वमनवसानसुखरसोनममपर्यन्तवीर्यमचाक्षुषसूक्ष्मानमास-मसदृशाभिनिवेशावगाहमलघुव्यपदेशमपगतबाधापराकारसक्रममतिवि-शुद्धस्वभावतया, निवृत्ताशेषशारीरद्वारतया च, मनाक्स्पृष्टपूर्वावस्थान्त-रमरूपरसगन्धशब्दस्पर्शमशेषमुपमाशिर शेखरायमाणपदविश्रमसुख-शान्तसकलसंसारदोषप्रसरं, परमात्मानमुपेयुषो गुरुणापि प्रतिपन्नगुरु-भावस्य रत्नत्रयपुरःसरस्य भगवतः सिद्धपरमेष्ठिनो भूयो भूयः स्मृतिं करोमीति स्वाहा, अपि च—

प्रत्नकर्म्मविनिर्मुक्तान्नूत्नकर्म्मविवर्जितान् ।
यत्नतः संस्तुवे सिद्धान्, रत्नत्रयमहीयसः ॥ २ ॥

[आचार्यपरमेष्ठी] ॐ पूज्यतमस्य उदितोदितकुलशीलगुरु-परम्परोपात्तसमस्तैतिह्यरहस्यसारस्य, अध्ययनाध्यायविनियोगविनयनि-यमोपनयनादिक्रियाकाण्डनिष्णातचित्तस्य चातुर्वर्ण्यसंघप्रवर्धनाधुरंधरस्य, द्विविधात्मधर्मावबोधनविधूतैहिकान्यपेक्षासम्बन्धस्य, सकलवर्णाश्रमसम-यसमाचारविचारोचितवचनप्रपञ्चमरीचिविदलितनिखिलजनतारविन्द-नीमिथ्यात्वमोहान्धकारपटलस्य ज्ञानतपःप्रभावप्रकाशितजिनशासनस्य शिष्यसम्पदारोपमिव भुवनमुद्धर्तुमुद्यतस्य भगवतो रत्नत्रयस्य पुरःसर-स्याचार्यपरमेष्ठिनो भूयो भूयः स्मृतिं करोमीति स्वाहा । अपि च—

बोधापगाप्रवाहेण, विध्यातानङ्गवह्नयः ।
विध्याराध्यांघ्रयः सन्तु, साध्यबोधाय साधवः ॥ १ ॥

[सम्यग्दर्शनम्] ॐ जिनजिनागमजिनधर्मजिनोक्तजीवादितत्त्वावधारणद्वयविजृम्भितनिरतिशयाभिनिवेशाधिष्ठानासु, प्रकाशितशंकाकाङ्क्षाविचिकित्सादिशल्योद्धारासु, प्रशमसंवेगानुकम्पाऽऽस्तिक्यसंभसमृतासु, स्थितिकरणोपगूहनवात्सल्यप्रभावनोपचरितोत्सवसपर्यासु, अनेकत्रिदशविशेषनिर्मापितभूमिकासु, सुकृतचेतःप्रासादपरम्परासु कृतक्रीडाविहारमपि च, यन्निसर्गान्महामुनिमनःपयोधिपरिचितमदोषमरतैरावतविदेहवर्षधरचक्रवर्तिचूडामणिकुलदैवतं, अमरेश्वरमतिदेवतावतंसकल्पवल्लीपल्लवं, अम्बरचरलोकहृदयैकमण्डनं, अपवर्गपुरप्रवेशागण्यपण्यात्मसात्करणसत्यंकारं, अनुल्लङ्घ्यदुर्धनघटादुर्दिनेष्वपि जन्तुषु, ज्योतिर्लोकादिगतिगर्तपातनमकाण्डभेदनमासनन्ति मनीषिणस्तस्य संसारपादपोच्छेदप्रथमकारणस्य सकलमंगलनिधायिनः पञ्चपरमेष्ठिपुरःसरस्य भगवतः सम्यग्दर्शनरत्नस्य पुनः पुनः शुद्धिं करोमीति स्वाहा । अपि च—

मुक्तिलक्ष्मीलतामूलं, युक्तिश्रीवल्लरीवनम् ।
भक्तितोऽर्हामि सम्यक्त्वं, मुक्तिचिन्तामणिप्रदम् ॥१॥

[सम्यग्ज्ञानरत्नम्] ॐ यन्निखिलभुवनतार्तीयलोचनं, आत्महितहितविवेकयाथात्म्यावबोधसमासादितसमीचीनभाव, अधिगमसम्यक्त्वतोऽर्थितत्स्थान, अभिराम्यपि दशासु श्रेयजन्मभावमाभाग्यराम-[illegible], अपि च धर्मस्थितिशर्मणामपि नदीमत्तचेतोभि सम्यगुपाहितोपयोगसमार्जने यमाग्निर्निर्दग्ध इव साक्षाद्भवन्ति ते ते भोक्तृसम्य-[illegible] [illegible] भारतमन्यः मलाभनिवन्धमय-

दत्वा नश्च महाव्रतादिनियमानादिष्टवाक्यालया । संसारे जिनदेववर्ग-
वराणि प्रादादयो संयमान्, तं साधुं सुखसागरं प्रतिपदं ध्यायन्त्वतिप्रे-
मतः ॥ ९ ॥ अहिंसा तथा सत्यमस्तेयमाहुर्महद्ब्रह्मचर्यं मुनिर्वाणहे-
तुम् । यतस्तत्त्वबोधस्समुत्पद्यते च, ह्यतो रक्षणीयाश्च ते भिक्षु-
वर्यैः ॥ १० ॥ यस्यानोपात्मशक्ति प्रबलगुणगणैर्नो प्रवक्तुं समर्थो,
नालाकं [साधुबोधप्रदनु च कथने तत्स्वरूपस्य तत्त्वम् । तस्य
ज्योतिःप्रवाहं प्रबलगुणकरं वक्तुमीशाः कथंचित्तो वा धाता-
स्यग्रजौ मतिरपि सुतरां नेदृशी तादृशी च ॥ ११ ॥ आन-
न्दप्रतिपालनाय सुधिया जातावतारा वयं, कामक्रोधविमोहलोभमदन-
दानानावरोधाशयाः । चेतः संघपदारविन्दयुगले जित्वेन्द्रियमा-
नङ्गं, संसारामृतभोगरोगशमने विधानये धार्यतान् ॥ १२ ॥
कामक्रोधविमर्दनेन च पुनर्लोभः समुत्पद्यते, तस्मान्मोहसमुद्भवः स्मृति-
हरो विज्ञाननाशस्ततः । पश्चाद्धर्मविपर्ययोऽमृतमयी भोगैषणा
जायते, इत्थं तु स्वमये विचित्रविषये जीवोऽनिशं दह्यते ॥ १३ ॥
अतो विन्द्रियनिग्रहे च विषया नश्यन्त्यनायासेन । कार्ये चान्तरिमहादि-
[illegible] पश्चात् [illegible] धर्मे प्रवृत्तिः
[illegible]

दीक्षामात्रविधानकेन नियता मग्नं प्रदत्वा मुदा । किञ्चिद्भा-
षणयुक्तिशक्तिसहिता भाषात्मिका दीयते, दशवैकालिकनन्दिसूत्रवि-
षय उत्तीर्णता चेद्भवेत् ॥ ६९ ॥ नो वैराग्यरतो विचारकर-
णेऽदक्षो न विद्यान्वितः, क्षिप्रं श्राद्धजनाय मोहकरणेऽविद्यावशः
सत्कथाम् । नो वा जैनमतानुसारचलनो भक्त्या विरक्त्या युतः, (नैवं
शिष्यगणोऽतिदीक्षणपरो नो भावशुद्धौ रतिः) अन्येभ्यो हठवञ्चनाय
नितरां शिष्योऽप्यनिष्टः स्मृतः ॥ ७० ॥ न्यायप्राकृतजन्यकाव्यविषयं
सच्छाब्दिकं वा पुनर्दद्याज्ज्ञानमनन्तरं सुमुनये शिष्याय दीक्षामपि ।
येन स्यात्समितौ सुयोग्यगणना लब्धप्रतिष्ठो भवेन्नो चेत्कर्म्मविगर्हितं
च भवतां निन्दास्यो जायते ॥ ७१ ॥ दृष्ट्वेमां घटनां बुधो हृदि
महत्कष्टं मनःक्षोददं, हास्यं वा विदधाति रोदनमथो वाह्यार्थनेयो
जनः । हीनं योग्यतया जनो न मनुते सत्कारमातन्यते, जन्मान्धस्य
दिवाकरः प्रकथनं नामात्यनर्थप्रदम् ॥ ७२ ॥ ज्ञानं नैव विभाति यस्य
हृदयेऽज्ञानान्धकारापहं, नो शिक्षा विशदा सतां न सुकरो भूत्वाऽ-
न्यथा वञ्चनम् । लोकान् वञ्चयितुं करोति विविधां धृत्वा मुखे
वस्त्रिकां, जैनानां मतदूषणं प्रकुरुते न स्थापनीयो जनः ॥ ७३ ॥
साङ्गोपाङ्गतया च सूत्रविषयं स्याद्वादज्ञाने तथा, छन्दःशास्त्रमतान्वि-
तेऽन्यविषये ज्ञानं प्रदायाथवा । साधुभ्यश्च परीक्षणं सुनियतं सत्कार-
मित्थं पुनः, पश्चाद्वीरपदानुसारचलनो दीक्षा प्रदेयाऽन्यथा ॥ ७४ ॥
न्यायस्याचर्यातिभासवन्धरचना शिक्षाप्रणाली ततो, धर्मस्यापदरे च
[illegible] सद्भावना जायते । ज्ञानं न्यायकरं समस्तजननाकल्याण-
कृद्भाव्यते, एवं [illegible] मुनिर्धर्मप्रवर्तेदय ॥ ७५ ॥ अर्ह-
द्वीरनिमित्तधर्म्मसरणीमाश्रित्य देशान्तरं, भ्रान्त्वा त्रिधाहितय धर्म्मेन-

दुःखाद्रोगमयाद्भवन्तु मुनयश्चैतन्यमावाः पुरः, सर्वेऽन्योन्यगताश्च स्त्रीय सुकृतावेकं गुरुं कुर्वताम् । स्वादरं सकलागमैश्च हितकृत् सम्मान्यतां प्रेमतो, निश्चिन्तां मनसा सुजैनमुनयो हीमां व्यवस्थां गताः ॥११३॥ यो दीक्षास्थविरोऽथवा श्रुतधरो यः सच्चरित्रे रतो, यो वा योगकरो समाधिनिरतस्तं सेवयन्त्वादरात् । भक्तिं तत्र वहन्तु जैनमुनयः प्रेम्णा तथाऽन्यैर्जनैः, प्रेमोत्पन्नमयैः सुधारसमयो कुर्वन्तु सद्भावनाम् ॥११४॥

॥ इति ममाक्रन्दनकाव्यस्य पूर्वार्द्धं समाप्तम् ॥

ममाक्रन्दनकाव्यस्योत्तरार्द्धम् ।

नत्वा *जिनेन्द्रमवलम्ब्य च तत्पदाब्जं, संसारतापत्रयतापहरं वरेण्यम् । श्राद्धोदयाय मुनिधर्मविवर्द्धनाय, भक्त्या करोमि सरलं च निबन्धमेनम् ॥ १ ॥ अये ! साधो ! देवाद्भुतनरशरीरश्च सुभगं, महावीरं सेव्याम्बुजचरणमाधिप्रशमनम् । भवाम्भोधौ पोतं विषयमृगतृष्णापहरणं, भजन्ते नो कन्मादरिदलसुकक्षानलसमम् ॥ २ ॥ भिक्षार्थिनो मुनिवराः समयेऽद्य शश्वद्धर्मोपदेशकरणे न च वृत्तपत्रैः । तन्वन्ति लेखकरणाज्जिनपुस्तकानां, श्रीवर्धमानकरुणाकरशुभ्रकीर्तिम् ॥ ३ ॥ समाजसंघं परिपक्वतां दशां, नयन्ति तेषामुपकारवृत्तयः । सुमाननीया शुभकृत्यशक्यमन्थैव चानुकृतिरच कार्या ॥ ४ ॥ तत्तद्धर्मप्रचारे, सहायता चापि सुदैव देया । तन्मप्रचारे निरैन्नपरिस्थिभिर्दैयोऽभिमानादिपरिग्रहश्च ॥ ५ ॥ तत्सधर्ममेवामनिश विद्युर्धीमन्त्वमादाय वदेयुरेवम् । मानापमाने न च नापकर्षौ, कुर्वन्तु जैनाश्रमवर्गमिनश्च ॥ ६ ॥ नैनक्षेयुरन्यत्र पद प्रगल्भ, नो मानपत्रेऽ-

* [illegible] इत्युपादेः ।

लने च, सुजाते सुरम्ये कुतस्त्वत्र वासः ॥ १८ ॥ सदा सर्वतानघ ते न प्रवेशो, वय यच्चिता ज्ञानिनोऽज्ञातसंगाः। सुखं पश्यतेऽत्रे च संमेलनं नो, भविष्यत्यनायासतस्त्वाजमेरे ॥ १९ ॥ न याचेप्रतिरिक्तं समाजान्मुनीनां, मनो मे प्रसक्तं समाजप्रसङ्गे। अतो धारणीयं मन-स्तस्य सिद्धौ, यतो नो भवेद्धर्मलाभो मुनीशाः ॥ २० ॥ वयं चाद्य (सं) भोगान्मुदोद्घाटयिष्यामहे द्वादशाख्यान् सदा प्रेमभावात्। अरण्ये निवासाय यत्नं विधाय, तनावेकवस्त्रं मुहुर्धारणीयम् ॥ २१ ॥ मृदा निर्मितं पात्रमेकं सदैव, ध्रुवं धारणीयं गृहस्थैः समं नो। कदाचिद्वि-धेयाऽशुभा सङ्गतिश्च, दलं प्रेषणं वर्जनीयं तथैव ॥ २२ ॥ सुखावा-सितैतोऽथ कर्तव्यमेवं, मिताहारमेकत्र काले वरीयः। मिलित्वा च सांवत्सरं पर्वचैकं, वयं चाखिलाः साधवो यत्नतश्च ॥ २३ ॥ सदाऽऽ-चार्यवर्योऽखिलानां मुनीनां, बुधैको भवेच्छिष्यशिक्षाप्रदायी। त्यजे-मुर्विचारे च यं भेदवादं, करिष्यामहे ज्ञानविज्ञानवादम् ॥ २४ ॥ अहो ज्ञानरूपेऽत्र गङ्गाप्रवाहे, सदुत्साहशक्तिं च कुर्मोऽतिहर्षात्। समाजेऽत्र सर्वे मिलित्वा त्वदीयं, बहिष्कारमेव करिष्यामहे च ॥ २५ ॥ यदा ते भवेन्मूलभमोऽद्य निन्दे! कथं त्वं समाजे च तिष्ठेर्वदेनः। यदा ते च्युतिस्त्वाधिकाराद्भवेच्चेत्, तदा ते क यानं भवेद्ब्रूहि क्षिप्रम् ॥ २६ ॥ सुसम्मेलनस्य प्रसगे बलेन, बहिष्कारभावो न जातः कदाचित्। स्मर! त्व मुख नावलोके त्वदीयं, स्वकीयं तथा नैव सन्द-र्शयामि ॥ २७ ॥ तथा नैव केनापि साकं वदामि, तदा मौनमाधाय तिष्ठामि शश्वद्। गत वैमनस्यं शरीराच्च मेऽद्य, त्वयि निन्दनीये गते जैनमघात् ॥ २८ ॥ यदा द्रोहबुद्धिस्तदा ते निवासोऽन्यथा त्व प्रया हीति सघान्मुनीनाम्। जगद्वञ्चितु नो वितिष्ठस्व निन्दे! निव-

ममायं मद्यांशं किमपि न हि चात्तुं प्रभवतु ॥ विचार्येत्थं सन्धैर्विफलमनसा दूरयति च । मुनीनां संघेऽयं भवति कलहो द्वेषमनसां ॥ ३९ ॥ प्रसन्नोऽयं दृष्ट्वा नहि भवति कश्चिन्मुनिरसावथाऽन्योन्यं द्वेषं विषममतिनोत्पाद्य कुरुते ॥ पराव्येयं नीतिर्न हि न हि न जाने कथमगात् । इतः श्रेष्ठश्छागः कपिरपि कपोताश्च सुधियः ॥ ४० ॥ मिलित्वैमेऽन्योन्यं समयमनसा रक्षणमहो । सदा कुर्वन्त्यन्ये विषयसुखभोगेऽपि नितराम् ॥ सहाया जायन्ते इति मनसि निश्चित्य भवतो, (परं द्वेषा युक्ताः मुखदगुणवन्तो मुनिजनाः) विलुम्पन्त्या शक्त्या विषयगुणभोगैकनिपुणाः ॥४१॥ [अथ शान्तिकराष्टकम्]

न वा साधुवृत्तिर्न वा कोपशान्तिर्न वा सयमादौ प्रवृत्तिर्मुनीनाम् । न हि ज्ञानसिद्धिर्न विज्ञानवृद्धि', कथं जैनसंघे निवृत्तिर्जनानाम् ॥ ४२ ॥ गता संघभक्तिर्गतश्चित्तरोधो, गत चात्मनत्त्व गत शुक्लध्यानम् । इदानीतनाना मुनीना प्रवृत्ति , सुखे शायके चासने शिष्यवर्गे ॥ ४३ ॥ गताऽध्यात्मविद्या गताऽनन्दवृत्तिर्गता भावभक्तिर्गता सघचिंता । गता भिक्षुसेवा गता धर्मवृद्धिर्गता शान्तचर्या निवृत्ति शुभा न ॥४४॥ गत ज्ञानगम्य पर धैर्यरूप, गतो नम्रतोऽतो भवेद्धर्महानि । कथं स्याद्भवाम्भोधिपार मुनीशा, विना सत्क्रिया चिन्तय'च मनन्त' ॥४५॥ सदा शिष्यलोभाश्रये न प्रवृत्तिर्न वा चिन्तन कोविदाना च सङ्घे । अनेकान्तसिद्धान्ततत्त्वा ययहीना, मनोरोधने नो गतिर्वा कथ स्यात् ॥४६॥ गता जैनसघाद्द्या साधुभावाद्गतो न्यायसिद्धान्तजन्यो विचार' । सुसम्यक्त्वमानन्दकल्लोल्य नो, पुन नैव चित्ते कदाचिन्मुनीन्द्रैः ॥ ४७ ॥ अस्वाध्यायतोऽज्ञानवृद्धिप्रसङ्गादृत ज्ञेयरूप सुसम्यक्त्वतत्त्वम । सदा चिन्त्यते केन मत्य भवेन्नैमथा सेवनीय सदा संघ-

मोहस्य कथमखिललोकानुसरणे, विचार्य्यैवं सन्तः कुरुत मुनयो मोह-शमनम् ॥ ५८ ॥ कुरीतीनां नाशो भवति हि च रूढेरपि तथा, सहावासः पश्चादनुभवजविज्ञानमभवत् । तदा प्रेम्णाऽऽमोदैः सह दमनमादेः शुकरणं, जनाधारे जैने निवसति सदा चित्तमचलम् ॥५९॥ स साम्योत्कर्षे वा भवति सहवासस्य जनकं, परं च ज्ञानस्योत्कटकमपि तस्यास्ति फलदम् । यदाऽभ्यासासक्तं मुनिमपि वदन्त्याहितजनाः, समं केन स्पर्द्धा निगमसकलाऽध्यात्मविदुषा ॥ ६० ॥ सुविचार-द्व्यर्थं यदि मनसि चिन्ताऽप्युदयते । तदा स्पर्द्धावृद्धिर्निखिलमुनिसंघे विलसति । तदा विद्यालाभो भवति मुनिवृन्दैरधिगता । भवे विख्यातिः स्यान्निजनिजमताचारवशतः ॥ ६१ ॥ विना स्पर्द्धां नापि प्रसरति समुत्साहविषयः । सहावासे चैवं न लगति मनश्चंचलतया । विनान्तः स्वाध्याये न वसति धियो वृत्तिरचला । ततो विद्यालाभो भवति विदुषां-मोदसहितः ॥ ६२ ॥ सहाध्यायिनं वा सहावासिनं वा, विनाधीत-विद्याविनोदप्रचार. । सहाचारिणं चान्तरा नो विचारी, ततो नो भवे-च्छास्त्रतत्त्वावबोधः ॥ ६३ ॥ तथा नावलोको भवेच्छास्त्रचर्या, विना तत्कृते नैव पुष्टिं प्रयाति । न काठिन्यक स्थायिभावं तथैव, चिरं चित्तभित्तौ मुहुश्चिन्तयध्वम् ॥ ६४ ॥ तथाऽध्ययनतोऽध्यापनाद्वा विचा-रात्समुत्पद्यतेऽपूर्वशक्तिप्रवाह. । यदैकत्रवासो मिलित्वाऽखिलाना, तदा यत्र येषा प्रवेशोऽधिकोऽस्ति ॥ ६५ ॥ प्रवीणोऽथवा वै विशेषाधि-कारी, सहाचारिणे वा सहाध्यायिने च । सहावासिने वा प्रवीण करोति, भवेत्तस्य सौख्य नितान्त मुनीनाम् ॥ ६६ ॥ स्वकीयेन तुल्यं च योग्य विधाय, समाजे समुत्तजना वै करोति । अतो भेदभाव परित्यज्य शक्ति, स्वकीया तथा योग्यता सन्तनोतु ॥ ६७ ॥

स्यात् ॥ ७७ ॥ भवेत्काचिदियं जने योग्यता च, तथा शक्तिमा-
श्रीऽस्ति यस्मिन् विशेषः। भवेयस्तदान्ये नरे भक्तितश्च, सुविज्ञान-
वृद्धिस्तथा शक्तिवृद्धिः ॥ ७८ ॥ सशक्तेस्तथा योग्यतायां च विद्यो-
पयोगस्य वृद्धौ च संयुक्तवीर्ये। ध्रुवं योजनीयं ध्रुवं योजनीयं, स्वचि-
त्तस्य शंकां निराहृत्य लोके ॥ ७९ ॥ [अथ परोपकृतिः] शिक्षा-
प्रेमधराः पवित्रहृदया भिक्षार्थिनो ध्यानतो, ज्ञायन्तां प्रतिजीवकार्य-
समये लक्ष्यात्मबिन्दुं मुहुः। मत्वानन्तपरोपकारकरणे शूरा भवन्त्वा-
हिता, लक्ष्यं नैव कदापि विस्मृतिपथं कर्तव्यमेवं विदुः ॥ ८० ॥
धर्मे नोन्नतिकार्यगौरववशाद्यान्यत्ररोधे करः, येन स्यादुपकारकेऽनु-
दिवसं लोकोपकारी भवेत्। न स्थानं च कचित्प्रदेयमधुना भेदस्य
भावस्य च, सामाजे वितरन्तु कार्यपरतां ध्यात्वा हृदा भिक्षुकाः ॥८१
साहाय्यं च भवेज्जनान्तरमुदेऽन्योन्यं विचारेण च, शक्तौ स्याद्दृढता-
बलं विवरणादेकं विचारस्य वा। तन्माहात्म्यबलं भविष्यति पुनः
स्यादुन्नतत्वेन हि, संयुक्तस्य बलस्य वर्द्धनमथो स्यान्नोऽप्यनयामनः
॥ ८२ ॥ एकस्यान्यसहायकोऽनुदिवस भूत्वा सहायं कुरु, स्यान्ते
यासकराय देयमखिलं नो वा विचारो मुने! विध्येव च समाजके
प्रसरति लोकोपकारस्ततो, ज्ञात्वा सर्वमिदं विचारनिरता श्रेयस्करा
बुध्यताम ॥ ८३ ॥ [अथाऽऽधुनिका सम्यक्त्वादानरूढिः]
अद्यानवभवे च भिक्षुकवरेष्वार्यानिर्जनेषु च, सम्यक्त्व प्रविधाय योग-
मिषत शिष्य स्वकीय तथा। भक्त पक्षधर चिंतनुममना रूढिर्विचित्रा
गता। भीत्या मार्द्धमिय प्रवृद्धिरतुला वात्या स्वरूपेण च ॥ ८४ ॥
भूकम्पोऽप्यग्निर्नीव शेपविषयाज्जेयो मुर्नान्दैग्नो। वृक्षाणामिव सहनेश्च
निनरा स्याद्येन नाशो मुहु ॥ सम्यक्त्वस्य तथान्धसघविल्मचक्र-

पुनरयो तेभ्यश्च देयं क्वचित् ॥ ९२ ॥ नेदं सर्वमपस्मृतिं कुरु न चेत्स्वर्गेऽपि न स्याद्गतिर्भ्रमें मोक्षपथं च नाकमथवा सम्मैव पार्गो स्थितम्। जानन्त्येवमहं शुभोऽस्मि निखिलादन्येऽवराः सन्ति च, श्रद्धेयं परिज्ञायतामविरतं स्यादन्धकारावृताः ॥ ९३ ॥ अस्त्यन्योऽपि महानुभावविषयः सन्धार्य्यतां चित्ततः, सम्यग्दृष्टमदत्तमन्यमुनिभिर्मत्यक्त्वा च तत्त्वं पुनः। सम्यक्त्वं च प्रदाय नैव कुरुते सर्वोत्तमं माननं, केचित्तस्य समीपके च रहसि सलेखयित्वा मुदा ॥ ९४ ॥ संस्थाप्योत्तमआह्वेण सदृशो नामाङ्कितं पुस्तकं। तीर्थस्याथ स्वकीयपत्रनिचये संलिख्यते नाम च ॥ यात्रार्थं च जनाः प्रयान्ति नितरां तेषां यथा यत्नतस्तद्वज्जैनमतावलम्बनपराः कुर्वन्ति कुत्सान्विताः ॥९५॥ कठोरात्मिकायाश्च निन्दास्पदायाः, प्रवृत्तेश्च सञ्जायते कुग्रहत्वम्। ममत्वान्धकारेण संछादनं स्यात्तया रागद्वेषादिकस्थानमेतत् ॥ ९६ ॥ सम्यक्त्वसंयुक्तबले च सम्यङ् मन्दत्वमायातमितो विचिन्त्यम्। मदीयमप्यन्त्वत्स्य मूलं, संछिद्यते कुत्सितया च रीत्या ॥ ९७ ॥ अतोऽस्य रोगस्य चिकित्सकत्वं, कर्तव्यमेवं कुप्रथाप्रणाशः। तदैकदेशस्य मलं विधाय, धर्म्मं भयङ्कारि च राजयक्ष्मा ॥ ९८ ॥ रोगो यथोत्पन्नतया करोति, विकारतामात्मतृतीयकेऽन्त। महाननर्थो भवतीति ज्ञेयं, गृहस्थरागास्मकदृष्टिभावः ॥ ९९ ॥ विधाय दोष परित करोति, तथाऽनिशं मुद्गलिकेव दृष्ट्या। सवर्तयन्त्यत्र विवर्द्धनं च, वैपम्यभावस्य निशम्य योगिन्! ॥ १०० ॥ स्वकीयजालस्य महाधिकारं, सम्प्रोटयन्तैव स्वयं च सम्यक्। त्वदीयजालेन विशन्ति लोका, कुतश्च लोके प्रविवेकबुद्ध्या ॥ १०१ ॥ जानन्ति सर्वे च वरावरं वा, विचारसारस्य करोति भावम्। यावन्ति ते चान्धपरम्परातो, दूरं परं क्लेशमितं

पुत्रो ह्यनेनैव शुद्धो, मुदा कारितः साधुसेवामचारः ॥ ११२ ॥
नावरुद्धं मवचो विचार्यो, यदा तस्य सत्यस्य नाम्नो मुनीशाः। गृहे
तार एवं कदा भाइकत्वाभिवृत्ता भवेयुश्च पंकेन तुल्यात् ॥ ११३
पुनः साधुसेवा सुकायेन कार्या, श्रुतेनाथ चित्तेन वाचा विमृश्य
स्वकीयं परं चेति भेदं विहाय, द्वयं रागद्वेषान्विते भेदवादः ॥ (न वा
न्यत्र भेदोऽयमेवं विभाव्य, करोत्वन्नसा साधुसेवा मतस्तः) ॥११४
वसुधैव कुटुम्बकमित्युक्तिश्चरितार्थता। कर्तव्याखिलभावेन, भवद्भिर्धर्म
सिन्धुभिः ॥ ११५ ॥ यद्रम्यं श्रवसो मिताक्षरयुतं पीयूषकल्पं वच
श्रोतॄणां हृदयान्धकारहरणं व्याख्यानमेतज्जगुः। व्याख्याता उभय
गमादिजनितज्ञानेन्दुना भूषितो, ये शृण्वन्त्युपदेशमेकमनसा श्रोतॄ
विदुस्तान् नरान् ॥ ११६ ॥ व्याख्यानस्य सुगन्धमस्ति शिरसि मधि
क्षुकाणां मुहुर्यावद्बुद्धिविकासोदयं मुनिगणास्तावच्च व्याख्यानकम्। श्राद्धे
भ्यश्च सुधावयन्ति मनसा महता प्रयत्नेन च। श्रोतारं परिकल्प्यतेऽ
दिवसं मेऽद्योपदेशं शृणु ! ॥ ११७ ॥ यः कश्चित्परदेशगोऽपि
चतुरो विद्वान् सभायां महान्, व्याख्यानं न कथा तदीयमुखत
श्राव्या कदाचिन्न हि। श्रोतव्या च सदैव मेऽत्र मुखतः सन्मार्गत
प्रेमन, एवं ते कथयन्ति साधुनिपुणा ये दास्यभावं गताः ॥ ११८
देशान्तरागतः साधुः, सम्प्रदायेतरः पुनः। समाचारी प्रभिन्ना वा, मदेर
च समागतः ॥ ११९ ॥ मदग्रे नो कथा कर्तुं, समर्थो न च श्रुय
ताम्। विना मदाज्ञया किंचिन्नोश्रावयितुमीश्वर ॥ १२० ॥ इत्युत्तस
विचारोऽयं, प्रदेशान्तरगो भवेत्। तदर्थं न हि स्यादेवं, प्रतिष्ठा नैव
चाश्रय ॥ १२१ ॥ श्रावकाणां च सौभाग्यं, यथानुक्रमायतः।
प्रवासिनः समायान्ति, तेषां व्याख्यानमुत्तमम् ॥ १२२ ॥ श्रोतव्यम

सुज्ञाः, शृण्वन्तु व्याख्यानमनन्यभावात् ॥ १३५ ॥ पश्चाद्भवन्तोऽपि सुशासनं वरं, तन्वन्तु यत्नाच्च तथोपदेशम् । कुर्वन्तु वृद्धिं च प्रशासनस्य, सुस्वागतं चापि तथैव सुज्ञाः ॥ १३६ ॥ साध्यं सुत्तममेकमेव मुनयः सर्वे मिलित्वा हृदा । स्वाचार्यं परिकल्पयन्तु सुधियं विचारित्रात्मकम् ॥ येन स्याच्च समाजकोन्नतिदशा शिक्षाविभागस्य च । नो चेद्धर्मविपर्य्ययस्य समयो जातोऽवधार्य्यं बुधैः ॥ १३६ ॥ संस्थाप्या किल भारतस्य जनता पोते च संधात्मके । सिद्धास्यं नगरं सुदारचरिता संस्थापयन्त्वाहिताः ॥ एतावत्करणेन याति भवतां पारत्रिकं चैहिकं । सर्वं कार्यमदभ्रमेव विषयासक्तं मनोहीयताम् ॥१३७॥ स्वादर्शं च जगद्भवन्तमधुना जानातु चात्मा पुनर्लोके नाम भवेयतोऽनुचिन्तनं ध्यानानुसन्धानत ॥ एवं धर्मपरायणो यदि भवेन्मे स्याच्च कीर्तिः परा । तस्मात्संघविवर्धनाय भवतां स्याद्धेम्यवृत्तिरशुभा ॥१३८॥

[अथ क्षमाऽभ्यर्थना] भवान् वीरपुत्रोऽस्ति शान्तात्ममूर्तिरहिंसातपस्यान्वितः सत्यग्राही । तथा चात्मनोऽत्यन्तगूढारकोऽस्ति, पुनर्वीतरागानुकारं करोति ॥ १३९ ॥ नयनेन्दुसंख्योत्तरके शतस्य, दिनाधिपत्वं कुरुते तरस्याम् । अनन्तपञ्चिश्वरोऽस्ति लोके, चोपाधिधार्य्यस्ति विचारणीयम् ॥ १४० ॥ त्वत्पृष्ठतो निश्चमिदं च क्षमस्व च सत्यजनतिर्न मेऽस्ति । स्वात्मानुभावोऽपि न चारारोढं, व्याख्यानदानेऽपि न मेऽस्ति शक्तिः ॥ १४१ ॥ प्रसिद्धवक्तापि न चास्मि विद्वान्, स्त्रित्वल्पबुद्धिस्त्वथ बालकोऽहम् । मन्त्रावतन्मे विदधामि सेवा, तथाऽस्मि संयुक्तयशाभिलाषी ॥ १४२ ॥ रागादिकं वै विहीर्षामि मन्द, यतो यदि स्खलनतया प्रमानम । ज्ञान तथा निष्पत्तिगपराधन्यथा हि शुद्धान्तरभावनात ॥ १४३ ॥ क्षमा निःपरनितिहृता-

नुरागात्, समाधिनैवत्स हि संकरोति । परन्तु मद्दुं यतते मदीया, बुद्धिः प्रमत्तोऽसि च पृच्छ्यते मया ॥ १४४ ॥ मदीयवार्ता कटु-काऽस्ति किन्तु, क्षमा भवेन्नात्र विचारणीयम्। यदा मदीया कटुकाऽस्ति वाणी, ज्ञातव्यमेवं च मदीयरोगः ॥ १४५ ॥ शाम्यन्ति कट्वौषधि-सेवनेन, शीघ्रं भवेद्रोगनिवृत्तिरेवम् । भुक्त्वा च कट्वौषधमप्रतेजो, रोगी ध्रुवं प्राप्यतेऽतिलाभम् ॥ १४६ ॥ तद्रोगशान्तिर्भवतीति ज्ञात्वा, मदीयवार्तामपि संसहस्व । स्वकीयभावान् हि रोद्धुमर्हसि, शक्तिर्मदी-येति विभावनीयम् ॥ १४७ ॥ महानुभावोऽसि च दुर्बलोऽस्मि, तथाऽऽत्मनर्थोऽस्मीति यथार्थम्। क्षमा विधेया च महात्मनस्तु, भवन्ति क्षान्तेश्च सुभाजनानि ॥ १४८ ॥ गुरुर्मदीयोऽस्ति फकीरचन्द्रो, ज्ञानं मया लब्धमिदं यतश्च । बोधं च लब्ध्वा स्तुतियां करोमि, ततोऽमरत्वं च भवेत्स्फुटं मे ॥ १४९ ॥

इति सभाक्रन्दनकाव्यम् ॥

ज्ञातृपुत्र-महावीरका सिद्धान्त

(१) जगत्में दो द्रव्य (substances) हैं, एक जीव [soul] [illegible] अजीव [non soul]। अजीवको पुद्गल [matter] [illegible] and matter; जीव और पुद्गल [illegible] and matter [illegible] है।

(२) [illegible]

(३) उक्त कर्ममलके कारण इस जीवको नाना योनियोंमें अनेक दुःख भोगने पडते हैं और उसीके नष्ट हो जानेपर यह जीव अनन्तज्ञान-अनन्तदर्शन-अनन्तसुख और अनन्तशक्ति आदिको जो कि इसकी निजी सम्पत्ति है और जिसे मुक्ति कहते हैं वह प्राप्त करता है।

(४) निराकुलता लक्षणयुक्त मोक्ष सुखकी प्राप्ति इस जीवके अपने निजी पुरुषार्थके अधिकारमें है किसीके पास मांगनेसे नहीं मिलता।

(५) पदार्थोंके स्वरूपका यह सत्य श्रद्धान [Right belief] सत्य ज्ञान [Right knowledge] और सत्य आचरण [Right conduct] ही यथार्थमें मोक्षका साधन है।

(६) वस्तुयें अनन्त धर्मात्मक हैं, स्याद्वाद ही उनके प्रत्येक धर्मका सापेक्षतासे प्रतिपादन करता है।

(७) सत्य आचरणमें निम्नलिखित बातें गर्भित हैं, यथा-

[क] जीव मात्र पर दया करना, कभी किसीको शरीरसे कष्ट न देना, वचनसे बुरा न कहना, और मनसे बुरा न विचारना।

[ख] क्रोध-मान-माया-लोभ और मत्सरआदि कषायभावसे आत्माको मलिन न होने देना, उसे इनके प्रतिपक्षी गुणोंसे सदा पवित्र रखना।

[ग] इन्द्रियों और मनको वश करना एवं बाह्य संसारमें लिप्त न होना।

[घ] उत्तम क्षमा-निर्लोभ-सरलता-मृदुलता-लाघव-शौच-संयम-तप-त्याग-ज्ञान ब्रह्मचर्यादि लक्षणात्मक धर्मको धारण करना।

[च] झूठ-चोरी-कुशील आदि निन्द्य कार्योंसे ग्लानि करना।

(८) यह संसार स्वयं सिद्ध अर्थात् अनादि अनन्त है, इसका कर्ता हर्ता कोई नहीं है।

(९) आत्मा [soul] और परमात्मा [God] में केवल विभाव और स्वभावका विशेष है। जो आत्मा रागद्वेषरूप विभाव को छोडकर निज स्वभावरूप हो जाता है उसे ही परमात्मा कहते हैं।

(१०) ऊंच-नीच-छूत-अछूतका विकार मनुष्यका निजका किया हुआ विकार है वैसे मनुष्यमात्रमें प्राकृतिक भेद कुछ भी नहीं है।